स्वच्छंदतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

Dr. P. Adeshwar Rao

प्रगति प्रकाशन
आगरा।

स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

प्रकाशित

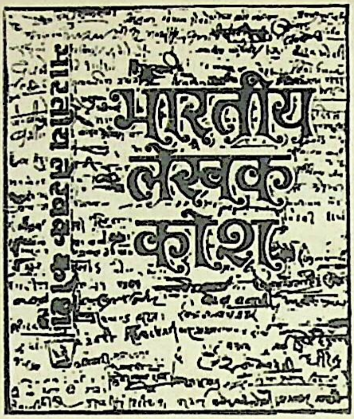

सं० रामगोपाल परदेसी

[हिन्दी में प्रथम बार अपने ढंग का अनूठा सन्दर्भ ग्रन्थ। तीन हजार भारतीय लेखक-लेखिकाओं के सचित्र परिचय। अनुपम रूप-सज्जा से युक्त। रखने के लिए आकर्षक बॉक्स]

मूल्य : साठ रुपये

कुछ सम्मत्तियाँ—

- यह ग्रन्थ हिन्दी का सन्दर्भ ग्रन्थ है। प्रत्येक स्कूल कालेज, संस्था और लेखक के पुस्तकालय में इसे रहनी ही चाहिए। —डा० हरिवंशराय बच्चन
- हिन्दी में अभी तक इस ढंग का कोई ग्रन्थ नहीं है। —डा० गोपालराय
- यह कोश हिन्दी इतिहासकारों के काम को आसान कर देगा। —डा० नेमीचन्द
- अध्ययन, सन्दर्भ और शोध के लिए यह कोश अत्यन्त उपादेय है। —डा० भागीरथ मिश्र
- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों के लिए कोश वरदान स्वरूप है। —डा० त्रिभुवनसिंह
- भारतीय लेखक कोश, प्रकाशित कर आपने जो हिन्दी की सेवा की है, वह अमर रहेगी। —डा० उपेन्द्र
- सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में इस कोश की उपयोगिता असंदिग्ध है। —डा० व्रजेश्वर वर्मा
- लेखकों के चित्र देने से यह ग्रन्थ और भी अधिक आकर्षक बन गया है। —डा० टीकमसिंह तोमर

स्वच्छन्दतावादी काव्य

का

तुलनात्मक अध्ययन

[हिन्दी और तेलुगु]

[श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति द्वारा पी० एच-डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डा० पी० आदेश्वरराव
एम. ए., [साहित्यरत्न], पी. एच-डी.
हिन्दी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेर [आ० प्र०]

प्रगति प्रकाशन
आगरा-३

● प्रकाशक :

प्रगति प्रकाशन
बैतुल बिल्डिंग,
आगरा-३
दूरभाष : 61461

● मुद्रक :

दी कौरोनेशन प्रेस
छिलीईंट रोड,
आगरा-३

● प्रथम संस्करण

१९७२

● मूल्य : पैंतीस रुपये

पूज्य पितृदेव

श्री पुरूगुल्ल वेंकटप्पय्या जी

के कर कमलों में

श्रद्धा के साथ

समर्पित

—पी० आदेश्वर राव

लेखक की अन्य रचनाएँ

1. अन्तराल (काव्य-संग्रह) भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत।
2. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ।
3. तुलनात्मक शोध और समीक्षा।
4. खून (तेलुगु के प्रगतिशील पौराणिक नाटक का हिन्दी रूपान्तर)।
5. आत्म-वंचना (तेलुगु के सामाजिक नाटक का हिन्दी रूपान्तर)।

विषयानुक्रमणिका

१—प्रथम अध्याय :

अनुसंधान की प्रक्रिया तथा उपादेयता

२—द्वितीय अध्याय :

युग परिस्थितियाँ : प्रेरणा और प्रभाव

३—तृतीय अध्याय :

स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप-विवेचन तथा साहित्यिक मान्यताएँ

४—चतुर्थ अध्याय :

स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का विकास-क्रम

५—पंचम अध्याय :

भाव-पक्ष

६—षष्ठ अध्याय :

कला-पक्ष

७—सप्तम अध्याय :

प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों की तुलना

परिशिष्ट—सहायक ग्रन्थ-सूची

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य का अध्ययन मैंने एक जिज्ञासु विद्यार्थी के रूप में किया है। हिन्दी-साहित्य में अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं, जिन में भक्ति, काव्य तथा छायावादी काव्य विशेष उल्लेखनीय है। मेरी रुचि पहले से ही हिन्दी के छायावादी काव्य की ओर रही और मैंने उस काव्य का अध्ययन अत्यन्त तत्परता के साथ किया। इसी रुचि के कारण मैंने सन् १९६१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा के अन्तिम दो प्रश्न पत्रों के स्थान पर कवि पन्त और उनकी छाया-वादी रचनाएँ शीर्षक शोध-निबन्ध प्रस्तुत किया। उसी समय से मेरे मन में इस काव्य प्रवृत्ति को और भी गहराई से परखने की इच्छा उत्पन्न हुई। हिन्दी के छायावादी काव्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं तथा उपलब्धियों के तात्त्विक अध्ययन के सन्दर्भ में जब मेरी दृष्टि अपनी मातृभाषा तेलुगु की काव्य-धारा "भाव कवित्वमु" पर पड़ी तो इन दोनों काव्यान्दोलनों की उत्प्रेरक परिस्थितियों, परिवेशों और तज्जनित सर्जनाओं में पर्याप्त साम्य परिलक्षित हुआ तथा अपनी-अपनी सीमाओं के अन्तर्गत दोनों की उपलब्धियाँ एक दूसरे की उसी तरह पूरक-परिपूरक दिखाई पड़ीं, जैसे भारत का एक प्रान्त या प्रदेश, दूसरे प्रदेश का परिपूरक है। जिस तरह से काव्य की स्वच्छन्दतावादी धारा (Romanticism) का हिन्दी में 'छायावाद' नाम पड़ा, उसी प्रकार तेलुगु में इसे **"भाव कवित्वमु"** के नाम से अभिहित किया गया। कुछ लोगों ने इसमें कल्पना के आधिक्य के कारण इसे **"काल्पनिकोद्यमु"** भी कहा; किन्तु यह नामभेद ही है, प्रवृत्ति अथवा प्रकृति भेद नहीं। मुझे इन दोनों नामों की अपेक्षा स्वच्छन्दतावाद शब्द ही अधिक औचित्यपूर्ण लगा। अतः मैंने इसी नाम का व्यवहार सर्वत्र किया है।

मेरे जिज्ञासु मन में हिन्दी और तेलुगु की इन काव्य धाराओं के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की आकाँक्षा का यहीं से श्रीगणेश हुआ है। मेरी यह इच्छा मेरी व्यक्तिगत रुचि अरुचि का केवल परिणाम न होकर, सामाजिक एवं साहित्यिक आवश्यकता की पूर्ति की माँग भी है। वस्तुतः हिन्दी ही नहीं, भारत की किसी भी भाषा के साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक उस भाषा से इतर भारतीय भाषाओं की समानधर्मी धाराओं का भी अवगाहन न कर लिया जाय। इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं की परस्पर तुलना करके उनकी उपलब्धियों का सम्यक् आकलन साहित्य के अध्येता के लिए जहाँ एक ओर अत्यन्त रोचक और आकर्षक है, वहाँ दूसरी ओर अत्यन्त अपेक्षित और महत्वपूर्ण भी है। राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक कार्य

है। जब तक हम साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण भारत के प्रत्येक भाषा-प्रदेश की आकांक्षाओं, आशा-निराशाओं और जीवन-साधना के निमित्त किये गये कार्यों से अवगत नहीं होते और जब तक इन से हमारा भावात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता तब तक एक ही भूमि और एक ही देश की सीमा में रहते हुये भी हम पराये ही रहेंगे। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा हो चुकी है। अतः इस दृष्टि से भी हिन्दी में अन्य भाषाओं के साहित्य का आगमन और एक दूसरे से तुलनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन का होना भी आज की सब से बड़ी आवश्यकता है। इन सभी कारणों के सन्दर्भ में, मैंने इस तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया। यही मेरे कार्य का औचित्य है।

संप्रति हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का कोई विशेष उल्लेखनीय तुलनात्मक अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया—वैसे हिन्दी छायावाद के विभिन्न पहलुओं का अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया गया है और सार-गर्भित निष्कर्ष भी निकाले गये हैं। इनमें से कुछ अध्ययन, छायावादी कवियों तथा उनके काव्यों से सम्बन्धित हैं, कुछ छायावाद की सम्पूर्ण धारा से कुछ पृथक पुस्तक के रूप में हैं और कुछ अन्यत्र प्रकाशित लेखों अथवा एक ही पुस्तक में विवेचित खण्डों के रूप में। ये अध्ययन अपनी सीमा के भीतर पूर्ण और वैज्ञानिक कहे जा सकते हैं, किन्तु मुझे इनमें सब से अधिक जो बात खटकी, वह यह है कि छायावादी काव्यधारा का अधिकांश सामाजिक, दार्शनिक किंवा आध्यात्मिक, और राजनैतिक संदर्भों से ही बँधा रहा और इसका विशुद्ध साहित्यिक धरातल पर- कतिपय ग्रन्थों को छोड़कर अध्ययन नहीं किया जा सका। मेरा अपना विचार है कि छायावादी काव्यधारा जैसी स्वच्छन्द और कला-अभिषिक्त धारा का अध्ययन जितना विशुद्ध साहित्यिक धरातल पर न्यायोचित और उपयोगी हो सकता है, उतना अन्य किसी धरातल पर नहीं। मैंने छायावादी काव्य-धारा को इसी दृष्टि से परखने की चेष्टा की। यह तो रही हिन्दी छायावादी काव्य के आकलन की बात। अब तेलुगु स्वच्छन्दतावाद की स्थिति पर विचार करना है। तेलुगु स्वच्छन्दतावाद का समीक्षात्मक अध्ययन एक तरह से नहीं के बराबर है। इसके ऊपर तेलुगु में एक भी ऐसा समीक्षात्मक ग्रन्थ नहीं है जिसमें इसकी प्रवृत्तिगत विशेषताओं एवं उपलब्धियों का सम्यक परीक्षण और मूल्यांकन किया गया हो। वस्तुतः अभी तेलुगु का समीक्षा-साहित्य ही पर्याप्त प्रौढ़ नहीं हो पाया है। अतः इससे वैज्ञानिक अध्ययन की आशा करना भी उचित नहीं। अब तक तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद के कवियों और काव्यों के ऊपर यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में छुटपुट लेख ही निकल पाये हैं। अतः हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के साथ तेलुगु स्वच्छन्दतावाद का तुलनात्मक अध्ययन करते समय मुझे अपनी शक्ति और सीमा के भीतर ऐतदर्थ नयी दृष्टि ही नहीं, वैज्ञानिक समीक्षा का प्रौढ़ धरातल भी प्रतिस्थापित करना पड़ा। इस

कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह रही कि स्वस्थ समीक्षा-भूमि की बात ही छोड़िये, सभी कवियों के काव्यों अथवा फुटकल रचनाओं तक को प्राप्त कर लेना अत्यन्त श्रम-साध्य और दुष्कर रहा। कारण, इस धारा के कतिपय प्रमुख कवियों के कुछ ही महत्वपूर्ण काव्य पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो पाये हैं, शेष सम्पूर्ण काव्य या तो काव्य संग्रहों में या प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं में या पाण्डुलिपियों में ही पड़े हुये हैं। मैंने यथाशक्ति परिश्रम करके इन्हें खोजने और समझने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं की उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अपने अध्ययन को अत्यधिक तात्विक और वैज्ञानिक बनाने के निमित्त मैंने द्विमुखी दृष्टि का सन्धान किया है। इन में से एक है साहित्यिक आकलन की, दूसरी है पूर्वाग्रह-मुक्तता की। किसी भी काव्यधारा का मूल्यांकन या तो पूर्वनिर्धारित मान्यताओं अथवा विचारों के आधार पर किया जाता है या उसी के भीतर से अन्वेषित मूल्यों के आधार पर। दूसरे प्रकार की यह पद्धति साहित्यिक मूल्यांकन की विशुद्ध पद्धति है। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि काव्य-धारा या काव्य विशेष के निर्णायक परिवेशों को विस्तृत किया जाय। सच्ची बात तो यह है कि जीवन और साहित्य दोनों ही अपने प्रकृतिगत वैशिष्ट्य के साथ एक दूसरे के पूरक हैं। इस अर्थ में जीवन की सर्वथा उपेक्षा सम्भव ही नहीं—अन्तर एक के क्षेत्र में दूसरे के प्रमुख न होकर गौण होने का है। मैंने इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखते हुये जहां एक ओर भाव और कला की गहराइयों में उतरने की और इनकी सुसम-विपम छवियों को समग्र रूप में पकड़ने की चेष्टा की है, वहाँ दूसरी ओर ऊपरी साम्य-वैषम्य या समग्रता को खण्ड-खण्ड कर देने वाली अनावश्यक काँट-छाँट से अपने को भरसक बचाया। ऐसा करते समय मैंने अपने को पूर्णतः पूर्वाग्रहमुक्त रखा है। जो तथ्य अथवा सत्य जिस रूप में मेरे सामने उभरा, उसे उसी रूप में मैंने व्यक्त करने का प्रयत्न किया। अपने इस दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये प्रस्तुत शोध-प्रवन्ध को मैंने आठ अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय है—"तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया तथा उपादेयता" इसमें तुलनात्मक अध्ययन का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है, जिसमें अनुसंधान, आलोचना तथा तुलनात्मक अध्ययन के बीच अन्तर दिखाते हुऐ तुलनात्मक अध्ययन के लक्ष्य, प्रकार, महत्व आदि पर विचार किया गया है। साथ ही भारतीय भाषाओं के साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता तथा सम्भावना की रूप-रेखा निर्धारित करते हुये हिन्दी में तुलनात्मक अध्ययन का इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय—"पृष्ठभूमि" का है। इससे मैंने हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं के उद्भव तथा विकास में योगदान देने वाली राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों तथा उनके प्रभावों को स्पष्ट किया है।

तीसरा अध्याय है—"स्वच्छन्दतावाद: स्वरूप विवेचन तथा साहित्यिक मान्यतायें।" इसमें परम्परावादी तथा स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृतिगत एवं प्रवृत्तिगत भेद दिखाते हुये स्वच्छन्दनावाद के स्वरूप-निर्णायक तत्वों तथा भावना, कल्पना, आत्मानुभूति, प्रकृति-मोह, काव्य-कला आदि का सांगोपांग विवेचन और इनमें अन्तर्निहित शास्त्रीय दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय—"स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का क्रमिक विकास" है। और तेलुगु के स्वच्छंदतावादों का विकास-क्रम दिखाते हुये यह स्पष्ट किया गया है उन्होंने किस प्रकार विशिष्ट आन्दोलनों के रूप को ग्रहण किया है। दोनों की तुलना भी प्रस्तुत की गई है।

•पंचम अध्याय—"भाव-पक्ष" का है। इसमें हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के भाव पक्ष को आत्माभिव्यंजना, अनुभूति, भावना की तीव्रता, विचार-धारा तथा प्रकृति-चित्रण के शीर्षकों में विभक्त कर इनके साँगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं।

षष्टम अध्याय—"कला-पक्ष" का विवेचन हुआ है। इसमें हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं ने कला-सौष्ठव का अध्ययन भाषा और शब्द-चयन, शैली, अप्रस्तुत विधान, चित्रण-कला, छन्द, लय और संगीत तथा काव्य-रूप आदि काव्य-कला के उपकरणों के आधार पर किया गया है।

सप्तम अध्याय में—"हिन्दी और तेलुगु के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों—मुख्यतः सुमित्रानन्दन पन्त और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और बसवराजु अप्पाराव, महादेवी वर्मा और चाविल वंगारम्मा, आदि का—उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैसे सर्वत्र तुलना के ठोस आधार नहीं मिल सके हैं। ऐसे स्थानों पर मैंने जितने तुलनीय आधार उपलब्ध हो सके उन्हें तो ले लिया, शेष को छोड़ दिया—आधार रहित तुलना का मैंने कोई औचित्य नहीं समझा।

अष्टम अध्याय—"उपसंहार" का है। इसमें हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं को प्रभावित करने वाले तत्वों की पृष्ठभूमि में इनकी मुखर विशेषताओं और भास्वर उपलब्धियों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया है। एक प्रकार से इसे सारतत्व भी कह सकते हैं।

अपने इस अध्ययन के द्वारा मैंने हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों तथा काव्यों को प्रभावित करने वाली चेतना के विशिष्ट प्रकारों को परखते हुए इन

दोनों प्रदेशों के कवियों की चित्तवृत्तियों में प्रतिबिम्बित साम्यमूलक और वैषम्यमूलक आधारों का सन्धान किया है और इन आधारों पर समस्त उपलब्धियों का सम्पर्क मूल्यांकन करके इस सत्य का उद्घाटन किया है कि तात्विक अभेद और एकरूपता के होते हुये भी इन काव्य-धाराओं के स्वरूप में भिन्नता आ गई है। साथ ही ये दोनों धारायें एक दूसरे के बहुत निकट हैं।

तुलनात्मक अध्ययन में सब से बड़ी कठिनाई तेलुगु के काव्य-वैभव को अक्षुण्ण रखते हुये हिन्दी में उन्हें प्रस्तुत करने की रही। जिस साहित्यिक दृष्टि से मैं इन काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता था वह तेलुगु काव्य के आवश्यक उद्धरणों के गद्यानुवाद से सम्भव नहीं था। अतः मैंने हिन्दी पद्य में ही तेलुगु के उद्धरणों का भावानुवाद उस भाषा के शब्द-शिल्प एवं अभिव्यक्ति-कौशल की ओर सजग रहकर, किया है। इसमें मैंने यथाशक्ति तेलुगु काव्य सौन्दर्य को हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुसार साकार करने की चेष्टा की है। इस पद्धति से तेलुगु स्वच्छन्दतावादी काव्य की बाह्य जानकारी को ही न प्राप्त कराकर, मैंने इसके उत्स में रसास्वादन कराने का प्रयास भी किया है।

प्रस्तुत शोधकार्य मेरे लिये अत्यन्त श्रम-साध्य और दुष्कर रहा। जिस दृष्टि से मैं तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता था, अपनी निजी सीमाओं के कारण मेरे लिये यह और भी कठिन होता रहा। कई बार हतोत्साहित भी हो गया। लेकिन डा० विजयपालसिंह जी ने अपने वात्सल्यमय स्नेह से समय-समय पर प्रोत्साहित किया। उसी का परिणाम ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध है। अतः मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। इस कार्य में मैंने हिन्दी और तेलुगु के कई मूर्धन्य विद्वानों से जो सहायता ली है, उसके लिये मैं उन सब का कृतज्ञ रहूंगा। यह ग्रन्थ मेरे शोध प्रबन्ध का परिमार्जित रस है। मैंने अप्रासंगिक एवं अनावश्यक विस्तार को समास किया है। आशा है कि हिन्दी प्रेमी संसार मेरे इस शोध-प्रबन्ध का स्वागत करेगा।

हिन्दी विभाग,
आन्ध्र विश्वविद्यालय
वाल्टेर (आन्ध्र प्रदेश)

डा० पी० आदेश्वरराव

प्रथम अध्याय

१. विषय प्रवेश

१. शोध की प्रक्रिया एवं लक्ष्य :—

हिन्दी में अनुसंधान की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी गत दो दशाब्दियों से वह अंग्रेजी शब्द "रिसर्च" (Research) का पर्याय बन गयी है। अनुसंधान के तीन विशिष्ट धर्म माने जा सकते हैं—१. **नवीन तथ्यों की खोज**, २. **उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या** और ३. **ज्ञान क्षेत्र का विस्तार**। तथ्यों की खोज और उनकी व्याख्या में पर्याप्त अन्तर है। सत्य के प्रत्येक रूप के साथ अनेक तथ्यों का सम्बन्ध होता है। इन में से कुछ तथ्य तो प्रकाश में आते हैं और अनेक प्रच्छन्न रह जाते हैं। इस प्रकार जो प्रच्छन्न तथ्य काल के अंध-गर्त में विलीन हो गये हैं, उनकी खोज करना अत्यन्त आवश्यक है। इससे इस निष्कर्ष पर न पहुँचना चाहिये कि तथ्यानुसंधान मुख्यतः प्राचीन विषयों की शोध में ही सम्भव हो सकता है। तथ्यानुसंधान के प्रधानतः दो रूप हैं—

१. **काल-प्रवाह में लुप्त तथ्यों की खोज।**

२. **विषय में निहित तथ्यों की खोज।**

जैसे तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का उद्घाटन करना ही तथ्याख्यान का लक्ष्य है। इसके द्वारा मानव-सत्य या मानव चेतना एवं प्रतिभा का दर्शन कराया जाता है। इस प्रकार तथ्याख्यान से मानव-आत्मा का साक्षात्कार करना ही इस रूप का ध्येय है। अनुसंधान का तीसरा तत्व है ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार। वास्तव में यही अनुसंधान का प्राण है। तथ्यों की खोज और उनकी व्याख्या (तथ्याख्यान) इसी तत्वोपलधि के साधन मात्र हैं। ज्ञान-वृद्धि ही अनुसंधान का मूल उद्देश्य है। जो विवेचन ज्ञानवृद्धि में सहायक न होगा, वह अनुसंधान की परिधि में नहीं आयेगा। अतः ज्ञान-क्षितिज का विस्तार ही अनुसंधान का मुख्य धर्म है।

"आलोचना" का शाब्दिक अर्थ है समग्र निरीक्षण। साहित्यिक आलोचना साहित्यिक कृतियों का सांगोपांग निरीक्षण करती है। इस प्रक्रिया के तीन विशिष्ट

अंग हैं—१. **प्रभाव-ग्रहण,, २. व्याख्या और विश्लेषण, ३. मूल्यांकन या निर्णय** (Judgement)। आलोचना कलाकृति के द्वारा पाठक या दर्शक के हृदय में उत्पन्न प्रभाव की प्रतिक्रिया को व्यक्त करती है। वास्तव में वही पाठक आलोचक बनता है, जिसमें कलाकृति के आस्वादन के पश्चात् अपने हृदय पर पड़े हुए प्रभाव को अभिव्यक्त करने की क्षमता हो। दूसरा अंग उस प्रतिक्रिया की प्रियता या अप्रियता के कारणों का विश्लेषण करता है। अन्त में उपर्युक्त दोनों प्रतिक्रियाओं के आधार पर कलाकृति का मूल्यांकन किया जाता है।

किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि अनुसंधान और आलोचना पर्यायवाची शब्द हैं या दोनों में कुछ पार्थक्य भी है? वास्तव में ये दोनों पर्यायवाची शब्द नहीं हैं यद्यपि दोनों साहित्य-विधा के दो उपभेद हैं। दोनों की प्रक्रिया में भी साम्य है। तथ्यों का संकलन, उनकी व्याख्या और निष्कर्ष का उपयोग दोनों करते हैं। फिर भी इन दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता है। अनुसंधान अन्वेषण पर अधिक बल देता है तो आलोचना निरीक्षण पर। कलातत्त्व आलोचना का अनिवार्य अंग है, किन्तु अनुसंधान का नहीं; यदि है भी तो गौण रूप में। अनुसंधान का उद्देश्य ज्ञान-वृद्धि है और आलोचना का आत्मा का साक्षात्कार कराना तथा मर्म का उद्घाटन करना है। इस विषय में मान्य आलोचक डा० नगेन्द्र के विचार द्रष्टव्य हैं—"तत्व-दृष्टि से यदि हम विचार करें तो विद्या के सभी भेदों का एक ही उद्देश्य निर्धारित किया जा सकता है और वह है सत्य की उपलब्धि। तथ्य और सत्य में यह भेद है कि एक केवल बोध का विषय है और दूसरा अनुभूति का। बोध का अर्थ है ऐन्द्रिक अथवा बौद्धिक प्रत्यय और अनुभूति का अर्थ है मर्म का साक्षात्कार। मर्म के साक्षात्कार के लिये तथ्य-बोध से आगे चलकर तथ्य के द्वारा व्यंजित सत्य की अवगति आवश्यक है। यही आलोचना की चरम परिणति है और मेरा आग्रह है कि अनुसंधान की चरम परिणति भी यही होनी चाहिये।.....................यह अनुसंधान की उच्चतर भूमि है। इस लक्ष्ण की सिद्धि के बिना अनुसंधान केवल तथ्य-बोध का साधन होकर रह जाता है, सत्य की सिद्धि का माध्यम नहीं।"[१] वास्तव में उच्चतर आलोचना उत्तम अनुसंधान भी है और उच्च कोटि का साहित्यिक अनुसंधान आलोचना से अभिन्न है।

२. शोध की प्रक्रिया और तुलनात्मक अध्ययन का महत्व :—

अनुसंधान और तुलनात्मक अध्ययन में भी कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। अनुसंधान की प्रक्रिया में तुलनात्मक-विधान की भी सहायता ली जाती है और तुलनात्मक अध्ययन में भी गम्भीर अन्वेषण, परीक्षण और निष्कर्ष आदि साहित्यिक

---

१. **अनुसंधान की प्रक्रिया : "अनुसंधान और आलोचना" डा० नगेन्द्र, पृ० ४९–५०**

आलोचना एव अनुसंधान की प्रक्रियाओं से लाभ उठाया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन अनुसंधान की अपेक्षा आलोचना के ही निकट पड़ता है। वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन का उत्तरदायित्व आलोचना एवं अनुसंधान से भी महत्वपूर्ण है। वह मानव या व्यक्ति के सीमित ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार करता है और उसकी भाषा, साहित्य एवं देश के बन्धनों को ज्ञानार्जन में बाधा डालने नहीं देता। पाश्चात्य विद्वान मेक्समूलर के अनुसार **"सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना से हुई है और वह तुलना पर ही आधारित है।**[1] हेच. एम. पोसनेट महाशय के अनुसार तुलनात्मक साहित्य का अनुशीलन विविध जातियों को निकट लाकर, उनके सृजनात्मक भाव-विकास में सहयोग देता है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन उच्चतर ज्ञान-वृद्धि में सहायक होता है। वह साहित्य के क्षेत्र में एक ही साहित्य के या विभिन्न साहित्यों के लेखकों या प्रवृत्तियों की तुलना कर उनके बीच के साम्य या वैषम्य का उद्‌घाटन करता है, उनके कारणों की भी खोज करता है। अत: यह ज्ञान और भी समग्र और पूर्ण होने की अधिक सम्भावना है। अतः हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन के महत्व पर विचार करेंगे।

विश्व के विभिन्न देशवासियों के बीच जाति, वर्ण और धर्म आदि के वैमनस्य के होते हुये भी उनके मस्तिष्क एवं हृदय में प्राय: समानता पायी जाती है। चिरन्तन काल से मानव-मस्तिष्क मानव-हृदय विकास के पथ पर अग्रसर होते आये हैं और विश्व-मानव के सतत् प्रयासों ने विश्व-जीवन को प्रशस्त बना दिया है। जीवन के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु कला और साहित्य के क्षेत्र में भी विश्व-मानव का सम्पूर्ण बाह्य एवं आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व स्वयं अभिव्यक्त होता जा रहा है। विश्व के सभी महत्वपूर्ण साहित्यों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व-साहित्य में अभिव्यक्त मानव-चेतना एवं मानव-हृदय एक ही हैं। मानव-समाज के क्रमिक-विकास में विभिन्न-सामाजिक परिस्थितियों से गुजरते हुये भी इस प्रकार मानव-मन अपने देश, काल, भाषा एवं साहित्य के बन्धनों को पारकर विश्व-साहित्य के माध्यम से अपने सार्वभौमिक एवं चिरन्तन स्वरूप का परिचय देता आ रहा है। "वातावरण, रीतिरिवाज, संस्कृति एवं सभ्यता आदि विषयों में भिन्नता होते हुये भी मानव-मन एक ही साँचे में ढला है।"[2] मानव की यह एकता साहित्य एवं कलाओं में अपना

---

1. "........all higher knowlebge is gained by comparison and rests on comparison." (Lectures on the Science of Religion: Max Muller. P. 12)
2. "Despite the differences in environment, in manners, in cultures and civilizations, the human mind is cast in the same mould." (**"साहित्य-दर्शन" पर एक दृष्टि** : Dr. G. S. Mahajani : in **"साहित्य-दर्शन"—प्रथम भाग**—P. 6)

समग्र स्वरूप ग्रहण करती है। महाकवि वर्ड्सवर्थ के अनुसार भी "थल और वातावरण, भाषा और रहन-सहन, शासन और रीति-रिवाज आदि में भिन्नता होते हुए भी सदा से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त विशाल मानव-समाज के साम्राज्य को कवि अपने आवेग और ज्ञान के सूत्रों से बाँध देता है।"[१]

विभिन्न साहित्यों के अध्ययन से साहित्य के दो प्रधान तत्व हमारे सम्मुख आते हैं—

(१) विभिन्न साहित्यों में अभिव्यक्त मानव-चेतना (मानव-हृदय एवं मस्तिष्क) की एकता।

(२) उन साहित्यों की विशेषतायें और विलक्षणतायें जिन के कारण उनका अपना पृथक अस्तित्व है। उन साहित्यिक भाषा-प्रदेशों के जन-समुदाय के सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण, सभ्यता, संस्कृति आदि के कारण विभिन्न साहित्यों में पार्थक्य आ जाता है।

विश्व के सभी साहित्य इन दो तत्वों के आनुपातिक मिश्रण से निर्मित हुये हैं। पाश्चात्य साहित्यों के बीच समानता, भिन्नता की अपेक्षा अधिक मुखर एवं स्पष्ट है और भारतीय साहित्यों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। किन्तु पाश्चात्य और भारतीय साहित्यों में भिन्नता की मात्रा अवश्य कुछ अधिक ही है। इसी तरह तुलनात्मक अध्ययन के भी उपर्युक्त दोनों पक्ष हैं और वह दोनों के कारणों को भी ढूँढ निकालता है।

वास्तव में भाषा और साहित्य दो भिन्न शब्द हैं और साहित्य के लिये भाषा का कोई बन्धन स्वीकार्य नहीं। भाषा केवल साहित्य की अभिव्यक्ति की माध्यम मात्र है। साहित्य में मानव-समुदाय के भाव-जगत् एवं विचार-जगत अभिव्यक्ति पाते हैं। विभिन्न साहित्यों के भाव-जगत् प्रायः एक-से रहते हैं और भाषा की भिन्नता तथा अन्य कारणों से उन में किंचित् पार्थक्य अवश्य आ जाता है। "हर एक भाषा की अपनी विशेषता है। किन्तु सभी भाषाओं में भावों का अस्तित्व है। भाव मानव-निष्ठ हैं

---

1. "......... in spite of difference of soil and climate, of language and manners, of laws and customs······· the poet binds together by passion and knowledge the vast empire of human society, as it is spread over the whole earth and over all time" (—Wordsworth: Qt by Carles Baker in 'English Romantic Poets' Ed by M. H. Abrams: P. 102, 103.)

और भाषा जाति-निष्ठ। यह जाति-निष्ठ भाषा भावों में विलक्षणता लाती है"[1] अतः भिन्न साहित्यों की भाषागत विशेषताओं में-से साहित्यगत एक रूपता या समानता का निरूपण करना तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बीच भिन्नताओं के कारणों की खोज करना भी उस का दूसरा उद्देश्य है। तुलनात्मक अध्ययन का महत्व मानवतावाद एवं विश्व-मानव की भ्रातृ-भावना के साथ और भी बढ़ गया है विश्व-मानव के भाव और विचार विश्व-साहित्य के रूप में संचित हैं। विश्व-साहित्य की एकता का निरूपण और उसके द्वारा विश्व-मानव की एकता का उद्घाटन तुलनात्मक अध्ययन का और एक उद्देश्य है। इस प्रकार यह भली भाँति देखा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन का लक्ष्य हमारे सीमित ज्ञान का विस्तार करना है और अन्य साहित्यों की उपलब्धियों से भी हमें अवगत कराना है। उस समय मानव अपने देश, भाषा, जाति और काल के बन्धनों को पारकर विश्व-साहित्य तथा विश्व-मानव के उच्चतर साहित्यिक एवं कलात्मक उड़ानों को देखकर उसके रस-सिन्धु में डूब जाता है। मानव अपने भाषा, प्रान्त एवं जातिगत अहं को त्यागकर निर्लिप्त, किन्तु गम्भीर होकर मानव-मूल्यों को परखने लगता है तो उसे विश्व-मानव-हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। अतः दो साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी मानव के इस महान लक्ष्य के संकल्प का दृढ़ अंग बनकर उसी मात्रा में मानव-समाज के ज्ञान-क्षेत्र के विस्तार में सहायक सिद्ध होता है। संक्षेप में, चिरन्तन मानवीय प्रतिभा की सिद्धि विश्व के साहित्य-कोषों में संचित है जिसके सार्वभौमिक स्वरूप पर प्रकाश डालकर तुलनात्मक अध्ययन मानव के ज्ञान-क्षितिज को विस्तृत करता है।

३. तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया का स्थूल तथा सूक्ष्म रूप :—

इसके पश्चात् यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया कैसी होनी चाहिये ? उसके मानदण्ड क्या हैं ? वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन उसी समय सफल माना जायगा जब कि अध्ययन की दो विषय-वस्तुओं में अधिक समानता हो या वस्तुयें कम-से-कम एक ही सूत्र में बंधी हुई हों। तुलना में तो समानता या एकरूपता को अधिक बल मिलना चाहिये। वैसे तो भिन्नतायें सर्वत्र

---

१. "ये भाष का भाषालक्षणमु विशेषमु। कानि भावमुलु सर्व भाषलंदु नुंडुनु। भावमुलु मानव निष्ठमुलु, भाष जाति निष्ठमु। ई जाति निष्ठ मैन भाष भावमुलयन्दु कूड विलक्षणत्वमु संपादिंचुनु"। (नेनु—ना रचनाः विश्वनाथ सत्यनारायण। विश्वश्री विश्वनाथ साहित्य संचिका (जनवरी १९५४): पृष्ठ : ९)

दिखाई पड़ती हैं। जिस प्रकार साहित्यिक अनुसंधान के स्थल एवं सूक्ष्म रूप हैं उसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन में भी ये दोनों रूप पाये जाते हैं। तुलनात्मक अध्ययन का स्थूल रूप वह है जिस में भिन्न साहित्यों या एक ही साहित्य के दो युगों या दो प्रवृत्तियों के वर्ण्य-विषय, काल-विभाजन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और उसके अन्तर्गत आने वाले कवियों एवं उनसे प्रयुक्त अलंकारों तथा छन्दों की लम्बी सूची आदि का उल्लेख हो। दो कवियों के विषय में भी रूप समक्ष आ जाता है। यह तो केवल तथ्यों का संकलन मात्र होता है जो आगे चलकर किसी सत्य के उद्‌घाटन में सहायक हो सकते हैं। सत्य के आविष्कार में इस स्थूल सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि साहित्यिक अनुसंधान के इस रूप का स्वयं अपने में कोई महत्व या मूल्य नहीं, किन्तु यह अनुसंधान की उच्चतर भूमि तो नहीं हो सकती। साहित्यिक अनुसंधान के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन में भी इस पर दृष्टिपात किया जाता है कि आलोच्य साहित्यों में किस प्रकार मानव के उच्चतर मूल्यों, विचार-धाराओं, चिंतन-प्रणालियों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिली है जो उन साहित्यों के माध्यम से प्रकट हुई हैं। इन्हीं मानव मूल्यों का उद्‌घाटन तथा अज्ञात ज्ञान-राशि का प्रकाशन ही तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। यही साहित्यिक तुलनात्मक अध्ययन का सूक्ष्म रूप है। "सच्ची साहित्यिक विद्वत्ता स्थूल तथ्यों पर नहीं, अपितु मूल्यों तथा गुणों पर निर्भर करती हैं"।[१] तुलनात्मक अध्ययन के सूक्ष्म रूप के उद्‌घाटन करने में उसका स्थूल रूप केवल साधन वन जाता है। अतः उच्चतर तुलनात्मक अनुसंधान करने के लिये आलोचक को आलोच्य साहित्यों के माध्यम से मानव-मूल्यों का निर्धारण करना चाहिये और उस कार्य के लिये सभी उपलब्ध सामग्री का समुचित उपयोग भी करना चाहिये। "सम्पूर्ण साहित्यिक प्रक्रियाओं की परीक्षा करना, उनकी तुलना करना, उनको एकत्रित करना, उनका वर्गीकरण करना, उनके कारणों की खोज करना तथा उनके परिणामों को निर्धारित करना ही तुलनात्मक साहित्य का वास्तविक ध्येय है"[२]

1. "........True literary scholarship is not concerned with inert facts but with values and qualities." (The crisis of comparative Literature : Rene Wellek : P. 156.)
2. "To examine then the phenomena of literature as a whole, to compare them, to group them, to classify them, to enquire into the causes of them, to determine the results of them—this is the true tatsk of comparative literature. " (Publications of the Modern Language Association of America, 1896, Ed. by James W. Bright : Taken from the essay 'The Comparative Study of Literature' : by A. R. Marsh : P. 166)

४. तुलनात्मक अध्ययन का वर्गीकरण :—

अब हमें देखना है कि तुलनात्मक अध्ययन कितने प्रकार से किया जा सकता है ? मेरे दृष्टिकोण के अनुसार तीन प्रकारों में तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया को बाँट सकते हैं और विषय के स्वभाव के अनुरूप हर प्रकार को पुन: विभिन्न भागों में विभाजित कर सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) एक ही साहित्य के अन्तर्गत तुलनात्मक अध्ययन:—

इसको भी और तीन भागों में विषय की सीमा के अनुरूप विभाजित कर सकते हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(अ) दो कवियों या कवियों की तुलना :

इसके उदाहरण के रूप में डा० गोविन्द त्रिगुणायत लिखित "कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन" को लिया जा सकता है।

(आ) दो प्रवृत्तियों की तुलना :

"द्विवेदी-युगीन कविता और छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन" जैसे विषय पर एक तुलनात्मक प्रबन्ध लिखा जा सकता है।

(इ) दो युगों की तुलना :

"हिन्दी के भक्ति-काल ओर रीतिकाल के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन" जैसे विषय पर तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है।

(२) एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव :—

यह प्रभाव तीन रूपों में पड़ सकता है :—

(अ) एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर प्रभाव :

इसके उदाहरण के रूप में डा० सरनामसिंह शर्मा "अरुण" का शोध-प्रवन्ध "हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव (१४००-१६०० ई०)" और डा० विश्वनाथ मिश्र का शोध-प्रबन्ध "हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव" आदि लिए जा सकते हैं।

(आ) एक साहित्यिक व्यक्तित्व का अन्य साहित्यों पर प्रभाव :

"हिन्दी कवियों पर रवीन्द्र का प्रभाव" जैसे विषय पर एक प्रवन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है।

(इ) एक साहित्यिक प्रवृत्ति या काव्य-धारा का दूसरे साहित्य की प्रवृत्ति या काव्य-धारा पर प्रभाव :

"अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का छायावाद पर प्रभाव" इस विषय पर एक उच्चकोटि का प्रवन्ध प्रस्तुत किया जा सकता हैं।

(२) दो या उससे अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन:—

विषय के अनुसार इसके अन्तर्गत चार विभाग कर सकते हैं:—

(अ) दो कवियों की तुलना :

इसके उदाहरण स्वरूप डा० के० वेंकटेश्वर रेड्डी का शोध प्रबन्ध कबीर और वेमना का तुलनात्मक अध्ययन" को लिया जा सकता है।

(आ) दो विशिष्ट कृतियों की तुलना :

डा० रामनाथ त्रिपाठी का शोध-प्रवन्ध "कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन" तथा डा० शंकरराज नायडू का शोध-प्रबन्ध "कम्ब रामायणम् और तुलसी रामायण का तुलनात्मक अध्ययन" इसके उदाहरण हैं।

(इ) दो प्रवृत्तियों या युगों की तुलना :

इसके अन्तर्गत डा० रत्नकुमारी का शोध-प्रवन्ध 'हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (१६ वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन", डा० के० भास्करन नय्यर का शोध-प्रबन्ध "हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन", डा० हिरण्मय का शोध-प्रबन्ध "हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन", डा० प्रभाकर माचवे का शोध प्रवन्ध "हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य (११ वीं से १५ वीं शती : तुलनात्मक अध्ययन) आदि आते हैं।

(ई) किसी साहित्यिक विधा की तुलना :

डा० पाण्डुरंगराव का शोध प्रवन्ध 'आंध्र-हिन्दी-रूपक (हिन्दी और तेलुगु नाट्य-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन)" इसके अन्तर्गत आता है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारों के अध्ययन में प्रथम में तो एक साहित्य के ही अंतर्गत तुलना होती है, अतः जैसे अध्ययन का महत्व उसी साहित्य तक ही सीमित रहता है। दूसरे प्रकार में तुलनात्मक अध्ययन एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव को स्पष्ट करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक साहित्य का प्रभाव अन्य साहित्यों के दृष्टिकोणों, भावों, विचारों एवं चिन्तन-प्रणालियों पर किस प्रकार पड़ता है और ऐसे प्रभावित साहित्य के प्रान्त की संस्कृति एवं सभ्यता किस प्रकार परिवर्तित हुई है। "एक साहित्य के अन्य साहित्यों पर प्रभाव का अध्ययन करते हुये तुलनात्मक साहित्य वास्तव में उस साहित्य की समग्र संस्कृति का प्रभाव अन्य साहित्यों पर स्पष्ट करता है। सत्यतः यह प्रक्रिया एक साहित्य के विद्वान की अपनी संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों की प्रशंसा करने को बाध्य करता है। इस प्रकार वह इस विभक्त संसार में जन समुदाय को एक दूसरे के निकट लाने और मानव-जाति की भिन्नताओं की अपेक्षा एकता पर बल देने की चेष्टा करता है।[1]" विशाल संस्कृत-साहित्य का प्रभाव विश्व के सभी सभ्य साहित्यों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में दिखाई पड़ता है। जर्मन और अंग्रेजी साहित्यों पर तो यह प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनादिकाल से भी पाश्चात्य तथा भारतीय साहित्यों के बीच विचारों का आदान-प्रदान रहा है। अतः तुलनात्मक अध्ययन पश्चिमी और भारतीय साहित्यों की एकरूपता, भिन्नता और एक-दूसरे पर प्रभाव आदि का सांगोपांग अध्ययन कर एक अभाव की पूर्ति अवश्य कर सकता है।

तीसरे प्रकार में तुलनात्मक अध्ययन अपने समग्र रूप में प्रकट होता है। इस में अनुसंधाता को दो साहित्यों का समुचित अध्ययन एवं अनुशीलन करना पड़ता है। उसे उन साहित्यों के मूल स्वरों के साथ-साथ साहित्यिक-प्रान्तों की संस्कृति, सभ्यता एवं वातावरण का सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। अन्यथा तुलनात्मक अध्ययन के गंभीर एवं स्थाई न होने का भय है। जैसे तुलनात्मक अध्ययनों से विभिन्न साहित्यों में

---

1. "Comparative Literature, in studying the impact of one literature, actually of a whole culture, on others, is really concerned with the appreciation of cultures other than that of the individual scholar. In this way it tends to bring people together in this divisive world and to stress the oneness of the human race rather than its differences. "(Comparative Literature Vol. I" proceedings of the Second Congress of the I. C. L. A. by William C. Friday (President) P. XXII.)

बिखरी हुई मानव चेतना का स्पष्टीकरण हो जाता है। तुलनात्मक अध्ययन में प्रवृत्त अनुसंधाता को निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिए:—

१. अनुसन्धाता का दोनों आलोच्य साहित्यों और उनकी भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिये ।

२. दोनों साहित्यों को अध्ययन प्रस्तुत करते समय किसी एक साहित्य के प्रति अधिक आदर या पक्षपात की दृष्टि नहीं रखनी चाहिये । उसका विवेचन पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिये । अनुसंधाता को सदा सतर्क एवं निर्लिप्त होने के साथ-साथ अध्ययन की मार्मिकता एवं गहनता का परिचय देना चाहिये ।

३. जहाँ तक हो सके, अनुसन्धाता को विषय की तुलना सभी दृष्टियों से करनी चाहिये । तुलना के लिये साहित्य के मूलभूत तत्वों पर आधारित रहना अधिक श्रेयस्कर है जिससे दोनों साहित्यों की एकरूपता या भेदकता स्पष्ट हो जायँ ।

४. जहाँ तक हो सके अनुसन्धाता को मुख्य भाषा में अन्य साहित्य के उद्धरणों को अनूदित करके रखना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा । उस के द्वारा मुख्य भाषा-भाषी संसार को अन्य साहित्यों को समग्र रूप से समझने में सुविधा होगी ।

५. भारतीय साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता :—

भारत बहुत-सी भाषाओं का देश है और हर एक भाषा का अपना समृद्ध एक विकसित साहित्य भी है। इन साहित्यों के बीच अत्याधिक समानतायें मिलती हैं। इन सभी प्रादेशिक साहित्यों की संगठित उपलब्धि ही भारतीय साहित्य की उपलब्धि है। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रान्तों का जनसमुदाय आपस में दृढ़ सांस्कृतिक सूत्रों में जुड़ा हुआ है । अत : प्रादेशिक साहित्यों के अन्तर्गत बिखरी हुई भारत की सांस्कृतिक एकता का अन्वेषण होना चाहिये । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी का आग्रह है कि "भारतीय संस्कृति की एकता के वे तत्व प्रकाश में आने चाहिये जो विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के माध्यम से मुखर हुये हैं । ऐसे विषयों में सांस्कृतिक एकता और प्रादेशिक विशेषताओं का युगमत् अध्ययन अपेक्षित होगा । विभिन्न प्रादेशिक कवियों के वैशिष्ट्य के विषय में भी एक अध्ययन अपेक्षित हो सकते हैं जो जातीय जीवन की समग्रता को केन्द्र बनाकर किये गये । केवल स्फुट या परिच्छिन्न रूप से दो कवियों की विशेषताओं के प्रदर्शन का कोई अर्थ नहीं होता । इन सब कार्यों में हमारा लक्ष्य सांस्कृतिक पक्ष के सामूहिक उद्घाटन का ही हो सकता है । वस्तुतः

लोक-संस्कृति और प्रादेशिक संस्कृतियों से सम्बन्धित समस्त अनुशीलन जातीय जीवन की विविधता में एकता का संकेत करने का लक्ष्य ही रख सकता है ।"[१] अतः भारत के विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों में जो समानतायें एवं भिन्नतायें मिलती हैं, उनके कारणों पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है । सभी प्रादेशिक साहित्यों की तुलना कर, उनमें प्राप्त भारत की सांस्कृतिक एकता को निर्धारित कर, उसके आधार पर भारतीय साहित्य के मूल स्वरों के साथ-साथ उसके समग्र व्यक्तित्व तथा उसके सांस्कृतिक हृदय को भी स्पष्ट किया जा सकता है । इस प्रकार यह विश्वास करना कठिन नहीं है कि "भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है ।[२] देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा है । इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक् अनुसंधान अभी होना है । इसके लिये अत्यन्त निस्संग भाव से, सत्य-शोध पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुये भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है. यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसंधान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है । किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये—वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यन्त अपूर्ण रहेगा । भारतीय साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन इस लिये और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि अनादिकाल से भारतवर्ष में एक ही विचार-धारा का, एक ही जीवन-दर्शन का, एक ही महान आदर्श का प्रसार एवं प्रचार था । **"भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनीतिक राष्ट्रीयता बाद को जन्मी है"** (सस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर : द्वितीय संस्करण पृ० ४६८) । सामान्यत : विशाल संस्कृत भाषा तथा साहित्य का प्रभाव सभी साहित्यों पर पाया जाता है । भारतीय दर्शन तथा उसके अध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रभाव सभी साहित्यों पर न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है । इन साहित्यों की मुख्य गतिविधियों में और भी मौलिक समानतायें मिलती हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय साहित्य विभिन्न प्रादेशिक साहित्य समुदायों के सुमनों से भरा हुआ एक ही उपवन है । जिस प्रकार पुष्पों के अपने पृथक रूप-रंग के होते हुये भी उनमें एक ही रस का, एक ही मधु का, एक ही सुगन्ध का अस्तित्व है उसी प्रकार विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के वाह्य-रूप रंगों में भिन्नता और आंतरिक चेतना की समानता दिखाई देती है । इस तरह प्रादेशिक साहित्य भारतीय साहित्य के उपवन में अपने वाह्य रूप-रंगों के

---

१. अनुसंधान की प्रक्रिया : विषय—निर्वाचन – १ (लेख से) : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी । पृ० ७५—७६ ।

२. डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध : डा० नगेन्द्र । 'भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता' नामक लेख से । पृ० ७० ।

वैविध्य से उसकी विशालता और आंतरिक-समानता से उसकी अखण्डता का उद्‌घाटन कर उसके समग्र सौन्दर्य को द्विगुणीकृत करते हैं। अतः भारतीय साहित्य के समग्र स्वरूप का आकलन करने के लिये पहले उसके विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन होना अत्यन्त आवश्यक है।

६. हिन्दी में तुलनात्मक अध्ययन का इतिहास :—

तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में हिन्दी-अनुसंधान इस समय पथप्रदर्शन कर रहा है। यद्यपि इस क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक कार्य संपन्न न हो सका, फिर भी उसकी उपलब्धि नगण्य नहीं है। हिन्दी अनुसंधान में विभिन्न साहित्यों के लेखकों तथा प्रवृत्तियों के साथ हिन्दी साहित्य के लेखकों तथा प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन का कार्य धीरे-धीरे बल ग्रहण करता जा रहा है। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनमें प्रथमतः श्रीमती शचीरानी गुर्टू का नाम उल्लेखनीय है। उनके "साहित्य-दर्शन" और "प्रेमचन्द और गोर्की" शीर्षक ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। पहले ग्रंथ में देश-विदेश के प्रमुख कवि-कलाकारों, उपन्यासकारों तथा विश्व-विख्यात साहित्यकारों की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। दूसरे ग्रंथ में रूस के महान उपन्यासकार गोर्की और उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आलोचनात्मक निबन्ध प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों ग्रंथों में आलोचिका की सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन एवं चिंतन का परिचय मिलता है। "साहित्य-दर्शन" का प्रकाशन सन् १९५० में हुआ है। इसके पश्चात् भारतीय साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन का स्वरूप शोध-प्रबन्धों के रूप में समक्ष आता है। इस दिशा में प्रथम प्रयास श्री जगदीश गुप्त का है। सन् १९५३ में उनका शोध प्रबन्ध" हिन्दी और गुजराती कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (१५ वीं, १६ वीं, १७ वीं शती ई०)" प्रयाग विश्व विद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। इसमें "कृष्ण काव्य" रूपी एक साहित्यिक आन्दोलन (भक्ति का आन्दोलन) के एक पहलू पर समग्र विवेचना प्रस्तुत की गयी है। भाव-पक्ष, कला-पक्ष एवं विचारपक्ष पर विचार करने के पश्चात् लेखक ने दोनों भाषाओं की प्रकृति एवं रचनात्मक प्रक्रिया पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत इसे तुलनात्मक अध्ययन का प्रथम प्रयास मानना चाहिये। ध्यान देने योग्य विषय यह है कि इस में आलोच्य साहित्यों की भाषायें आर्य भाषायें ही हैं। इसके पश्चात् सन् १९५५ में सुश्री रत्नकुमारी को उनके शोध प्रबन्ध "हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (१६ वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन" पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फ़िल्० की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबन्ध में आलोचिका ने १६ वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवियों की तुलना सभी दृष्टियों से विस्तृत सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर की है। यह अध्ययन भी दो आर्य भाषाओं के साहित्यों का ही हुआ

है। किन्तु तुलनात्मक अध्ययन और एक पग आगे उस समय बढ़ा जबकि सन् १६५५ में श्री के० भास्करन नय्यर को उनके शोध-प्रबन्ध "हिन्दी और मलयालम् के भक्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन" पर पी-एच० डी० की उपाधि लखनऊ विश्व-विद्यालय से मिली। यहाँ तुलना आर्य भाषा हिन्दी और द्रविड़ भाषा मलयालम के साहित्यों की हुई है। इससे दूसरा विषय यह प्रमाणित हो जाता है कि भक्ति का आन्दोलन देश व्यापी रहा और भारत के सभी प्रदेश उसके प्रवाह में पूर्ण रूप से निमज्जित थे। सन् १६५६ में श्री हिरण्मय को उनके शोध-प्रबन्ध "हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन" पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह भी आर्य भाषा हिन्दी और द्रविड़ भाषा कन्नड़ के साहित्यों की एक ही काव्य धारा की तुलना प्रस्तुत करता है। सन् १६५७ में श्री रामनाथ त्रिपाठी को उनके शोध प्रबन्ध "कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन" पर आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस में दो भाषाओं की दो विशिष्ट कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। उसी वर्ष श्री इ. पांडुरंगराव को उनके शोध-प्रबन्ध "आन्ध्र-हिन्दी-रुपक (हिन्दी और तेलुगु नाटक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन)" प्रस्तुत करने पर नागपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यहाँ दो भाषाओं की एक ही साहित्यिक विधा की तुलना की गयी है। सन् १६५८ में श्री प्रभाकर माचवे का शोध-प्रबन्ध "हिन्दी और मराठी का निर्गुण-सन्त-काव्य (११ वीं से १५ वीं शती : तुलनात्मक अध्ययन)" आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। उसी वर्ष श्री गंगाशरण त्रिपाठी का शोध-प्रबन्ध "अवधी, व्रज और भोजपुरी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन" प्रयाग विश्व-विद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। अवधी, व्रज और भोजपुरी हिन्दी की बोलियाँ होते हुये भी उनके अपने स्वतन्त्र साहित्य हैं और उनके तुलनात्मक अध्ययन से एक कमी की पूर्ति हो गयी है। उसी वर्ष कु० विद्यामिश्र ने अपना शोध-प्रबन्ध "वाल्मीकि-रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन" प्रस्तुत करके लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। श्री शंकरराजुलु नायुडु को उनके शोध प्रबन्ध "कम्बन और तुलसी : एक तुलनात्मक अध्ययन" पर १६६१ में मद्रास विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि दी।

उपर्युक्त सभी तुलनात्मक शोध-प्रबन्धों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलना के लिये चुने हुए विषय मध्य युगीन साहित्य के अन्तर्गत पड़ते हैं। अधिकतर कार्य भक्ति-आन्दोलन पर हुआ है। दो प्रवन्ध तो निर्गुण सन्तों की विचारधारा से सम्बन्धित हैं। किन्तु हमें भारतीय साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों पर तुलनात्मक अध्ययन का अभाव अधिक खटकता है। भारत के विभिन्न आधुनिक

साहित्यों के प्रेरणा-स्रोत, साँस्कृतिक चेतना, सामाजिक परिस्थितियाँ तथा उन पर पड़े हुए बाह्य प्रभाव आदि में अत्यधिक समानता है। अतः प्रादेदिक साहित्यों की आधुनिक प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से भारत के साँस्कृतिक जागरण तथा पश्चमी सम्यता एवं संस्कृति से प्रभावित नवीन भारतीय आतमा का अमग्र व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। डा० नगेन्द्र का कथन है—"भारत के आधुनिक साहित्य का विकास-क्रम भी कितना समान है। विदेशी धर्म-प्रचारकों और शासकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के साथ सम्पर्क एवं संघर्ष एवं उससे पुनर्जागरण युग का उदय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा से साहित्य में राष्ट्रीय-साँस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष, साहित्य में नीतिवाद एवं सुधारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और नई रोमानी सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेष, चौथे दशक में साम्यवादी विचारधारा के प्रचार से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, इलियट आदि के प्रभाव से नए जीवन की बौद्धिक कुण्ठाओं और स्वप्नों को शब्द-रूप देने के नये प्रयोग और अन्त में स्वतन्त्रता के बाद विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय-साँस्कृतिक चेतना का विस्तार—यही संक्षेप में आधुनिक भारतीय वाङ्मय के विकास की रूप-रेखा है। जो सभी भाषाओं में समान रूप से लक्षित होती है।

---

१. डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध : डा० नगेन्द्र। भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता" नामक निबन्ध से। पृ० ७० :

द्वितीय अध्याय

युग-परिस्थितियाँ : प्रेरणा और प्रभाव

हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के प्रादुर्भाव में अनेक युग-परिस्थितियों की प्रेरणा एवं उनके प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं। वास्तव में आधुनिक युग ने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नवीन भाव-धाराओं एवं चिन्तन-धाराओं का प्रवाह पश्चिमी साहित्य एवं विचार धारा के सम्पर्क से और भी वेग से प्रवाहमान हो चला है। अतः आधुनिक युग की जिन परिस्थितियों ने मिलकर भारतीय स्वच्छन्दतावादी साहित्य एवं काव्य के उन्नयन में सहयोग दिया है, उनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

१. राजनैतिक
२. आर्थिक
३. सामाजिक
४. धार्मिक
५. साहित्यिक

१. राजनैतिक परिस्थितियाँ—

भारतीय स्वच्छन्दतावाद के आरम्भ का काल अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक संघर्षों एवं भाव-विद्रोह का रहा है। इस विचार-क्रान्ति एवं भाव-विद्रोह की परिधि को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन करना अधिक समीचीन होगा। (१) व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति। (२) भारत की आंतरिक क्रान्ति।

(क) अंतर्राष्ट्रीय क्रान्ति--

पश्चात्य विचारधारा एवं परिस्थितियों के प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ने के कारण उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ देना परमावश्यक है।

मानव-जाति के विकास में १९ वीं शताब्दी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में यूरोप में धर्म और विज्ञान का भयंकर द्वन्द्व चल रहा था। विज्ञान के भौतिक एवं तर्कसंगत आक्रमण से धार्मिकता के नशे में निद्रित विश्व, अकस्मात्

जाग्रत हो उठा। इसके पूर्व यूरोप में ईसाई चर्च का सर्वाधिकार था और शासन भी धर्म के इंगित पर चला करता था। ईसाई धर्म एवं चर्च को धिक्कारने का साहस किसी में नहीं था। किन्तु १६ वीं शताब्दी तक आते-आते मानव के धार्मिक अन्ध-विश्वास पर बुद्धि ने विज्ञान के द्वारा विद्रोह करना प्रारम्भ किया। डार्विन, न्यूटन तथा ऐसे ही महान वैज्ञानिकों एवं अन्वेषकों ने प्रकृति की गहन परीक्षा करके ऐसे अमूल्य तथ्यों का उद्घाटन किया, जो परम्परागत धर्म की मान्यताओं के पूर्णरूपेण विरुद्ध थे। साधारण जनता को विज्ञान से भावी सुख एवं नवीन जीवन की आशा का रंगीला स्वप्न दिखाई पड़ा। विज्ञान ने मानव के अन्ध-विश्वासों को भूलुंठित कर दिया। इस रूप में यूरोप ने महान उपकार मानव का किया। विज्ञान के बढ़ते-बढ़ते मानव में नवीन ज्ञान की ओर उत्सुकता एवं उत्साह अधिक प्रबल होने लगे। चिन्तन एवं मनन के क्षेत्र भी उस वैज्ञानिकता से अछूते नहीं रहे। डार्विन, रुसो, वाल्टेयर, ऑडम स्मिथ और जॉन स्टुअर्टमिल ने विचार-जगत में नवीन दृष्किोण एवं नूतन उत्साह का संचार किया। उनके विचारों के प्रभाव एवं प्रेरणा से फ्राँस मे भीषण राज्य-क्रान्ति हुई और जनता ने सरकार को अपने हाथों में ले लिया। अमेरिका में भी स्वाधीनता का संग्राम चला और इसके फलस्वरूप अमेरिका एक नवीन राष्ट्र के रूप में अवतरित हुआ। इन दोनों क्रान्तियों ने मानव की स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृ-भावना का खुलकर प्रचार किया। पश्चिम और पूर्व के बीच यातायात के साधनों की वृद्धि होने के कारण पश्चिम की राजनैतिक विचारधाराओं का प्रभाव क्रमशः भारत पर स्पष्ट रूप से पड़ने लगा।[1] इस प्रकार १६ वीं शती तक युगों के अंधकार को चीर कर मानव-जाति नवीनता एव सम्पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगी।

२ भारत की आन्तरिक क्रान्तिः—

कई शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् सम्पूर्ण भारत की विद्रोही चेतना का विस्फोट सन्० १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम के रूप में प्रकट हुआ। भारत में भी प्राचीन एवं नवीन के बीच संघर्ष चलने लगा। सन् १८५७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार समाप्त हो गया और ब्रिटिश पार्लियामेंट ने राज्य-पालन का भार स्वयं ग्रहण किया। उसी वर्ष महारानी विक्टोरिया ने यह घोषणा की कि भारत में सभी जातियों तथा धर्मों के प्रति पूर्ण न्याय किया जायगा : भारतीयों के धार्मिक

---

1. "Mechanical facility of communication between West and East improved almost from day to day, and made the transmission of sympathetic currents more and more direct." (Recollections : Lord Morley ; Vol. II. P. 149)

विषयों में कोई बाह्य हस्तक्षेप नहीं होगा। शासन के द्वारा सभी का संरक्षण होगा और जनता का कल्याण ही सरकार का ध्येय रहेगा। देशी राजाओं की सुरक्षा एवं स्वातन्त्र्य का ध्यान रखा जायेगा और सरकार अपनी राज्य-विस्तार-नीति को तिलांजलि देगी। इस घोषणा के फलस्वरूप भारतीय जनता में सरकार के प्रति विश्वास की भावना जगने लगी। सम्पूर्ण भारत के वायुमण्डल में एक प्रकार की आशा और प्रफुल्लता छा गयी। रेल, डाक-तार और शिक्षा आदि की व्यवस्था के कारण विदेशी सरकार के प्रति जनता में कृतज्ञता की भावना उमड़ पड़ी।

किन्तु क्रमशः सब को यह विदित हुआ कि जो कुछ सरकार ने भारतीयों की सुविधा के निमित्त किया है, केवल अभिनय मात्र था। इन सुधारों के पीछे कोई सद्-भावना नहीं थी। भारतीयों को यह ज्ञात हो गया कि अंग्रेजों ने देश भर में रेलों का जाल केवल अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही बिछाया था। रेलों के द्वारा केवल भारत का कच्चा माल बड़े-बड़े नगरों तक शीघ्रता के साथ पहुँचाया जा सकता था और वहाँ से जहाजों में विदेशों को पहुंचाया जा सकता था। इसका अन्य कारण यह भी रहा कि अवसर पड़ने पर अपनी सेना को रेलों द्वारा भारत के किसी कौने में भी भेज सकते थे। ब्रिटेन की स्वार्थमयी व्यावसायिक वृत्ति अत्यन्त तीव्र होती गयी और उसने भारत में अधिक पूँजी लगाई। परिस्थितियों की कठोरता ने भारतीय जनता में अविश्वास एवं विद्रोह की भावनाओं का संचार किया। इस देशव्यापी असन्तोष का चरमोत्कर्ष उस समय लक्षित हुआ, जब सन् १८८५ में भारतीय जनता ने पहली बार एक राष्ट्रीय झण्डे के नीचे संगठित होकर "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना की।

आरम्भ में सरकार कांग्रेस के कार्य-कलापों को उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। किन्तु शीघ्र ही वह इस संस्था की गति-विधि को सतर्कता एवं जागरूकता के साथ देखने लगी। कांग्रेस संस्था के द्वारा भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था। इसी समय भारत के राजनैतिक क्षेत्र में एक आकस्मिक घटना घटी जिसने भारत के स्नायु-जाल में विद्रोह की लपटों को भड़का दिया। सन् १९०४ में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने अपनी निरंकुशता का परिचय देते हुए बंगाल को दो भागों में विभक्त किया और सन् १९०५ तक बंग-भंग की घोषणा सरकारी गजट में कर दी गयी। अभिनव राष्ट्रीयता के प्रादुर्भाव के काल में सरकार के इस कुकर्म ने भारतीय प्रतिष्ठा पर कुठाराघात किया और कांग्रेस ने इसका वीरोचित विरोध किया।[1] अखण्ड

---

1. See-"To the Government the Partition of Bengal was in Lord Curzon's words, 'a mere readjustment of administrative boundaries', proposed with a view to the more efficient working of the imperial machine. To excited popular orators in Calcutta it meant the partition of a nation, an attempt to divide a homogeneous people, a deliberate and sinister attack upon the traditions, history, and even the language of the Bengalis."
(History of British India: P. F. Roberts: Third Edition L. P. 550)

भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक "वन्दे मातरम्" का गीत जनता के अधरों पर गूँज उठा और स्वदेशी आन्दोलन देश-भर में व्याप्त हो गया। सन् १९०४ में एशिया के छोटे, किन्तु सुसंघटित देश जापान ने रूस जैसे विशाल यूरोपीय राज्य को पराजित किया। इस घटना ने यह प्रमाणित किया कि अब यूरोप के देश अजेय नहीं हैं। जापान की विजय ने पराधीन देशों में एक प्रकार का आत्म-गौरव एवं आत्म-निर्भरता की भावना प्रतिष्ठित कर दी। इसी समय तुर्कों ने यूनानियों को पराजित किया। इस तरह जर्मनी एवं इटली के राष्ट्रों के रूप में संगठित होना, आयरलैण्ड का होमरूल आन्दोलन फ्रांस की राज्य-क्रान्ति तथा अमेरिका का स्वातन्त्र्य-संग्राम-इन सभी ने भारत की सामान्य जनता को संगठन एवं राष्ट्रीयता का महत्व समझा दिया था।' फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत-जाति अपने कुल, जाति एवं धर्म के स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता की व्यापक भावना में दीक्षित होने लगी थी। राष्ट्रीयता के विकास ने सम्पूर्ण देश के लिए एक देश-भाषा की आवश्यकता का अनुभव किया और आगे चलकर हिन्दी ऐसी भाषा के रूप में सर्वमान्य हुई। इसी समय से कांग्रेस ने भी आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास एवं दृढ़ता के साथ अपना कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया।

लार्ड मिण्टो के समय तक (सन्. १९०४-१०) बंग-भंग से सम्बद्ध स्वदेशी आन्दोलन चलता रहा। वास्तव में बंग-भंग के पीछे हिन्दुओं और मुसलमानों को विभक्त करके उन पर शासन करने का षड्यन्त्र कार्य कर रहा था, क्योंकि बंगाल के पूर्वी भाग में मुसलमान एवं पश्चिमी भाग में हिन्दू अधिक थे। ब्रिटिश सरकार की निरंकुशता ने कांग्रेस में अतिवादियों को जन्म दिया जो विद्रोह और आकस्मिक क्रान्ति का समर्थन करने लगे। फलतः सन् १९०५ में कलकत्ता के अधिवेशन में कांग्रेस

---

1. Also see : "Japan had defeated the mighty armies of Russia. 'The reverberations of that victory, said Lord Curzon, 'have gone like a thunderclap through the whispering gallaries of the East. Western nations found both their material and spiritual weapons deftly turned against them, for the East, even in revolt, was imitative, and just as Japan vanquished Russia by weapons of precision so in Persia, India and China the reform party modelled themselves on the most approved pattern of Western Liberalism derived their political armament from the political philosophy and literature of Europe."

(History of British India: P. E. Roberts, Third Edition: P. 567 & 561).

अतिवादी एवं मितवादी दलों में विभक्त हो गया। इतना होने के पश्चात् भी सभापति दादाभाई नौरोजी ने यह घोषणा कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'। उनके प्रभाव से कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ कि अब से कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य है, शासन-सुधार मात्र नहीं। सन् १९०० के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस संस्था मितवादी और अतिवादी दलों में विभक्त हो गयी। मितवादीदल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले हुए और अतिवादियों के नेता हुए तिलक। अतिवादियों ने देश भर में गोली चलाना, बम फेंकना, तार और रेल-पटरियों को उखाड़ फेंकना, हत्या करना आदि कार्यवाइयाँ प्रारम्भ कर दीं। पंजाब के अतिवादी दल के सदस्य लाला लाजपतराय निर्वासित कर दिये गये और तिलक को ६ वर्ष की सजा मिली। सरकार ने भारत के समाचार-पत्रों का स्वातन्त्र्य छीन लिया। इस प्रकार सरकार का दमन-चक्र जनता पर क्रूरता के साथ चल रहा था। सन् १९०६ में, बंगभंग के परिणाम स्वरूप सैयद अहमद खाँ के अनुयायियों ने "मुस्लिम लीग" की स्थापना की। सन् १९०९ में "मिन्टो-मार्ले-सुधार" प्रस्तुत किये गये, जिन के अनुसार कौन्सिलों से लेकर जिला बोर्डों तक में प्रतिनिधि चुनाव द्वारा चुने जा सकते थे। इस समय तक अंग्रेज कांग्रेस से किसी-न-किसी प्रकार समझौता करना चाहते थे। लार्ड हार्डिंग्ज द्वितीय (सन् १९१०–१६) अंग्रेजों की इस समझौतावादी नीति के प्रतिनिधि बनकर आये। कांग्रेस ने सन् १९१० के प्रयाग-अधिवेशन में उनके आगमन पर अपना संतोष प्रकट किया। वास्तव में हार्डिंग्ज भारतीय जनता का सच्चा हिताभिलाषी मित्र था। अपने उदार दृष्टिकोण के कारण वह सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रेमपात्र बन गया। उसके राज्य-काल से बंगाल पुनः संघठित हुआ। सन् १९१२ में कलकत्ता से स्थानांतरित होकर भारत की राजधानी दिल्ली चली गयी। सन् १९१६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना महामना पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा हुई। राजनैतिक समस्याओं के कारण मुस्लिम लीग और कांग्रेस में पारस्परिक सम्पर्क अधिक हो गया और सन् १९१६ में दोनों का सम्मिलित अधिवेशन लखनऊ में हुआ। इस प्रकार हार्डिंग्ज के शासन-काल में भारत की राजनैतिक परिस्थितियों में शान्ति छा गयी। सन् १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ हो गया। इस युद्ध में भारत ने ब्रिटेन की सहायता अत्यन्त तत्परता के साथ की। सन् १९१८ में युद्ध में विजयी होने के उपरान्त अंग्रेजी सरकार ने भारत को उसकी सेवाओं के लिए कुछ नहीं दिया। इसके पूर्व ही लार्ड चेम्सफोर्ड भारत के वायसराय नियुक्त हुए। सरकार की ओर से सन् १९१९ में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिससे भारतीय असन्तुष्ट हो गये। इसी अवसर पर अपराधी राजद्रोहियों तथा क्रान्तिकारियों का दमन करने के लिये सरकार ने "रौलट एक्ट" पास किया। गान्धीजी के नेतृत्व में भारत की सम्पूर्ण जनता ने ६, अप्रैल सन् १९१९ में हड़ताल करके उस का घोर विरोध किया। सरकार ने दमन की नीति अपनायी। इस नीति की पराकाष्ठा उस समय दिखायी पड़ी, जब १३ अप्रैल सन् १९१९ को पंजाब के

के जलियानवाला बाग में जनरल डायर ने शान्तिपूर्ण नागरिकों की विशाल सभा पर अप्रत्याशित रूप से गोलीकांड करवा दिया। सैकड़ों निरीह प्राणी गोलियों के शिकार बने। फलस्वरूप सन् १९२० सितम्बर में कलकत्ता कांग्रेस में गान्धीजी ने असहयोग-आन्दोलन की योजना बनाई और दिसम्बर के नागपुर अधिवेशन में शान्तिपूर्ण, अहिंसात्मक उपायों द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति का लक्ष्य स्थिर हो गया। सरकारी स्कूलों, कालेजों तथा दफ्तरों का परित्याग, सरकारी उपाधियों का त्याग आदि कार्य इस आन्दोलन के प्रधान अंग थे। खद्दर का उपयोग, चरखे का प्रयोग एवं प्रचार चला। इस आन्दोलन में मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने मिलकर कार्य किया और आन्दोलन की लहरें देश-भर में दौड़ पड़ीं। सन् १९२५ में बारडोली सत्याग्रह सरदार बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में हुआ। सन् १९२९ में भारत के सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य को ही कांग्रेस ने अपना ध्येय घोषित कर दिया था। सन् १९३० में गान्धीजी ने नमक कानून तोड़ने के लिए डान्डी यात्रा की और गिरफ्तार हो गये। इस समाचार के सुनते ही भारत-भर की जनता ने विद्रोह किया। सन् १९३१ में विप्लववादी भगतसिंह और उनके दो मित्रों को फाँसी दी गयी और सन् १९३२ में सरकार ने कांग्रेस को गै़र-कानूनी घोषित कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया में सन् १९३३ में गान्धीजी के आमरण अनशन की घोषणा ने सम्पूर्ण देश के वायुमण्डल को विक्षुब्ध कर दिया। इस प्रकार स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिये गान्धीजी के नेतृत्व में कांग्रेस-संस्था १९४७ तक कार्य करती रही।

प्रभावः—

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के साथ पाश्चात्य विचारधारा भारत में प्रविष्ट हो गयी और उसका प्रभाव साहित्यिक आन्दोलनों पर भी पड़ा। समानता, विश्व-बन्धुत्व की भावना तथा व्यक्तिवाद आदि पाश्चात्य विचारों ने हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छंदतावादी काव्य-धाराओं के प्रादुर्भाव में योगदान दिया। इसके साथ उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशकों तथा बीसवी शती के प्रथम तीन दशक के भारत की राजनैतिक परिस्थितियों ने हिन्दी और तेलुगू के स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रभावित किया। गाँधीजी के सशक्त नेतृत्व में भी काँग्रेस का कई अवसरों पर विफल हो ज़ाना तथा जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड आदि घटनाओं से उत्पन्न भारतीय जनता को निराशा तथा आत्मग्लानि का प्रभाव दोनों साहित्यों के स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस प्रकार भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव और उसके स्वरूप पर देखा जा सकता है।

३. आर्थिक परिस्थितिः—

मध्ययुग के अन्तिम चरण में विज्ञान ने मानव के सार्वभौमिक व्यक्तित्व पर आधिपत्य चलाने वाले धर्म पर कुठाराघात किया। १६ वीं शताब्दी से ही ईस्ट

इण्डिया कम्पनी भारत पर अपना अधिकार जमाती जा रही थी। व्यापार करने के निमित्त आए हुए अंग्रेजों ने भारत की परिस्थितियों से लाभ उठाकर अधिकतर भारतीय भू-भाग को अपने वश में कर लिया। इंगलैंड, पुर्तगाल, स्पेन, फ्राँस, हालेण्ड आदि देशों की साम्राज्य-विस्तार-नीति के पीछे उन का व्यावसायिक दृष्टिकोण प्रमुख था। इन पश्चिमी देशों में परस्पर संघर्ष भी चलते थे और साम्राज्य-विस्तार के लिये उन्हें एक दूसरे से युद्ध भी करना पड़ता था।

रेल, जहाज, डाक, तार, टेलीफोन, बिजली आदि के आविष्कार के साथ विज्ञान की प्रगति अत्यन्त वेग से होने लगी। भारत में भी इन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग होने लगा। अब सारा काम यन्त्रों के द्वारा ही होने लगा। जहाँ खनिज पदार्थ, जल और ईंधन मिल जाता था, वहाँ महान नगरों का निर्माण होने लगता। शहरों के निर्माण के साथ-साथ वहाँ मिलों का भी निर्माण जारी था। यन्त्रों के पदार्पण के कारण मानव का शारीरिक परिश्रम अपेक्षाकृत कम होता गया। किन्तु क्रमशः सरकार की व्यावसायिक वृत्ति अत्यन्त तीव्र होती गयी और उसने भारत में अधिक पूँजी लगाना आरम्भ कर दिया। भारत का कच्चा माल विदेशों को जा रहा था और वहाँ से महँगा तैयार माल भारत में आता था। मिल-मालिक उत्पादन और व्यापार में अधिक लाभ पाते थे और पूँजीपतियों का एक वर्ग ही भारत में तैयार हो गया। बेकारी, दुर्भिक्षा आदि कारणों से देश दुर्दशाग्रस्त था और उसकी आर्थिक स्थिति क्रमशः दयनीय होती जा रही थी। मशीन-युग के दुष्परिणामों से परिचित होने में भारत को अधिक समय नहीं लगा। किसान एवं जमीदारों की स्थिति भी कोई अच्छी नहीं थी। और शहरों में मिल मालिक एवं मजदूरों का संघर्ष कम महत्वपूर्ण नहीं था। देश का अधिकतम व्यापार विदेशियों के हाथ में था और मशीनों ने घरेलू उद्योग-धन्धों पर भीषण प्रहार किया। उच्च वेतनभोगी अंग्रेज कर्मचारियों का भार भारत की दयनीय जनता पर लदा हुआ था। यद्यपि देशी कारीगरी, कौशल, ग्रामोद्योग, कुटीर-उद्योग आदि की उन्नति के उपयोगों द्वारा स्वदेशी आन्दोलन गाँधीजी के नेतृत्व में चलाया जा रहा था, तथापि देश के दारिद्रय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। सन् १९०० तक अंग्रेजों की आर्थिक नीति स्पष्ट हो गयी कि वे भारत का औद्योगिक विकास नहीं चाहते। अतः भारत के पूँजीपतियों ने भी काँग्रेस का समर्थन किया।

प्रभावः—

हिन्दी और तेलुगू के स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्भाव और विकास को समकालीन आर्थिक परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया। भारत में पूँजीवाद को बल मिलने के पश्चात् नगरों का विकास होने लगा था। नगरों में मध्यवर्ग भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने लगा। स्वच्छन्दतावाद के अधिकतर कवि इसी मध्यवर्ग के हैं

और प्रायः स्वच्छन्दतावादी काव्य मध्यवर्गीय चेतना का परिणाम समझा जाता है। दोनों महायुद्धों के बीच भारत के आर्थिक संकट से भारतीय जनता में जो निराशा छा गई थी उसका प्रभाव हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा पर पड़ा। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य में अभिव्यक्त निराशा तथा वेदना की प्रवृत्ति कुछ हद तक युग की इन आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित जान पड़ती है।

४. सामाजिक परिस्थितियाँ:—

कोई भी साहित्यिक आन्दोलन अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण करता है। कवि भी सामाजिक प्राणी है, अतः वह उस से प्रभावित हुये विना नहीं रह सकता। भारतीय सामाजिक नव-जागरण के प्रवर्तन का प्रथम श्रेय पाश्चात्य-सम्पर्क को है। अंग्रेजों के शासन में आने के उपरान्त ही यूरोप से भारत का सम्बन्ध घनिष्ट हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य सम्पर्क से भारत पर पाश्चात्य प्रभाव का पड़ना भी अत्यन्त स्वाभाविक ही है। भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव को चार मुख्य भागों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) अंग्रेजी शिक्षा तथा नवीन भाव-विचारों का प्रवेश।
(२) मुद्रण-कला का प्रभाव।
(३) उदारतावाद, व्यक्तिवाद एवं मानवतावाद का प्रभाव।
(४) समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलन।

(१) अंग्रेजी शिक्षा तथा नवीन भाव-विचारों का प्रवेश:—

पाश्चात्यों के भारत में आने के पूर्व ही देशीय भाषाओं में शिक्षा का सम्यक प्रचार था। परन्तु इस शिक्षा-पद्धति के अत्यन्त प्राचीन होने के कारण उसमें निर्जीवता आ गयी थी। भारत में अपने राज्य को सुस्थिर रखने तथा ईसाई धर्म के प्रचार करने के लिए अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार करने की आवश्यकता का अनुभव किया। लार्ड मेकाले के परामर्श से लार्ड विलियम् बेंटिक ने १८३५ ई० में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम होने की घोषणा की। राजा राममोहन राय आदि भारतीय नेताओं ने इस घोषणा का समर्थन किया। युवकों में भी अंग्रेजी भाषा सीखने का उत्साह क्रमशः बढ़ने लगा। प्रत्येक अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति को सरकारी नौकरी से प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा और सुविधा का भोग करते देखकर असंख्य युवक अंग्रेजी शिक्षा की ओर प्रवृत्त हुये। शीघ्र ही अंग्रेजी शिक्षा इतनी लोकप्रिय हो गयी कि छात्रों के लिए पुस्तकों का प्रबन्ध करना सरकारी तथा स्थानीय संस्थाओं के लिये असम्भव हो गया। इस शिक्षा को बंगाल तथा मद्रास में अधिक प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से नवीन यूरोप के साथ भारत का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य सम्पर्क से भारत में आकस्मिक एवं आमूल परिवर्तन हुये।

वस्तुतः आधुनिक भारत का जन्म ही अंग्रेजी-शिक्षा पद्धति की गोद में हुआ। इसके पहले जनता समाज और देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल चुकी थी। ऐसी दशा में अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से बहुत से व्यक्तिओं को अपने देश और समाज के प्रति कर्तव्य का बोध हो गया। व्यक्ति अपने संकुचित स्वार्थों के घेरे से ऊपर उठकर देश और उसकी जनता के प्रति प्रेम-भावना रखने लगा। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से देश के प्रति जो नवीन चेतना जगी, उसी के भीतर से भारत के राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक नव-जागरण का जन्म हुआ। इस प्रकार मध्य युग की अन्ध-कारा को चीरकर आधुनिक भारतवासी ने नवीन चेतना का साकार रूप धारण किया। यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक जो क्रान्तिकारी विचारक उत्पन्न हुए, उन्नीसवीं शती में आकर उनके विचारों ने एक निश्चित दर्शन का रूप धारण किया। ऐसे विचारकों में रूसो, वालटेयर और माण्टेगु प्रमुख थे। वे फ्राँसीसी क्रान्ति के उन्नायक नेता तथा विचारक थे। "स्वतन्त्रता, समानता एवं मातृ-भावना" उन्हीं के विचारों के मूल स्वर हैं। यूरोपीय सम्पर्क से भारत में भी विचारों का आन्दोलन सहस्र धाराओं में बह चलने लगा। कविता, नाटक, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, दर्शन, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में इन नवीन विचारों का अत्यधिक प्रभाव दृष्टि गोचर होने लगा। इस सन्दर्भ में मान्य कवि तथा विचारक रामधारीसिंह "दिनकर" का कथन है कि "इन सारे विचारों और आन्दोलनों का उत्तराधिकार भारत को आप से आप प्राप्त हो गया क्योंकि अंग्रेजी भाषा के द्वारा इस देश के चिंतक यूरोपीय विचारों के गहन सम्पर्क में थे। भारतवर्ष में अंग्रेजी की पुस्तकें और समाचारपत्र धड़ल्ले से आ रहे थे, अतएव यूरोप में चलनेवाले वैचारिक आन्दोलनों के साथ भारत अनायास सम्बद्ध हो गया एवं जिन भावनाओं की चोट से यूरोप के मस्तिष्क की शिराएँ थर-थरा रही थीं, उन भावनाओं की चोट भारत को भी महसूस होने लगी। यूरोप की वैचारिक क्रान्तियों में उस समय भारत ने अपना योगदान, विचारक की हैसियत से भले ही न दिया हो, किन्तु उनका प्रभाव ग्रहण करने में यह देश यूरोप से पीछे नहीं रहा।"[1] इस प्रकार भारतीय जनता में नव-जागरण की चेतना जगी और उनकी दृष्टि समाज और धर्म की प्राचीन मान्यताओं, कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वासों पर गयी। जनता के मन में एक प्रकार का असन्तोष छा गया और वह सरकार से वाक्य-स्वातन्त्र्य की माँग करने लगी।

(२) मुद्रण-कला का प्रादुर्भाव :—

आधुनिक युग के निर्माण में मुद्रण-कला ने अत्यधिक योगदान दिया है। मुद्रण-कला का आविष्कार मानव-सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में एक अभूतपूर्व

---

१. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह "दिनकर" द्वितीय संस्करण— पृ० ४२२

घटना है। मुद्रण-कला के विकास के साथ मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन हुये। मुद्रण-कला के व्यापक प्रभाव का आकलन किये बिना आधुनिक युग के आन्दोलनों का समग्र स्वरूप स्पष्ट नहीं किया जा सकता। उसने मनुष्य के लिये विचार-विमर्श का व्यापक क्षेत्र खोल दिया है, ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का पथ प्रशस्त कर दिया है, सत्य के अन्वेषण और प्रसार में योग दिया है और अंत में उसके भावात्मक सम्बन्धों को व्यापक बना दिया है। उसके बिना मनुष्य के भाव-विचारों का यह आधुनिक प्रसार कभी सम्भव ही नहीं होता। आधुनिक काल को उसके पहले के सारे युगों से अलग कर देने वाली सभी विशेषताओं के मूल में उसका प्रबल हाथ अवश्य देखा जा सकता है।"[१] मुद्रण-कला के आविष्कार के पहले मनुष्य की मौखिक वाणी श्रोताओं की एक सीमित मण्डली को प्रभावित अवश्य करती थी, किन्तु उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित तथा उसका प्रभाव क्षणिक होता था। मुद्रण कला के आविर्भाव के पश्चात् मनुष्य अपने भाव तथा विचारों को असंख्य पाठकों तक प्रेषण पुस्तक या पत्र-पत्रिकाओं द्वारा कर सकता। इस तरह प्रकाशित तथा लिपिबद्ध भाव-विचारों को पाठक अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ सकता है और अपने अभीष्ट विषयों पर मनन एवं चिंतन कर सकता है। अत: मुद्रण-कला भी भारत के लिये पाश्चात्यों की देन है। १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में पुर्तगाल ने भारत में मुद्रण-कला का उपयोग किया और गोवा में प्रथमतः पुस्तकें छपीं थीं। १९ वीं शती के आरम्भ तक भारत के सभी प्रान्तों में मुद्रण-यंत्रों की स्थापना हो गयी थी। मुद्रण-यन्त्रों से प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथ छपते थे और उनका प्रसार एवं प्रचार जनता में होता था। मुद्रित पुस्तकों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गयी थी। साहित्य एवं विभिन्न शास्त्रों के ग्रंथ सामान्य जनता तक पहुँच पाते थे। पुस्तकें, समाचार पत्र एवं साहित्यिक पत्रिकायें जनता में प्रचार पाती थीं और जनता के ज्ञानार्जन के लिये असंख्य सुविधायें आ उपस्थित हुईं। मुद्रण-कला की सुविधा के कारण अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार भी सुगम हो गया। प्रकाशित स्कूली पुस्तकों की कोई कमी नहीं थी। मुद्रण-कला ने ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ साहित्य का भी प्रचार किया। मुद्रण-कला ने प्रत्यक्ष रूप से मानव की ज्ञान-तृष्णा को और भी बढ़ा दिया है, अप्रत्यक्ष रूप से साहित्यिक दृष्टिकोण तथा उसकी गतिविधि पर पर्याप्त प्रभाव डाला। अत: भारतीय स्वच्छन्दतावाद का जन्म जिन सामाजिक परिस्थितियों के माध्यम से हुआ, उनके निर्माण में मुद्रण-कला का भी उल्लेखनीय स्थान रहा है।

---

१. "साहित्य और मुद्रण कला" लेख से : डा० ऐस० टी० नरसिंहाचारी : यसे० वि० यूनिवर्सिटी औरियंटिल जरनल : वाल्यूम् ३—पृ० १।

(३) सामाजिक विचारधारा से सम्बद्ध कुछ पश्चिमी वादों का प्रभाव :

१६ वीं शती के अंत तक यूरोप की जिन नवीन विचारधाराओं का प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ रहा था, उनमें उदारतावाद, व्यक्तिवाद एवं मानवतावाद प्रमुख हैं।

३. (क) उदारतावाद :—

१६ वीं शती के आरम्भ तक यूरोप में स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृ-भावना की भावनाओं को लेकर आन्दोलन चल रहा था। फ्राँस की राज्य-क्रान्ति की ये भावनायें उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध तक आते-आते उदारतावाद के रूप में ढल गये थे। वास्तव में उदारतावाद अंग्रेजी शब्द 'लिबरलिज्म (Liberalism) का पर्याय है। उदारतावाद व्यक्ति और समाज के बीच समन्वय स्थापित करने का एक राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण है। उदारतावाद के दो मुख्य प्रकार हैं—आर्थिक और राजनैतिक। राजनैतिक उदारतावाद जनतंत्र का आरम्भिक स्वरूप है, क्योंकि जनतंत्र समष्टि को ही अधिकार तथा शक्ति का केन्द्र-विन्दु मानता है। अतः राजनैतिक क्षेत्र में उदारतावाद अर्द्ध-जनतंत्र है। उदारतावादी दृष्टिकोण का अस्तित्व पूर्ण जनतंत्र और व्यक्तिवाद के बीच में विद्यमान है। इस उदारतावाद का प्रभाव १६ वीं शती के भारतीय विचारधारा तथा भारतीय साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। भारतीय स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं की पृष्ठभूमि में इस उदारतावाद की भावना को स्पष्ट देखा जा सकता है।

३. (ख) व्यक्तिवाद :—

समाज अपने में निरवयव सस्था नहीं है, अपितु स्वतन्त्र्य व्यक्तियों का योग है। इसी कारण समष्टि-शक्ति को व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा अन्य भावनाओं पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हित और अहित को जितनी भली भाँति समझ सकता है उतना समाज कभी नहीं। "अत : तर्क की दृष्टि से सामाजिक बन्धन और परम्परायें, रीति और रिवाज, सामूहिक संस्थायें और मान्यतायें निरंकुशता के साथ व्यक्ति पर शासन नहीं कर सकतीं। व्यक्तिमूलक व्यापारों का साध्य व्यक्ति का हित है और उसका एक मात्र ज्ञाता व्यक्ति"।[1] व्यक्तिवाद ने समय-समय पर राष्ट्र या व्यक्ति की निरंकुशता का सफल विरोध किया और उन्हें व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को पहिचानने को बाध्य किया। प्रथमत : विचारों के क्षेत्र में और उसके पश्चात् राजनैतिक धरातल पर उतर कर उसने समाज तथा

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान संपादक) : प्रथम संस्करण : पृ० ७४४

उसके अभिन्न अंग व्यक्तियों को स्वतन्त्र बनाने का सम्यक् प्रयास किया है। वास्तव में मानव-समाज का इतिहास मूलतः समष्टिवाद और व्यष्टिवाद (व्यक्तिवाद) के पारस्परिक संघर्षों की सुदीर्घ कहानी है। सामाजिक व्यवस्था किसी एकांगी परिस्थिति पर टिक नहीं सकती, चाहे वह समष्टिवाद हो अथवा व्यक्तिवाद। वे एक दूसरे की कमी की पूर्ति करते हैं। अतः आदर्श सामाजिक व्यवस्था वही होगी जिस में दोनों के अधिकारों का संतुलित सामंजस्य हो। व्यक्तिवाद का प्रभाव उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती के आरम्भ की भारतीय परिस्थितियों पर रहा। भारतीय स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं के प्रादुर्भाव में इसका भी अपना योगदान है। भारत के स्वच्छन्दता-वादी कवियों ने भी मुक्त कण्ठ से अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन किया। स्वच्छन्दता-वादी काव्य में कवि की वैयक्तिकता सर्वत्र प्रधान रहती हैं, क्योंकि संवेदनशीलता और कल्पना, जो व्यक्तिवाद के मूल तत्व हैं, स्वच्छन्दतावाद में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

३. (ग) मानवतावाद :

मानवतावाद राजनैतिक तथा अहंभावनामूलक व्यक्तिवाद का सांस्कृतिक संस्करण है। आधुनिक विश्व को मध्यकाल की परम्परागत शृंखलाओं तथा संकीर्णताओं से मुक्त करने का अधिक श्रेय इस मानवतावादी विचारधारा को है। मध्यकाल में धार्मिक बन्धनों के कारण मानवीय मूल्यों को कम महत्व प्राप्त होता था और धर्मच्युत मानव को दलित या नीचे गिरा हुआ प्राणी समझा जाता था। मानवता-वादियों ने इन धार्मिक मान्यताओं का तिरस्कार कर यह घोषणा की कि पूर्ण मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। मानवतावादी जहाँ एक ओर किसी मानवोपरि दिव्य सत्ता को अस्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर अमानवीय यांत्रिकता और एकरसता का भी विरोध करते हैं। यद्यपि यह नवीन मानवतावाद विचार-जगत् की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अर्वाचीन देन होते हुये भी भारत के लिये यह विचारधारा तत्वतः नवीन नहीं है। प्राचीन भारतीय काव्यों में मानव की प्रतिष्ठा और उसके आत्म-गौरव की सुरक्षा का ध्यान रक्खा गया है। वाल्मीकि के राम और व्यास के श्रीकृष्ण वास्तव में मानवता की भव्यतर मूर्तियों के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। मानव के ही दिव्य और नीच भावनाओं को ही लेकर देवताओं तथा राक्षसों की कल्पना की गयी है और मानव को इन दोनों (सुर तथा असुर) तत्वों से निर्मित प्राणी के रूप में दिखाया गया है। सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना भी मानव के रूप में ही की गयी है। भगवान भी समय-समय पर मानव का रूप धारण करता है। ऋषि के वचनों के अनुसार मानव से बढ़कर इस विश्व में कोई महान नहीं है।[1] भारत में जनता-

१. गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि न मानुष्याच्छ्रेष्टतरं हि किंचित्।" (निबन्ध संग्रहः "साहित्य का मर्म" लेख से। हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा श्री कृष्णलाल (संपादित) द्वितीयावृत्ति। पृ० १९२।

जनार्दन की भावना अत्यन्त प्राचीन है। इस प्रकार "सम्पूर्ण मानव-जाति एक महान कुटुम्ब है और असंख्य उपस्थित राष्ट्र तथा जातियाँ केवल उस की शाखायें मात्र हैं। अतः सम्पूर्ण मानव-जाति के पारस्परिक लाभ तथा सुख-समृद्धि की वृद्धि करने के लिये सभी देशों के जागृत मनीषी, हर एक प्रकार से, मानव-सम्पर्क को प्रोत्साहित कर तथा उसके लिये सुविधायें देकर और जहाँ तक हो सके, सभी विघ्नों को हटाने की कामना करते हैं।"[1] मानवतावादी विचारधारा को विश्व के महान स्वच्छन्दतावादी कवियों तथा विचारकों ने स्वीकार किया है और भारत के स्वच्छन्दतावादी कवि भी इस के अपवाद न रहे। अतः मानवतावादी विचारधारा भारतीय स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की प्रेरक शक्तियों में से प्रमुख है।

४. समाज-सुधार-सम्बन्धी आन्दोलन :—

१९ वीं शताब्दी में सामाजिक सुधारों को भी अपना मुख्य लक्ष्य बनाकर चलने वाले धार्मिक आन्दोलनों में ब्रह्म-समाज तथा आर्य समाज अत्यन्त प्रमुख रहे हैं। यहाँ उन दोनों के समाज-सुधार-सम्बन्धी कार्यक्रम पर विचार किया जाय।

ब्रह्म-समाज की स्थापना उस समय के हिन्दू समाज की रक्षा से लिये अत्यन्त आवश्यक थी। ब्रह्म-समाज ने जाति, कुल, धर्म की संकीर्णता में पड़ी हुई भारतीय जनता में एकता की भावना को जागृत किया और अपने भीतर से अन्ध-विश्वासों एवं कर्मकाण्डों को पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दिया। उसने मानव की समानता तथा एकता पर बल दिया। "ब्रह्म समाज मूलतः एक धार्मिक आन्दोलन होते हुए भी अपने अंतर में समाज-सुधार की लहरों का वहन कर रहा था। सामाजिक आचार-व्यवहारों के पुनःर्निर्माण में आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जागृत स्वतन्त्रता तथा समानता आदि विचारों का अधिक योगदान रहा है सभी प्रकार की सामाजिक असमानताओं से

---

१. "......all mankind are one great family of which the numerous nations and tribes existing are only various branches. Hence enlightened men in all countries feel a wish to encourage and facilitate human intercourse in every manner of removing as far as possible all impediments to it in order to promote the reciprocal advantage and enjoyment of the whole human race."

(The Cultural Heritage of India Ed. by Rama Krishna Centenary Committee, Bolpur Math, Calcutta. P. 406.)

स्त्रियों के उद्धार के लिये ब्रह्म-समाज ने भरसक प्रयत्न किया है।"[१] ब्रह्म-समाज बाल-विवाह एवं सती-प्रथा के विरुद्ध था और उसने आधुनिक पद्धतियों पर आधृत स्त्री-शिक्षा के लिये सक्रिय योगदान दिया। ऐसी धार्मिक एवं सामाजिक प्रणाली के साथ ब्रह्म-समाज नास्तिकता, ईसाई धर्म तथा हिन्दू रूढ़ियों के विरुद्ध खड़ा हो गया। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन आदि महान नेताओं के पथ-प्रदर्शन में ब्रह्म-समाज ने बहुत सी अवस्थाओं को पार किया और वह जनता के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इसका जन्म बंगाल में होते हुए भी इसके अनुयायी देश भर में पाये जाने लगे। इस का प्रभाव देश व्यापी रहा।

४. (क) आन्ध्र-प्रान्त और ब्रह्म-समाज :—

सम्पूर्ण भारत में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं तथा आचार-व्यवहारों में विभिन्नता होते हुए भी उनकी सांस्कृतिक एकता के कारण सभी प्रान्तों की सामाजिक परिस्थितियाँ लगभग एक समान थीं। अन्ध-विश्वास, पशु-हिंसापूर्ण यज्ञ, मद्य-पान, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह का निषेध जिसके फलस्वरूप विधवाओं की विश्रृंखलता, भ्रूण-हत्यायें तथा वेश्याओं के रूप में परिणत होने वाली देवदासियाँ (दक्षिण में)— इन सभी सामाजिक दुराचारों से १९ वीं शती का भारत भरा हुआ था। एक प्रकार से यह भारत का अन्ध-युग है। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य-शिक्षा से प्रभावित कुछ भारतीय आत्माओं ने हैन्दव सभ्यता की सड़ी हुई अवस्था को देखकर, उसके सनातन मूढ़ आचारों को बदलने की चेष्टा साहित्य तथा सुधारों के माध्यम से की। ऐसे महान सुधारकों में बंगाल के राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा आन्ध्र में कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु प्रमुख हैं।

वीरेशलिंगम् पंतुलुजी आन्ध्र-नव जागरण के मूल पुरुष हैं। उनका जन्म सन् १८४८ में हुआ जो प्राचीन तथा आधुनिक, पौर्वात्य तथा पाश्चात्य सभ्यताओं तथा

---

1. "This primarily religious movement brought in its wake a wave of social reform. The sense of equality and liberty awakened by the new system of education was given a rather free play in remoulding social customs. The Brahma Samaj went solid for the emancipation of women from all forms of social inequities."

(The Cultural Heritage of India: Ed. by. Sri Ramakrishna Centenary Committee, Bolpur Math: Calcutta: P. 444.)

संस्कृतियों का संघर्षपूर्ण संधिकाल था। उस समय के समाज की संकुचित विचारधारा उनको बाँध न सकी। आन्ध्र में ब्रह्मसमाज के अत्यधिक प्रचार का सम्पूर्ण श्रेय वीरेशलिंगम् पंतुलु तथा वैंक्टरत्नं नायुडुजी को है। ब्रह्म-समाज के उदार दृष्टिकोण ने आन्ध्र की सुपुप्त सामाजिक चेतना को झकझोर दिया। पराधीन समाज की पिछड़ी हुई दशा को वीरेशलिंगम् जी ने अच्छी तरह पहचाना और आन्ध्र में वह ब्रह्म-समाज के कर्णधार बने।

वीरेशलिंगम् पंतुलुजी ने सर्वप्रथम अन्ध-विश्वास, पशु-हिंसा आदि सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उसके पश्चात् उन्होंने विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दिया और बहुत-सी बाल-विधवाओं के विवाह स्वयं अपनी देख-रेख में करवाये। समाज-सुधार के क्षेत्र में पंतुलुजी के पदार्पण करने के पूर्व विधवाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वास्तव में वह समष्टि-परिवार की नौकरानी थी, जिसे अपने श्रम के लिये कोई भी प्रतिफल नहीं मिलता था। समाज की दृष्टि में वह लांछित थी और समाज में उसका कोई सम्माननीय स्थान नहीं था। समाज में अन्य स्त्रियों की भी दशा कम करुणाजनक नहीं थी। समाज में उनको कोई गौरव का स्थान नहीं था। हिन्दुओं के "सहधर्मचारिणी" के नियमों ने उसे केवल विलासी पुरुषों के भोग की वस्तु ही बना दिया था। अपनी पैतृक सम्पत्ति पर स्त्रियों का कोई अधिकार नहीं था। देवदासियों तथा बाल्य-विवाहों की प्रथायें समाज के भाल पर कलंक मात्र थीं। स्त्रियों की ऐसी दशा ने वीरेशलिंगम् जी में सहानुभूति एवं दया उत्पन्न कर दीं। उन्होंने इन सभी कुप्रथाओं पर युद्ध की घोषणा की। उन्होंने अपनी "विवेकवर्धनी" नामक पत्रिका को समाज-सुधार का साधन बनाया तथा कुप्रथाओं की कटु आलोचना की। उन्होंने श्रृति, पुराण आदि हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन कर यह निरूपित किया कि वे सब विधवा-विवाह का समर्थन करते हैं। असंख्य प्राचीन-पन्थी हिंदुओं ने उनका विरोध किया, परन्तु उन सभी के आरोपों एवं आक्षेपों का उत्तर देकर उनमें से बहुतों को उन्होंने अपने विचारों की ओर आकर्षित किया। सन् १८८१ में उन्होंने सभी के समक्ष दो विधवा-विवाह करवाये। तदुपरान्त बहुत से लोगों ने इनका अनुसरण किया। उन्होंने राजमहेन्द्रवरम् में "विधवा-गृह" (Widow Home) की स्थापना की, जहाँ विधवाओं को जीवन में प्रगति करने के निमित्त सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध होती हैं। आन्ध्र प्रान्त में वीरेशलिंगम ही प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने यह अनुभव किया कि समाज का विकास केवल स्त्री शिक्षा से सम्भव है। उन्होंने अपनी पत्रिका "विवेकवर्धनी" में स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित अनेक लेख लिखे तथा स्त्रियों के लिए धवलेश्वरम् के पास एक विद्यालय की भी स्थापना की। विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा आदि सामाजिक सुधारों की दशा में उनकी सेवाओं पर संतुष्ट होकर सन् १८९३ में अंग्रेजी सरकार ने उन्हें "राव बहादुर" की उपाधि से विभूषित किया।

अपने महान आदर्शों एवं विचारों के प्रचार के लिये उन्होंने "**हितकारिणी समाज**" की स्थापना २८, नवम्बर १९०७ में की। इस समय यह चार संस्थाओं का निर्वाह कर रहा है—

१. सर्वप्रथम तो "**विधवा-गृह**" है, जिसमें विधवाओं को शिक्षा के साथ-साथ अन्य जीवनोपयोगी व्यवसाय भी सिखाये जाते हैं। "वे (वीरेशलिंगम्) ही आन्ध्र में ऐसे प्रथम नेता हैं, जिन्होंने विधवाओं का विवाह किया, समाज की दृष्टि में विस्मृत तथा पतित स्त्रियों के विषय में सभी सामाजिक लांछनों को अस्वीकार कर उनका देखभाल किया। इस प्रकार विधवा-गृह ने असंख्य असहाय बाल-विधवाओं, अनाथों तथा अविवाहित माताओं से त्यक्त शिशुओं को आश्रय दिया।"[1]

२. सन् १९०७ में उन्होंने "**वीरेशलिंगम् थीइस्टिक हाईस्कूल**" की स्थापना की।

३. सन् १९०८ में उन्होंने **प्रार्थना-मन्दिर** की स्थापना की।

४. उनसे स्थापित "**वीरेशलिंगम थीइस्टिक लाइब्रेरी**" अत्यंत प्रसिद्ध है। इस प्रकार वीरेशलिंगम् पंतुलुजी एक युगांतरकारी साहित्यकार होने के साथ-साथ एक महान समाज-सुधारक भी हैं और उस क्षेत्र में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।[2] "वे जो कुछ उपदेश देते थे, उन सब का आचरण स्वयं कर जनता के सम्मुख एक आदर्श खड़ा कर देते थे और इस दृष्टि से वे सम्पूर्ण भारतवर्ष के किसी भी महात्मा से कम महान नहीं थे। १९ वीं शती के राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन जैसे समाज-सुधारक भी जीवन काल में अपने स्वप्नों को सत्य बनाने तथा अपने वांछित व प्रिय संस्थाओं को साकार रूप देने में कंदुकूरि के समान सफल न रहे।"[3]

---

1. "He was the first leader in modern Andhra to have get widows remarried and forsaken and fallen women well taken care of without any social stigma attached to them........the Widow-Home had given refuge to countless helpless child-widows, orphans and unwanted children left behind by unmarried mothers."

   'The Indian Express: Saturday, 14th. April 1962.'

2. "Apart from his enormous literary output, his work in the cause of social reform singles him out in that field."

   'The Indian Express, Saturday, 14th.April 1962.'

3. "As a man who practised what he preached and set an example to his fellow men, he was almost second to none in the whole of India. Even social reformers like Ram Mohan Roy and Keshab Chandra Sen of the 19th. Century were not as successful as Kandukuri in seeing their dreams come true and fouuding institutions dear to their cause while they were alive." 'The Indian Express: Saturday: 14th. April 1962.)'

वीरेशलिंगम् पंतुलुजी के पश्चात् वेंकटरत्नं नायुडु, मट्नूरि कृष्णाराव, कोंपल्ले हनुमंतराव, पट्टाभि सीतारामय्या, अय्यदेवर कालेश्वराव, उन्नव लक्ष्मीनारायण, चिलकर्मति लक्ष्मीनरसिंहम्, रायसं वेंकट शिवुडु, कोमर्राजु लक्ष्मण राव, देशिराजु पेद वापय्या, दुग्गिराल सूर्यप्रकाश राव, तल्लाप्रगड नरसिंह शर्मा, पालपर्ति नरसिंहम् मन्नव वुच्चव्या प्रभृति ही नहीं, वल्कि पेद्दाड रामस्दामी, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, गुडिपाटि पेकटचलं, गाडेपल्लि सूर्यप्रकाश राव, गरिमेल्ल वीरभद्रराव आदि ने आन्ध्र प्रान्त को ब्रह्मसमाज की धारा में बहा दिया। कृष्ण शास्त्री की **'कृष्णपक्षमु'** **'उर्वशि'** आदि रचनाओं में ब्रह्म-समाज का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

उत्तर भारत में ब्रह्म-समाज का प्रचार सम्यक् मात्रा में रहा और वहाँ पर भी इसके समाज-सुधार का पक्ष प्रबल रहा।

आर्य-समाज के समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य भी बहुमुखी रहे। "इस धार्मिक आन्दोलन के साथ-साथ समाज के रीति रिवाज में भी बहुत से परिवर्तन आये। वर्ण-व्यवस्था एक धार्मिक प्रथा के रूप में न रही; वेदों पर ब्राह्मणों का एकाधिकार तिरस्कृत हुआ; बहुत सी सामाजिक दुर्बलताओं से स्त्रियाँ मुक्त की गयीं। इनके अतिरिक्त उदारतापूर्वक दान देने के कार्य-कलाप उत्साह के साथ होने लगे और शिक्षा व्याप्ति भी आर्य समाज का एक अभिन्न अंग बन गयी।"[१] इस तरह समाज के रीति रिवाजों में आमूल परिवर्तन लाना समय की माँग के अनुरूप था। इन सभी ने मिलकर आर्य-समाज को सफलता के सिंहासन पर बिठा दिया।

प्रभाव:—

हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव भी सम्यक् रूप में पड़ा। कवि के एक सामाजिक प्राणी होने के कारण उस पर सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव का पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है।

---

1. "This religious movement also was accompanied by sweeping changes of social customs. The caste-system as a religious institution was abolished; the monopoly of the Brahmins over the Vadas was denied; women were liberated from a number of social disabilities, Besides, enthusiasm for a wide range of philanthropic, acitivities including the spread of education became a remarkable feature of Arya Samaj."
The Cultured Heritage of India : Ed. by Sri Ramakrishna Centenary Committee, Bolpur Math, Calcutta. P. 446 & 447.

समाज की अनेक कुरीतियों तथा असमानताओं का प्रभाव हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं पर रहा। प्रसाद ने अपनी **"कामायनी"** में व्यक्ति और समाज के बीच की समस्या को तथा निराला ने **"भिक्षुक"**, **"विधवा"** आदि समाज की असहाय प्राणियों की दयनीय स्थिति को हमारे सम्मुख रख दिया है। तेलुगू के स्वच्छन्दतावादी काव्य में बाल-विवाह तथा दहेज-प्रथा आदि सामाजिक कुप्रथाओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से समाज में जो नई चेतना जाग्रत हुई है, उसका प्रभाव हिन्दी और तेलुगू के स्वच्छन्दतावादों पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। मुद्रण-कला के कारण चेतना समाज में क्षिप्र वेग से फैल गयी, जिस का प्रतिविम्ब स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्पष्ट लक्षित होने लगा। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के प्रादुर्भाव में उस समय की सामाजिक परिस्थितियों ने भी सम्यक् योगदान दिया है।

४. धार्मिक परिस्थितियाँ:—

कोई भी साहित्यिक आन्दोलन अपने युग की धार्मिक एवं साँस्कृतिक परिस्थितियों से भी प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण करता है।

मानव-समाज के विकास में धर्म ने अत्यधिक योगदान दिया है। आरम्भ से ही भारत एक धार्मिक देश रहा है और समय-समय पर यहाँ विभिन्न धर्मों का प्रचार एवं प्रसार था। धर्म और साहित्य में अटूट सम्बन्ध होने के कारण यहाँ साहित्य को धार्मिक प्रचार के निमित्त एक माध्यम के रूप में भी स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त यहाँ के मानव-जीवन पर धर्म का अधिक प्रभाव लक्षित होता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को प्रधानता दी जाती है। यह धार्मिक प्रवृत्ति वैदिक काव्यों से लेकर आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं तक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। विशाल संस्कृत के महाकाव्यों से लेकर आधुनिकतम हिन्दी महाकाव्य **'कामायनी'** तक भारत की सर्जनात्मक प्रतिमा काव्य के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक वैभव तथा स्वस्थ जीवन-दर्शन को वाणी देने में ही लगी हुई है। अपने रस एवं सौन्दर्य-मूलक मान्यताओं तथा मूल्यों की रक्षा करते हुए भी भारतीय काव्य सदा अपने अन्त-स्तल में मानव के लिए उज्ज्वल धार्मिक संदेश वहन करता आया है। प्राचीन काल से भारतीय कला एवं काव्य में धार्मिक विचारधारा अन्तःसलिला की भाँति बहती आ रही है। कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप से, कभी क्षीण और कभी क्षिप्र वेग से। परन्तु पाश्चात्य सम्पर्क से भारतीय जीवन-पद्धति में कई परिवर्तन हुए। भारत का मानसिक कायाकल्प हो गया। इसी समय हिन्दू-धर्म पर ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के आक्रमण अनेक रूपों में हो रहे थे। ऐसी दशा में हिन्दू धर्म के मनीषी अपने धर्म की दुर्बलताओं को हटाकर उसमें प्राण-संजीवनी शक्ति भरने के लिए कटिबद्ध हो

गए। उन्हीं के प्रयासों से हिन्दू-धर्म में नवीन शक्ति का संचार हुआ और भारत का सांस्कृतिक नव जागरण एक सुदृढ़ आधार-शिला पर खड़ा हुआ। अतः इन नवीन परिस्थितियों के कारण भारतीय जनता में जो नवीन चेतना का संचार हुआ, जो नवीन उत्साह की तरंगे उठीं, वे ही भारत के साँस्कृतिक नव जागरण की प्रेरणा-स्रोत थीं जिन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान हिन्दी और तेलुगू के स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के प्रवर्तन में कार्य कर रहा था। ऐसे सांस्कृतिक एवं धार्मिक नव जागरण में जिन आन्दोलनों तथा व्यक्तियों ने सहयोग दिया, उनका यहाँ पर्यालोचन किया जाय।

४. (क) ब्रह्म समाजः—

पहले से ही भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों का प्रथम केन्द्र बंगाल रहा है और उसे भारतीय नव जागरण का अग्रदूत कहा जा सकता है। ब्रह्म-समाज की स्थापना के पूर्व ईसाई धर्म देश में प्रचार पा रहा था। अतः हर एक हिन्दू को नवीन परिस्थितियों के अनुरूप अपने धर्म को नए साँचे में ढालने की आवश्यकता प्रतीत हुई। ऐसी परिस्थिति में भारत के सर्वप्रथम महान देशप्रेमी एवं समाज-सुधारक राजा राममोहन राय ने भारत के प्राचीन अद्वैत वेदान्त के सूत्रों पर आधारित होकर सन् १८२८ में ब्रह्म-समाज की स्थापना की। प्राचीन हिन्दू अन्ध-विश्वासों के बीच पलने पर भी उन्होंने इस्लाम तथा ईसाई धर्मों की विचारधारा का समग्र अध्ययन कर, एक विश्वजनीन दृष्टिकोण को अपना लिया। इसके पश्चात् उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि हिन्दू-धर्म की ईसाई-धर्म के पण्डितों तथा नास्तिकों के प्रहारों से रक्षा करनी है तो उसके स्वरूप में अधिक परिवर्तन की आवश्यकता है। तर्कसंगत विचारधारा भगवान को विभिन्न रूपों में देखने के लिए तैयार नहीं थी। भगवान को विभिन्न नामों तथा रूपों में देखना हिन्दू-धर्म में एक हास्यास्पद विषय बन गया। अतः राजा राममोहन राय ने उपनिषदों की विचारधारा के अनुरूप अरूप, परन्तु सगुण ब्रह्म को भगवान के आराध्य रूप से ग्रहण किया। इन की यह धारणा इस्लाम की भगवान-विषयक भावना तथा ईसाइयों की एकेश्वरोपासना के निकट दिखाई दी। यद्यपि राजा राममोहन राय उपनिषदों में वर्णित भगवान के स्वरूप-विषयक अन्य दृष्टिकोणों के मूल में निहित सत्य का साक्षात्कार न कर सके, तथापि उन्होंने हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों से ऐसे भगवान की रूप कल्पना की, जो अरूप होने पर भी सगुण है तथा अन्य धर्मों की ईश्वर-सम्बन्धी रूप-कल्पना के अत्यन्त निकट है।

वास्तव में ब्रह्म-समाज पर आरम्भ से ही ईसाई-धर्म का प्रभाव नितान्त स्पष्ट था। राममोहन राय ने उपनिषदों की विचार-धारा को भी ईसाई धर्म के

निकट लाने की चेष्टा की तो केशवचन्द्र सेन ने अपने समय तक ब्रह्म-समाज के संपूर्ण भवन को ईसाई-धर्म के आदर्शों पर खड़ा किया। इस प्रकार ब्रह्म-समाज का अन्तिम रूप केवल ईसाई-धर्म का भारतीय संस्करण मात्र रह गया था। उस समय तक ब्रह्म-समाज के अनुयायियों के आचार व्यवहार पर भी पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट हो गया। अतः सनातन हिन्दू-समाज के व्यक्तियों को वह अधिक संख्या में अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। फिर भी उस समय की परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुये हमें यह स्वीकार करना होगा कि ब्रह्म-समाज ने उस समय की एक गुरुतर आवश्यकता की पूर्ति की। अतः भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में ब्रह्म-समाज की सेवायें सदा के लिए सम्मान एवं गौरव के साथ देखी जायेंगी।

४. (ख) आर्य समाज :—

आर्य-समाज ने भारत के दूसरे कोने में विदेशी धर्म एवं विचार-धारा के विरुद्ध प्रचन्ड रूप धारण किया। जब कि उन्नीसवीं शती के सप्तम दशक तक केशव चन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म-समाज केवल ईसाई-धर्म के आदर्शों के साकार रूप में परिणत हो गया था। आर्य-समाज भारतवर्ष को पश्चिमी प्रभाव से बचाना चाहता था। उसका विद्रोही स्वर अत्यन्त प्रबल था। आर्य-समाज के आन्दोलन के बल पर पुनः भारत पर अपने आदर्शों तथा विचार धारा के आधार पर खड़ा हो सका। जब भारत नवीनता के प्रवाह में बहने जा रहा था, उस समय आर्य-समाज ने अतीत-कालीन भारत के आदर्शों को अपने मूल सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया।

आर्य-समाज सन् १८७५ में स्वामी दयानन्द सरस्वती से स्थापित हुआ। दयानन्द एक हिन्दू सन्यासी होने के साथ-साथ वेदों के पारंगत तथा भारतीय परम्परा के कट्टर कर्मयोगी थे। हिन्दू-धर्म के प्राचीन आदर्शों के प्रेमी होने के कारण वे ब्रह्म-समाज की पश्चिमी विचारधारा के भारतीय चिंतकों की आधुनिकता तथा हिन्दू-धर्म में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा के प्रतिकूल थे। स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म का समर्थन किया और उसके विरोधियों से लोहा लेने के लिए वे सदा सन्नद्ध रहते थे। अत्यंत उत्साह के साथ उन्होंने विदेशी धर्म प्रचारकों पर भयंकर प्रहार किए। उनमें हीनता की कोई भावना नहीं थी। वे इस्लाम के भी परम विरोधी थे। एक वीर योद्धा की भाँति उन्होंने अन्य धर्मों की खुलकर आलोचना की। धार्मिक क्षेत्र में स्वामी जी से लोहा लेना अन्य धर्म वालों के लिए सामान्य विषय न था। वैदिक धर्म के पश्चात आए हुए हिन्दू-धर्म के परिवर्तित स्वरूपों से उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी और वे वैदिक धर्म के विरोधियों की कटु आलोचना किया करते थे। अपने इच्छानुसार वेदों का अनुवाद तथा उन की व्याख्या भी

उन्होंने की तथा वैदिक धर्म के वाँछित रूप के प्रति तत्परता एवं एकाग्रता दिखाई। धर्म-परिवर्तन के विषय में स्वामीजी अत्यन्त उदार तथा अधिक व्यावहारिक भी थे। उन्होंने घोषणा कर दी कि **"धर्मच्युत हिन्दू प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में वापस आ सकता है, एवं अहिन्दू भी यदि चाहें तो हिन्दू धर्म में प्रवेश पा सकते हैं। यह केवल सुधार की वाणी नहीं थीं, अपितु यह जागृत हिन्दुत्व का समर नाद था। और सत्य ही, रणारुढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं हुआ।"**[१]

वेदों के प्रति एकांगी दृष्टिकोण के कारण चाहे आर्य-समाज में त्रुटियाँ कितनी भी आ गई हों, फिर भी यह आन्दोलन निस्सन्देह हिन्दुत्व की भावना से ओतप्रोत था। इसने देश की धार्मिक चेतना को मार्मिकता के साथ अभिभूत किया। मूर्ति-पूजा का निषेध कर उसने असंख्य आधुनिक चिंतकों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। इस प्रकार आर्य समाज ने भारत के अन्तर्गत प्रविष्ट नष्टदायी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति की रक्षा करने की चेष्टा की।

आर्य-समाज का प्रचार तथा प्रसार दक्षिण-भारत की अपेक्षा उत्तर में ही अधिक रहा। बम्बई, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब आदि प्रान्तों की जनता पर इसका अधिक प्रभाव रहा। उन प्रान्तों में आर्य समाज के प्रचारकों ने अनेक धार्मिक एवं सामाजिक महत्व की संस्थाओं की स्थापना कर, जनता की विशेष सेवा की। आन्ध्र प्रान्त में भी, विशेषकर हैदराबाद के आसपास, आर्य-समाज की कई संस्थाएँ आज भी काम कर रही हैं। फिर भी हिन्दी-भाषा-प्रान्त की तुलना में आन्ध्र में आर्य-समाज का प्रचार अपेक्षाकृत कम ही रहा।

४. (ग) थियोसाफ़िकल सोसाइटी :—

विदेशों में जन्म लेते हुये भी भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को प्रभावित करने वाले धार्मिक आन्दोलनों में से थियोसाफ़िकल सोसाइटी भी है। सन् १८७५ में इसका जन्म न्यूयार्क में हुआ। बौद्ध एवं हिंदू-धर्मों से तथा आधुनिक आध्यात्मवादियों की विचारधारा से प्रभावित इस आन्दोलन ने पाश्चात्य देशों में अधिक जनता को आकर्षित किया रहस्यवाद की सी अस्पष्टता के होते हुए भी उसने यथार्थ की उपेक्षा नहीं की। उसने हिंदुओं के दार्शनिक विचारों को वैज्ञानिक सिद्ध किया। अतः इसका प्रभाव शिक्षित जन-समूह पर अधिक पड़ा। कुछ हद तक इसने ईसाई-धर्म तथा भौतिक-वाद से भारतीय जनता की रक्षा की।

---

१. **संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर'। द्वितीय संस्करण : पृष्ठ ४६४**

किन्तु थियोसाफ़िकल सोसाइटी सामाजिक सुधारों के विषय में मौन रही। वह समाज के रीति-रिवाजों में आकस्मिक परिवर्तन का पक्षपाती नहीं थी। अत: हिन्दुओं को अपना धर्म छोड़ना न पड़ता था और वे सोसाइटी के भी सदस्य बन सकते थे। सोसाइटी ने हिन्दू-धर्म के ग्रंथों तथा उन के अनुवादों को विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित करवा कर आधुनिक शिक्षित समाज को हिन्दू-धर्म के महात्म्य से अवगत कराया। इस तरह इसने भी भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण के विकास में अन्य धार्मिक आन्दोलनों का साथ दिया। उत्तर भारत में आर्य-समाज ने जो सेवायें कीं, वही सेवायें दक्षिण में अधिकतर थियोसाफ़िकल सोसाइटी ने कीं।

४. (घ) रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद का प्रभाव :

ब्रह्म-समाज तथा आर्य-समाज महान् धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन होते हुए भी उन में जो कुछ कमियाँ थीं, उन्हें रामकृष्ण ने अच्छी तरह पहचान लिया, आर्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द में बौद्धिकता का आधिक्य था और ब्रह्म-समाजियों में भी भक्ति की विह्वलता केवल दिखाने के लिये ही रह गयी थी। वास्तव में, ब्रह्म-समाजियों ने धर्म की अपेक्षा सामाजिक सुधारों को अधिक महत्व दिया। राममोहनराय आदि ब्रह्म-समाजी हिन्दू-धर्म को ईसाई-धर्म के प्रहारों से बचाना चाहते थे तो दयानन्दजी हिन्दू-धर्म के एक अंश को ही रक्षणीय मानते थे। अत : हिन्दू-धर्म के समग्र स्वरूप की रक्षा किसी से न होने पायी। इस कमी की पूर्ति के लिये रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव हुआ।

राममोहन और दयानन्द से अनेक विषयों में परमहंस भिन्न थे। "दयानन्द भारतीय परम्परा के उद्‌भट पंडित और ब्रह्म समाजी नेता अंगरेजी ढंग के विद्वान थे। किन्तु, रामकृष्ण बहुत-कुछ अपढ़ मनुष्य थे। दयानन्द, राममोहन राय और केशव सार्वजनिक जीवन में इसलिये आये थे कि विधर्मियों की आलोचना से उन्हें चाहे चोट लगी थी, किन्तु, रामकृष्ण को किसी भी धर्म वालों के प्रति कोई आक्रोश नहीं था।"[1] परमहंस रामकृष्ण धार्मिक अनुभूतियों की जीवित प्रतिमा थे। उन्होंने धर्म को ज्ञानगम्य नहीं, अपितु अनुभूतिगम्य सिद्ध किया। रामकृष्ण हिन्दू-धर्म के माधुर्य के साकार स्वरूप थे। उनका संपूर्ण समय आत्म-चिंतन में ही व्यतीत होता था। ईश्वरत्व से उनका तन और मन भर गया था और पावनता की किरणें उनकी सौम्य आकृति से चारों ओर फैल जाती थीं। "आनन्द उन का धर्म, अतीन्द्रिय रूप का दर्शन उनकी पूजा और विरह उनका जीवन था।"[2] रामकृष्ण ने अपनी साधना

---

१. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वितीय संस्करण—पृ० ४८१

२. वही पृ० ४८४

के बल पर यह सिद्ध किया कि धर्मों के बाह्य रूपों में भिन्नता होते हुये भी उन के मूल तत्व एक समान हैं।

रामकृष्ण के उपदेशों को देश-देशान्तरों में फैलाने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द जी को है। रामकृष्ण की धार्मिक अनुभूतियों से विवेकानन्द जी ने व्यावहारिक सूत्रों को निकाल कर, विश्व-भर में उनका प्रचार किया। उन्होंने सन् १८९३ के शिकागो धार्मिक अधिवेशन में हिन्दू-धर्म को सभी धर्मों से उत्कृष्ट प्रमाणित किया तथा अनेक विदेशियों को उसकी ओर आकृष्ट भी किया। यह देखकर भारत का शिक्षित जन-समाज अपने धर्म और संस्कृति के गौरव का अनुभव करने लगे।[1] विवेकानन्द ने भारत को पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति में बह जाने से रोक दिया और घोषणा की कि भारत अपने अतीत-कालीन संस्कृति तथा आध्यात्म से प्रेरणा ग्रहण करके ही आगे बढ़ सकता है। उन्होंने यूरोप के भौतिक वैभव पर भारत के आध्यात्मिक महत्व की विजय-घोषणा की। विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बी स्वामीजी के शिष्य बनकर उनके विचारों का प्रचार करने लगे। उनके अनुयायियों में भगिनी निवेदिता का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है।

४. (घ) अरविन्द का प्रभाव :

महर्षि अरविन्द की गणना बीसवीं शताब्दी के महान दार्शनिक चिंतकों में की जाती है। अरविन्द एक साथ ही दार्शनिक, कवि, राजनैतिक नेता, मनीषी विद्वान एवं महान योगी के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। प्रथमत : भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में उन्होंने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक कार्य किया, किन्तु उसके पश्चात् यांत्रिक युग में संत्रस्त मानवता के उद्धार और मानवीय चेतना के उन्नयन के लिए योग की ओर उन्मुख हुये। उन्होंने यौगिक क्रियाओं द्वारा चेतना के विभिन्न सूक्ष्म तथा गहरे स्तरों की सम्यक् व्याख्या की। अपने यौगिक अन्वेषणों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया है कि चेतना के अनेक स्तर होते हैं और वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है। मानवीय व्यक्तित्व

---

१. वही पृ० ४८८ "प्रायः, डेढ़ सौ वर्षों से ईसाई धर्म-प्रचारक संसार में हिन्दुत्व की जो निन्दा फैला रहे थे, उन पर अकेले स्वामी जी के कर्तृत्व ने रोक लगा दी और जब भारतवासियों ने यह सुना कि सारा पश्चिमी जगत् स्वामी जी के मुख से हिन्दुत्व का आख्यान सुनकर गद्‌गद् हो रहा है, तब हिन्दू भी अपने धर्म और संस्कृति के गौरव का अनुभव कुछ तीव्रता से करने लगे; अंग्रेजी पढ़कर बहके हुये हिन्दू बुद्धिवादियों को समझाना बहुत ही कठिन कार्य था। किन्तु, जब उन्होंने देखा कि स्वयं यूरोप और अमेरिका के नर-नारी स्वामी जी के शिष्य बनकर हिन्दुत्व की सेवा में लगते जा रहे हैं, तब उनके भीतर भी ग्लानि की भावना जगी और बकवास छोड़कर वे भी स्थिर हो गये"।

के तल में प्रवेश कर उसकी निश्चित व्याख्या प्रस्तुत करने में अरविन्द अत्यन्त सफल रहे हैं। उनके सभी निष्कर्षों के आधार केवल उनकी योगजन्य स्वयंसिद्धि, अंत: प्रेरणा तथा आत्मानुभूति ही है। अरविन्द की विचारधारा ने विश्व के महान चिंतकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

प्रभाव :

इस सभी धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य धाराओं पर पड़ा। धर्म का प्रभाव प्रत्यक्ष और रुढ़िगत रूप में न होते हुये भी समकालीन धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के द्वारा इन काव्य-धाराओं ने पर्याप्त प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण किया है। आधुनिक काल में धर्म के क्षेत्र में उपर्युक्त आन्दोलनों ने महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया और उनके कारण भारत में सांस्कृतिक नव-जागरण का संचार हो गया, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं पर पड़ा।

५. साहित्यक परिस्थितियाँ :—

भारतीय साहित्य के मध्य युग के अंत तक काव्य में घटना-वैविध्य तथा विषयवस्तु की नवीनता का नितान्त अभाव एवं इतिवृत्तात्मकता तथा उपदेशात्मकता का आधिक्य था। इन्हीं के पिष्टपेषण के कारण काव्य में नीरसता आ गयी थी। प्राय: कविगण समस्यापूर्ति, आशु-कविता तथा तुकबन्दी किया करते थे। ऐसी रचनाओं में काव्यत्व की मात्रा कम तथा चमत्कार की मात्रा अधिक होती थी। इन काव्य-प्रणेताओं में न सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता थी और न सहृदय को रमाने की शक्ति ही। अंतत: इस समय के काव्य में आडम्बर, बोझिलता, सामाजिकता, अति-आलंकारिकता, उपदेश-प्रवणता एवं नीतिमत्ता का प्राधान्य था। ऐसे साहित्य के आस्वादन में बाधा उत्पन्न होने के कारण लोकरुचि में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। देश की सम्पूर्ण भाषाओं की कविता रुढ़ि की शृंखलाओं से मुक्त होने के लिये छटपटाने लगी।

उन्नीसवीं शती के अंत तक अन्य भारतीय साहित्यों की भाँति हिन्दी और तेलुगु के साहित्य भी रुढ़िग्रस्त थे। ये रुढ़ियाँ अनेक रूपों में साहित्य की गतिविधि को रोक लेती थीं। हिन्दी और तेलुगु के काव्यक्षेत्रों में रीति-काव्यों तथा प्रबन्ध काव्यों की परम्परा अविच्छन्न रूप से चल रही थी। दोनों साहित्यों में भारतेन्दु और वीरेशलिंगम् के प्रयासों से कविता राज-दरबारों के घेरे से बाहर निकल आयी और जनता उसकी ओर आकर्षित होने लगी। फिर भी इन महान युगकर्ताओं के काल में कोई विशेष परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ। इन दो महान् साहित्यकारों के युग के

पश्चात् हिन्दी और तेलुगु के साहित्यों में एक अनुवाद का युग भी उपस्थित हुआ, जिसमें अधिकांश संस्कृत एवं अंग्रेजी के काव्यों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। इस युग में पाश्चात्य शिक्षा के साथ साहित्यिकों के सम्पर्क की वृद्धि होने के कारण पाश्चात्य काव्यों के अनुकरण पर भी काव्य लिखे जाने लगे।

इस अनुवाद-युग के पश्चात् हिन्दी और तेलुगु के काव्य-साहित्य क्रमशः द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंक्टकवुलु-युग में पदार्पण करते हैं। पाश्चात्य शिक्षा एवं साहित्य का अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करते हुये भी इस काल की कविता की मूल आधार-शिला भारतीय संस्कृति ही है। परन्तु इस युग ने हिन्दी और तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में अनेक परिवर्तन कर दिये। वे परिवर्तन इस प्रकार हैं—

(अ) हिन्दी में रीतिकालीन काव्य-भाषा (ब्रजभाषा) को छोड़कर खड़ी बोली में कविगण रचना करने लगे। खड़ी बोली का संस्कार कर उसे संस्कृतगर्भित बनाया गया। परन्तु तेलुगु की काव्य-भाषा में इस समय कोई अधिक परिवर्तन नहीं आया।

(आ) इस युग में हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ। द्विवेदी जी के प्रभाव को ग्रहण करने वाले अधिकतर कवियों ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया। कवित्त, सवैया तथा दोहा आदि रीति-कवियों से प्रयुक्त छन्दों को कोई प्राधान्य नहीं दिया गया। खड़ी बोली में काव्य इस युग में एक नवीन आकार को ग्रहण करने लगा। तेलुगु के काव्य क्षेत्र में तो इस युग में नवीन छन्दों का बहुत कम प्रयोग हुआ।

(इ) रीति तथा प्रबन्ध काव्यों में कतिपय धार्मिक रुढ़ियाँ वर्तमान थीं। नायक और नायिका के रूप में कृष्ण और राधा का आरोप किया जाता था। द्विवेदी-युग तथा तिरूपति वेंकटकबुलु-युग तक आते-आते विषय-वस्तु को नवीन परिवेश में परखा गया। इस युग में यद्यपि पौराणिक कथाओं तथा इतिहासिक वीरों के सम्बन्ध में कवितायें लिखी गयीं, तथापि उनके कथानक को कवियों ने अपनी रुचि के अनुरूप परिवर्तित कर, उसे युग की मान्यताओं के साँचे में ढाल दिया। इस युग के कवियों ने नैतिकता एवं सामाजिक आदर्शों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया ऐसे कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा तिरूपति वेंकटकवुलु मुख्य हैं।

इस युग के हिंदी और तेलुगु के काव्य-साहित्य में नव-निर्माण की ओर अग्रसर होने की स्फूर्ति अवश्य थी। परन्तु वह प्राचीन काव्य-रूढ़ियों को पूर्ण रूप से बदल न सकी। आधुनिक काव्य-साहित्य भी धार्मिक भावना के रूढ़िगत प्रभाव से छूट नहीं पाया था। चरित्रों की अलौकिकता का रुढ़ स्वरूप अब भी शेष रह गया था। नैतिक

एवं उत्साहवर्धक उपदेश देना ही इस युग के काव्य का मुख्य उद्देश्य बन गया था। निष्कर्ष तो इतना ही है कि मध्ययुगीन काव्य-रूढ़ियों का कुछ हद तक इस युग ने विरोध किया। इस युग की विद्रोही भावना केवल एक भूमिका मात्र है जो आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ी। एक प्रकार से दोनों साहित्यों में क्रमशः द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकटकवुलु-युग ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के पनपने के लिये आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण किया था। इसी समय पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद भी भारतीय (विशेषतः हिंदी और तेलुगु) काव्य-साहित्य पर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दिखाने लगा। अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक भी था। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का अप्रत्यक्ष प्रभाव कविवर रवीन्द्र के माध्यम से अन्य भारतीय स्वच्छन्दतावादी कवियों पर पड़ा। उसी समय पाश्चात्य देशों में प्रचार पानेवाले अनेक कला-सम्बन्धी वादों का भी प्रभाव भारत के काव्य-साहित्य पर देखने को मिलता है, जिसमें कलावाद, व्यक्तिवाद, प्रतीकवाद तथा अभिव्यंजनावाद अत्यन्त मुख्य हैं।

जैसे साहित्यिक वातावरण में हिंदी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का उदय हुआ। स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की मूल प्रवृत्ति तथा उसकी प्रेरक शक्तियों के विषय में विद्वानों के मतभेद हैं। डा० नगेन्द्र इस काव्य-धारा को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हैं। उनके अनुसार 'जब-जब स्थूल की प्रभुता असह्य होती गयी है, तभी सूक्ष्म ने उसके विरुद्ध क्रान्ति की है। इस क्रान्ति और इस विद्रोह के प्रोद्भास रूप से जो गान संसार की आत्मा ने उन्मत्त होकर गाये, वे ही छायावाद की कविता के प्राण हैं। सारांश यह है कि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि में सभी प्रकार के वाह्य रूप-रंग-रूढ़ि आदि सन्निहित हैं। और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातन्त्र का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह।''[१] महाकवि तथा विचारक रामधारीसिंह 'दिनकर' के अनुसार स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन किसी एक कारण का परिणाम नहीं है। उनका कथन है कि "द्विवेदी-युग को समीप देखकर हम आसानी से कह देते हैं कि छायावाद द्विवेदी-युगीन इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप आया था। किन्तु गहराई से देखने पर यह स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि छायावादी आन्दोलन का मूल इतना समीप नहीं था। मूलतः यह भारत के उस सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम था जिसका प्रवर्तन राजा राममोहन-राय ने किया था और जिसके व्याख्याता केशव चन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी

१. डा० नगेन्द्र: सुमित्रानन्दन पंत। नवम संस्करण। पृ० २

दयानन्द, श्रीमती एनीबीसेंट, लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी हुए हैं। कविता का यह प्रयास उस नयी मानवता की अभिव्यक्ति का प्रयास था जिस का जन्म भारत-यूरोप-सम्पर्क से हुआ था और जो अंग्रेजी शिक्षा के कारण स्वाधीनता, उदारता, वैज्ञानिकता और बुद्धिवाद विषयक यूरोपीय विचार-धाराओं की सहज उत्तराधिकारिणी हो गयी थी।"[1] वास्तव में हिंदी और तेलुगु में स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का उद्भव बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के आरम्भ में अवश्य होते हुए भी उस काव्य-धारा के बीज अंग्रेजी-शिक्षा तथा पाश्चात्य विचारों के भारत में प्रवेश करने के समम से ही, स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। भारत में इस काव्य-धारा का सांस्कृतिक-पक्ष अत्यन्त प्रबल रहा है।

प्रभाव :--

ऐसे साहित्य वातावरण ने हिंदी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। इन साहित्यिक परिस्थितियों के प्रभाव को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है।

१. द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकटकवुलु-युग का प्रभाव।
२. अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव।
३. काव्य तथा कला-सम्बन्धी पाश्चात्य सिद्धांतों का प्रभाव।

५. (क) द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकटकवुलु-युग का प्रभाव

हिंदी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के प्रादुर्भाव में क्रमशः द्विवेदी-युग तथा तिरुपति वेंकटकवुलु-युग का प्रभाव भी रहा। हिंदी क्षेत्र में तो मध्य युगीन काव्य-रूढ़ियों के विरुद्ध द्विवेदी-युग ने विद्रोह कर स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का पथ-प्रदर्शन किया। वास्तव में खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाना, नवीन छन्दों का प्रयोग करना, नवीन काव्य-वस्तु को ग्रहण करना तथा नवीन काव्य-रूपों का प्रयोग करना ऐसे भारी परिवर्तन हैं, जिनसे द्विवेदी-युगीन काव्य का विद्रोही स्वरूप प्रकट होता है। द्विवेदी-युगीन काव्य के माध्यम से ही धीरे-धीरे हिंदी स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप का गठन हो रहा था। स्वयं द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण के परवर्ती काव्यों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होने लगीं। स्वयं पंत और निराला आदि कवियों पर मैथिलीशरण आदि कवियों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव मुख्यतः भाषा, छन्द तथा दृष्टिकोण में देखा जा सकता है। उसी प्रकार तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में भी तिरुपति वेंकटकवेलु-युग ने काव्य को राजदरबारों से बाहर निकालकर उसमें नवीन स्फूर्ति का संचार किया उन्होने बाद की पीढ़ी के स्वच्छन्दतावादी

---

१. रामधारीसिंह दिनकर : काव्य की भूमिका। प्रथम संस्करण पृ० ३८

कवियों को प्रभावित किया परंतु यहाँ ध्यान देने का विषय यह है कि हिंदी के द्विवेदी-युग की भांति यहाँ विद्रोह का स्वर अधिक मुखर नहीं था। इतना तो कहा जा सकता है कि इन दोनों साहित्यिक युगों ने हिंदी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य के जन्म की पृष्ठभूमि अवश्य तैयार की।

५. (ख) अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचलन के साथ ही भारतीय काव्य पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रभाव पड़ना अत्यंत स्वाभाविक था। यह प्रभाव दो रूपों में हिंदी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर देखा जा सकता है—१. **प्रत्यक्ष प्रभाव, २. अप्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव।**

(क) प्रत्यक्ष प्रभाव:—

हिंदी और तेलुगु के अधिकतर स्वच्छन्दतावादी कवि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य के मर्मज्ञ थे। मुख्यतः उन्होंने वर्ड्सवर्थ, बायरन, शैली, कीट्स की रचनाओं से प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण किया। ऐसे कवियों में निराला, पंत तथा गुरजाड अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, नण्डूरि सुब्बाराव आदि उल्लेखनीय हैं। अतः इन कवियों पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

(ख) अप्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव :—

हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से विश्वकवि रवीन्द्र के काव्य के माध्यम से पड़ा। इसका मूल कारण यह है कि कविवर रवीन्द्र अपनी विराट प्रतिभा के द्वारा अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के प्रेरक प्रभावों को भारत के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों से बहुत पहले ही आत्मसात् कर चुके थे। अतः रवीन्द्र का प्रभाव हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर अधिक मात्रा में देखा जा सकता है।

रवीन्द्र ने अपनी सार्वभौमिक प्रतिभा से अन्य भारतीय साहित्यों को प्रभावित किया। महाकवि कालिदास के पश्चात् रवीन्द्र को छोड़कर ऐसा कोई कवि नहीं हुआ

---

१. "पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंगरेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है।"—सुमित्रानन्दन पंत : "आधुनिक कवि की भूमिका" पृ० १३।

जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर पड़ा हो। सन् १९१३ में नोबुल-पुरस्कार पाने के पश्चात् ही भारतीय साहित्य पर रवीन्द्र का प्रभाव पड़ने लगा था। "गीताँजली" के प्रभाव से भारत की किसी भी भाषा की कविता न बचने पायी। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर रवीन्द्र का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ा। हिन्दी के निराला, पंत पर तो प्रत्यक्ष रूप से तथा प्रसाद और महादेवी पर अप्रत्यक्ष रूप से रवीन्द्र का प्रभाव देखा जा सकता है। इन में भी निराला पर रवीन्द्र का प्रभाव सर्वाधिक प्रतीत होता है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कवि होते हुये भी बंगाल में रहने तथा बंगला से भली-भाँति परिचित होने के कारण उन्होंने बंगाली-भाषा, छंद भाव आदि का हिन्दी के साथ अद्भुत समन्वय किया। सुदीर्घ संस्कृत के समासों का काव्य मे प्रयोग करना उन्होंने बंगला से ही सीख लिया। उन्होंने रवीन्द्रनाथ के छन्दों के आधार पर ७, १२ तथा १६ मात्राओं के गीत गीतिका में लिखे। "निराला" के लिये बंगला एक प्रकार से मातृभाषा थी और रवीन्द्र-काव्य की मनोहारिता उनकी काव्य-चेतना में सहज ही समा गयी थी। अंततः हमें यह स्वीकार करना पड़ता है **"निराला की कवि-चेतना का आरम्भिक विकास जिस साहित्यिक वातावरण में हुआ उस के निर्माण में रवीन्द्रनाथ का प्रमुख योगदान था।"**[1] पंत की आरम्भिक कृतियों पर रवीन्द्र का प्रभाव मिलता है। इस प्रभाव को स्वयं पंत ने **"वीणा"** के **'निवेदन'** में स्वीकार किया है। वे केवल रवीन्द्र के काव्य-प्रयोगों से प्रभावित नहीं हुये, उनके मर्म को समझने की चेष्टा की। उन्होंने **"पल्लव"** की भूमिका में हिन्दी और बंगाल की प्रवृत्तियों का सूक्षम विवेचन किया तथा हिन्दी-छन्दों में नवल स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने बंगला के उच्चारण-संगीत का अनुकरण न कर हिन्दी के उच्चारण संगीत के अनुरूप काव्य-रचना की। कहीं-कहीं बंगला के अनुकरण पर अतुकान्त पद्यों को भी अपनाया तथा उन्हें हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पाया। किन्तु हिन्दी स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) के अग्रणी कवि जयशंकर प्रसाद पर रवीन्द्र का प्रभाव अधिक नहीं प्रतीत होता। प्रसाद जी के कृतित्व में मौलिकता का पुट अधिक है। इतना होते हुये भी उन पर रवीन्द्रनाथ का कुछ परोक्ष प्रभाव अवश्य था। महादेवी ने भी निश्चय ही रवीन्द्र से प्रेरणा ग्रहण की, परन्तु उनकी गीतिकला का विकास स्वतन्त्र रूप से ही हुआ। "जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ की भाषा और छन्दों का प्रतिरूप **'निराला'** और **'पंत'** के गीतों में अधिक दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की मर्म-भावना का ठीक-ठीक प्रतिरूप महादेवी वर्मा की कविताओं में मिलता है।

---

१. "डाक्टर नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबंध" : "भारतीय साहित्य पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव" : डा० नगेन्द्र। पृ० ७६

स्पष्टतया तो यह कहना कठिन है कि महादेवी वर्मा ने रवीन्द्रनाथ से कितनी प्रेरणा पाई, पर जिसे "गीतांजलि" में रहस्यवाद कहा गया है, उसने महादेवीजी की छायावादी कविताओं में अपने प्रौढ़ और समीचीन रूप में ही अभिव्यक्ति पाई है।"[१] इस प्रकार हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों को रवीन्द्र से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्रेरणा, प्रभाव एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुये हैं।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर भी रवीन्द्र का प्रभाव उन्हें नोबुल-पुरस्कार मिलने के पश्चात् ही पड़ने लगा था। सन् १९१८ में रवीन्द्र स्वयं आन्ध्र प्रान्त में भ्रमण कर चुके थे। इस समय से आन्ध्र के कवियों को बंगला साहित्य ने अधिक आकर्षित किया और वे रवीन्द्र के प्रभाव में भी आ गये। आन्ध्र में रवीन्द्र के प्रभाव को ग्रहण करने वाले प्रथम कविगण हैं वेंकटपार्वतीश्वर कवि। इस कवि-द्वय ने रवीन्द्र के काव्य-माधुर्य का आस्वादन कर, उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की।[२] इन कवियों की 'एकान्त सेवा" ने (एकान्त सेवा) आन्ध्र के जन समुदाय पर वही प्रभाव डाल दिया, जो प्रभाव रवीन्द्र की "गीताँजलि" का बंगला पर था। एक दृष्टि से देखा जाय तो इन दोनों काव्य-ग्रंथों में मधुर-भक्ति को छोड़कर कोई समानता दृष्टिगोचर नहीं होती। दोनों में आत्माभिव्यंजना ही है, फिर भी "एकान्त सेवा" में स्त्री-सहज व्याकुलता तथा आत्म-समर्पण का भाव निहित है, जबकि गीतांजलि में नायक-नायिका के भेद का लोप हो जाता है। "एकान्त सेवा" में सुकोमल तथा माधुर्यपूर्ण भक्ति ही स्त्री-पुरुष के प्रणय संबंध के रूप में, एक ही निर्णीत अवधि में संचरण करती दिखायी पड़ती है। इसके विपरीत "गीताँजलि" में सभी सीमाओं का उल्लंघन कर, सभी बन्धनों से मुक्त होकर कभी अत्यंत माधुर्य के साथ, कभी अत्यन्त दैन्य तथा करुणा के साथ और कभी-कभी मेघ-गम्भीर-स्वर के साथ कविता का गान होता है। इनके पश्चात् रायप्रोलु सुब्बारावजी पर रवीन्द्र का प्रभाव लक्षित होता है। रवीन्द के काव्य-वैभव पर मुग्ध होकर उन्होंने स्वयं शाँति निकेतन में गुरुकुल का वास कर, रवीन्द्र तथा वैष्णव-साहित्य के प्रभाव को भी ग्रहण किया। इस तरह उनकी कविता में माधुर्य आ गया और वे आंध्र-वाटिका के कोयल कहलाए। सुब्बा-रावजी की देश-भक्ति-प्रधान रचनाओं पर रवीन्द्र का प्रभाव देखने को मिलता है।

---

१. "रवीन्द्रनाथ ठाकुर और हिन्दी साहित्य" लेख : मोहनसिंह सेंगर : आजकल, फरवरी, १९६०। पृष्ठ ३०

२. "पलुकू निलुर्वारिग पलुकुन नर्लारिप
पलुकु भावमुनने वेलुर्वारिप
पलिकि पलुर्कारिप पलुकुचु पुर्लाकिप
नी रवीन्द्र डोक्कडे एरुंगु।" — वेंकट पार्वतीश्वर कवि।

रायप्रोलु सुब्बारावजी के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, उनकी रहस्यात्मक अनुभूति तथा सौंदर्य पिपासी चित्तवृत्ति पर रवीन्द्र का प्रभाव है। उनकी सुकुमार-भावना, सुकोमल शब्द-शिल्प रवीन्द्र के काव्य-कौशल का स्मरण दिलाते हैं। प्रकृति के अणु-अणु में अपनी चेतना को विलीन करके संवेदनशील बनना देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने रवीन्द्र से सीखा है। कवि का, कल्पना के पंखों पर बैठकर विनील-गगन-पथों पर विहार करना भी रावीन्द्रिक प्रभाव का द्योतक है। कृष्णशास्त्री की जीवन-पद्धति में ही, कल्पना विहार में ही तथा रचना-संविधान में ही रवीन्द्र की गरिमा दिखाई पड़ती है। उदात्त-काव्य-वस्तु की स्वीकृति से लेकर रमणीय शैली के उपयोग तक सभी साहित्यिक प्रक्रियाओं के संधान के लिए शिवशंकर शास्त्री ने रवीन्द्र को आदर्शमूर्ति के रूप में ग्रहण किया, ऐसा प्रतीत होता है। उसी प्रकार वेदुल सत्यनारायण शास्त्री कन्दुकूरी राम भद्रराव, मल्लवरफु विश्वेश्वरराव, अम्बूरि रामकृष्णराव, पिलका गणपति शास्त्री, तल्लावझ्झल कृत्तिवास तीर्थुल, बालांत्रपु रजनीकांतराव आदि की रचनाओं में रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट और अस्पष्ट, व्यक्त और अव्यक्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। मधुर कवि कोंपेल्ल जनार्दनराव पर यह प्रभाव है। गुडिपाटी वेंकटचलम् की "यशोदा गीतालु", आर्चंट जानकिराम की "स्वर्ण सीता", आमत्स सोमसुंदर की "मिणुगुरुलु" आदि रचनायें रवीन्द्र के मार्ग का अनुसरण करती हैं। वैजवाड़ा गोपाल रेड्डीजी ने रवीन्द्र की असंख्य रचनाओं का तेलुगू के गद्य और पद्य में अनुवाद कर आंध्र प्रांत में रवीन्द्र का परिचय कराया।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छंदतावादी कवियों पर रवीन्द्र के प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि अमुक कवि पर रवीन्द्र का कितना प्रभाव पड़ा है, यह भी प्रत्यक्ष रूप से है या परोक्ष रूप से। कवि के रूप में, ऋषि के रूप में, युग-प्रतिनिधि के रूप में, विश्व-मानव-कल्याण-चिंतक के रूप में, मानव के हृदयांतरालों में सदा के लिए स्थान पाने वाले रवीन्द्र का प्रभाव अन्य कवियों पर किसी भी रूप में होने पर भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं है।

५. (ग) काव्य तथा कला-सम्बन्धी पाश्चात्य सिद्धान्तों का प्रभाव:—

हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छंदतावादी काव्य-धाराओं पर कला सम्बन्धी पाश्चात्य सिद्धांतों का प्रभाव देखा जा सकता है- जिन में कलावाद, प्रतीकवाद तथा अभिव्यंजनावाद मुख्य हैं। कलावाद के प्रभाव के कारण स्वच्छंदतावादी कवियों में कलात्मक सतर्कता दिखाई पड़ती है। अपने भावों तथा विचारों को श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति देने के लिए हर एक शब्द को तोल-तोल कर प्रयोग करने की प्रवृत्ति हिन्दी और तेलुगु के अधिकांश स्वच्छंदतावादियों में पायी जाती है। यह कलावाद

के प्रभाव के कारण ही है। इन कवियों ने प्रतीकवाद के प्रभाव को ग्रहण कर, प्रतीक को अपनी भावाभिव्यंजना का माध्यम बनाया। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की मान्यताओं का प्रभाव भी इस काव्य-धारा के कवियों पर देखने को मिलता है।

अंत में यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दी और तेलुगू की स्वच्छंदतावादी काव्य-धाराओं के प्रादुर्भाव में भारत की समकालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों ने कम-अधिक मात्रा में अपना सहयोग दिया है। इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण कर इन दोनों भाषाओं की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं ने अपना विकास किया है।

तृतीय अध्याय

स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विवेचन

तथा

साहित्यिक मान्यतायें

१. स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप-विवेचन :—

स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप-विवेचन के पूर्व परम्परावाद के स्वरूप पर किंचित् प्रकाश डालना इसलिये परमावश्यक हो जाता है कि स्वच्छन्दतावाद ने परम्परावाद की साहित्यिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कर अपने स्वरूप को संघटित किया था। पाश्चात्य विद्वानों ने व्यक्ति और जगत् की पृथक सत्ता मानते हुये काव्य के दो मुख्य भेद किये है—

१. विषयीगत (Subjective), जिस में कवि के व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है और २. विषयगत (Objective), जिस में कवि-व्यक्तित्व को कम तथा बाह्य जगत् को अधिक प्राधान्य दिया जाता है। इसी भेद ने पाश्चात्य काव्य-जगत् में दो प्रधान काव्य-प्रवृत्तियों को जन्म दिया है और वे है परम्परावाद (Classicism) तथा स्वच्छंदतावाद (Romanticism)। वास्तव में विश्व के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य को इन दो प्रधान भागों में विभाजित किया जा सकता है और इन दोनों का सामंजस्य भी अनेक काव्यों में उपलब्ध होता है। प्रथमतः परम्परावाद के स्वरूप पर किंचित् विचार किया जाय।

(क) **परम्परावाद का स्वरूप:**—काव्य में परम्परावाद तथा स्वच्छन्दतावाद दो विशिष्ट प्रवृत्तियों के द्योतक शब्द हैं। पाश्चात्य समालोचना में सर्वप्रथम श्लेगल (Schlegel) ने काव्य में परम्परा और स्वच्छन्दता के पार्थक्य का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार प्राचीनों का वह काव्य, जो वस्तु-प्रधान हो, जिस में बाह्य नियमों का पालन किया गया हो, परम्परावादी है। शिलर के अनुसार प्राचीनों का वह काव्य, जिस में जीवन के इंद्रियग्राह्य उपरितल का तत्कालिक, समग्र तथा विशिष्ट

प्रतिपादन हो, परम्परावादी है।[1] "परम्परावादी काव्य वह काव्य है, जो सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं गंभीरतम हो।"[2] वास्तव में परम्परावाद की साहित्यिक मान्यतायें प्राचीन ग्रीक तथा रोम के काव्यों की रूपरेखा एवं आदर्श को दृष्टि में रखकर अरस्तू आदि आचार्यों ने काव्य के सामान्य नियमों की प्रतिष्ठा की, जो वाद में चलकर परम्परावादी काव्य के मानदण्ड बन गये। प्राचीन भारत में भी परम्परावादी काव्यों का आधिक्य रहा। विशाल संस्कृत साहित्य में परम्परावादी काव्यों की सुदृढ़ परम्परा मिलती है।

निश्कर्ष के रुप में इतना तो कहा जा सकता है कि परम्परावादी काव्य वह काव्य है जिसमें वाह्य रूप—सौष्ठव की प्रधानता हो, अनेकत्व में एकत्व की प्रतिष्ठा की गयी हो, अभिव्यंजना का सौन्दर्य हो और जिसमें संयमशीलता, उदात्तता एवं महानता भी वर्तमान हो। सामान्यत: परम्परावादी काव्य में निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

१. काव्य में कवि का व्यक्तित्व ऐसा लीन होता है कि उसका पृथक् अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।[3] अत: परम्परावादी काव्य विषय-प्रधान या वस्तुनिष्ठ होता है।
२. काव्य में अनेकत्व में एकत्व का प्रतिपादन होता है।
३. काव्य में अभिव्यंजना का सौन्दर्य (रूप-विधान का सौष्ठव) निहित रहता है।
४. काव्य में संयमशीलता का प्राधान्य होता है।
५. काव्य में उदात्त भावनाओं तथा संवेगों का अस्तित्व रहता है।
६. काव्य में महान एवं विराट की संभावना अत्यधिक रहती है।

---

१. "According to Schiller, naive poetry, characteristic of the ancients is an immediate, detailed and particularised representation of the sensuous surface of life." (Qt. by M. H. Abrams in 'The Mirror and the Lamp'' Romantic Theory and Critical Tradition. P. 238.)
२. दे० हिन्दी साहित्य कोष : प्र० सं० धीरेन्द्र वर्मा। पृ० २४५।
३. "The object possesses him (classical poet) utterly····like the Diety behind this universe, he stands behind his work; he is himself the work, and the work is himself." *M. H. Abrams.* "The Mirror and the Lamp : Romantic Theory and Critical Tradition. P. 238)

(ख) **स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप** :—साहित्य में स्वच्छन्दतावाद अथवा "**रोमाण्टिसिज़्म**" सामान्यतः एक प्रवृत्ति विशेष का द्योतक शब्द है। पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने इसके स्वरूप पर सम्यक् प्रकाश डाला है। अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास में इसकी परिभाषा यों है--

"स्वच्छन्दतावादी चेतना वह है, जिसमें उस भावुकतामय जीवन का प्राधान्य हो, जो कल्पना की दृष्टि से उद्दीप्त अथवा निर्दिष्ट हुआ हो और जिसमें स्वयं कवि की आत्मा इस कल्पना-दृष्टि को सशक्त बनाती एवं निर्देश करती रही हो।"[1]

इस परिभाषा में स्वच्छन्दतावाद की मूलभूल विशेषताओं (भावना एवं कल्पना तथा उन दोनों के सम्बन्ध पर) पर प्रकाश डाला गया है। स्कॉट जेम्स के अनुसार स्वच्छन्दतावाद साहसिकता को आकर्षण देने वाला, नूतनता के प्रेमी तथा उन सब गुण-दोषों को समाहित करने वाली काव्य-धारा है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, उत्सुकता, क्षोभ प्रगति,-स्वातन्त्र्य, प्रायोगिकता एवं उत्तेजकता की भावनाओं के साथ सम्बद्ध हो।[2] स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप के विषय में पाश्चात्य काव्य-समीक्षकों एवं चिन्तकों में बड़ा मतभेद रहा है। इसका कारण यह है कि स्वच्छन्दतावाद ने विभिन्न स्रोतों से अपनी विचारधारा ग्रहण की है। इसी कारण उस की परिभाषाओं में भी पार्थक्य आ गया है। "**स्वच्छन्दतावाद**" शब्द की अतिव्याप्ति से बचने के लिए सि० एम० बौरा कहते हैं--"यह कथन ही पर्याप्त है कि "**स्वच्छन्दतावाद**" का शब्द अंग्रेजी की उस काव्य-धारा के लिए प्रयुक्त होता है, जो सन् १७८९ में ब्लेक के "**भोलेपन के गीत**" (Songs of Innocence) से आरम्भ होकर कीट्स तथा शेली की मृत्यु के साथ समाप्त हुई।"[3] परन्तु यहाँ बौरा का ध्यान इस

---

1. "The Romantic spirit can be defined as an accentuaed predominance of emotional life, provoked or directed by the exercise of imaginative vision and on its turn stimulating or directing such exercise." (Legoais and Cazamain: A History of English Literature. P. 997.)
2. In Romanticism." .... we may find the virtues and defects which are suggested by excitement, energy, restlessness spirituality, curiosity, troublousness, progress, liberty, experiment, provocativeness."(Scot James: The Making of Literature: P. 152.)
3. The word 'Romantic' has been used so often and for so many purposes that it is impossible to confine it to any single meaning, still less to attempt a new definition of it. Let it suffice that it is applied to a phase of English poetry which began in 1789 with Blake's 'Songs of Innocence' and ended with the deaths of Keats and Shelley."

   (C. M. Bowra: The Romantic Imagination. P. 271.)

ओर नहीं गया कि स्वच्छन्दतावाद काव्य की सहज प्रवृत्ति है, जो विश्व के किसी भी काव्य-साहित्य में दिखाई पड़ती है।

हिन्दी के विद्वानों ने भी स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर विचार किया है। "हिन्दी साहित्य कोष" में इसकी परिभाषायें दी गयी हैं—"साहित्यिक उदारवाद ही रोमाण्टिसिज्म है। अर्थात् प्राचीन शिष्टा तथा क्लेसिक परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होनेवाली विचार-धारा को रोमाण्टिसिज्म कहा जाता है।"[1] परन्तु इस परिभाषा में स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर अधिक प्रकाश नहीं डाला गया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "रोमाण्टिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग वे दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं, परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक दूसरे से अलग रह कर काम करती हैं।"[2] यहाँ द्विवेदी जी ने कल्पना, आवेग दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा व्यक्तित्व का प्राधान्य आदि स्वच्छन्दतावाद के प्राणभूत तत्वों का उल्लेख किया है। डा० नगेन्द्र के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य (हिन्दी का छायावादी काव्य) स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है।[3] नगेन्द्र जी ने स्वच्छन्दतावाद की विद्रोही भावना को अधिक महत्व प्रदान किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को, जिसका नाम छायावाद पड़ा, रहस्यवाद से भिन्न मानते हुए कहते हैं– "नई छायावादी काव्य-धारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, किन्तु उसकी मुख्य-प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।............ आधुनिक परिवर्तनशील समाज-व्यवस्था और विचार जगत् में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता को, नवीन परिस्थिति के अनुरूप, स्थापना करता है।........छायावाद मानव जीवन-सौन्दर्य और प्रवृत्ति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है।............ नवीन काव्य (छायावाद) में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता पूरा स्थान पा सकी।"[4] वाजपेयीजी का यह कथन केवल हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में सत्य प्रमाणित होता है। परन्तु अन्य भाषाओं की स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियों के लिए यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं जँचता। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के मूलभूत तत्वों की अपेक्षा, उन पर पड़े हुए सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभावों

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : प्रधान सम्पादक : धीरेन्द्र वर्मा। पृष्ठ संख्या—६७८।
२. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : रोमांटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका)। पृ० १।
३. डा० नगेन्द्र : सुमित्रानन्दन पंत। नवम् संस्करण। पृ० २।
४. नन्ददुलारे वाजपेयी: आधुनिक साहित्य: द्वितीय संस्करण। पृ० ३७१–३७२।

को अधिक प्रधानता दी, जिनका प्रभाव हर साहित्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति पर समान रूप से नहीं है। डा० श्रीकृष्णलाल ने स्वच्छन्दतावाद के दार्शनिक तथा कलात्मक पक्षों को भी प्राधान्य दिया है। उनके अनुसार **"स्वच्छन्दतावाद········केवल एक साहित्यिक आन्दोलन मात्र न था वरन् वह कलात्मक और दार्शनिक आन्दोलन भी था। इसमें विश्व की वेदना, सृष्टि का रहस्य, उदात्त भावना तथा प्रेम और वीरता को अपनाने की तीव्र आकांक्षा, अलभ्य श्रेय से उद्भूत एकान्त वेदना और अनन्त निराशा आदि विशिष्ट दार्शनिक वृत्तियों का प्रदर्शन था।"**[1] निष्कर्ष यह है कि स्वच्छन्दतावाद काव्य की वह धारा है जिसमें उदारता, उत्साह, रूढ़ि-विद्रोह, प्रकृति-प्रेम, विस्मय की भावना, सौन्दर्य-प्रेम, अतिशय काल्पनिकता, आत्मानुभूति, स्वच्छन्द प्रेम-भावना, मानवतावादी विचारधारा तथा गीत-शैली के प्रति आकर्षण आदि विशेषताओं का समावेश हो। स्वच्छन्दतावाद की सामान्य विशेषतायें इस प्रकार हैं--

(१) आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति।
(२) भावुकता एवं आवेग का प्राधान्य।
(३) अतिशय काल्पनिकता।
(४) सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकर्षण।
(५) प्रकृति-प्रेम।
(६) अन्तर्मुखी प्रवृत्ति।
(७) सर्वचेतनावाद या सूक्ष्म चेतना को विश्व में देखने की प्रवृत्ति।
(८) विस्मय की भावना।
(९) आदर्श के प्रति मोह।
(१०) सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह।
(११) मानवतावादी विचारधारा एवं विश्व-मातृत्व की भावना।
(१२) गीत-शैली तथा काव्य में संगीत-पक्ष की ओर अत्यधिक आकर्षण।

विश्व के हर एक साहित्य में कभी-न-कभी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हो ही जाता है और उनमें उपर्युक्त विशेषताएँ कम-अधिक मात्रा में अवश्य पायी जाती हैं। स्वच्छन्दतावाद मानव-जीवन के एक दृष्टिकोण का परिचायक है और उसकी ओर जागरूक न होना इन्द्रधनुप के सौन्दर्य से आँखें मूँद लेने के समान है।[2]

---

1. **डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : तृतीय संस्करण। पृ० ३७।**
2. "To ignore the romantic as an aspect of life is to be blind to the rainbow."······J. B. Priestley: Literature and Western man. P. 120.

स्वच्छन्दतावाद में जो प्रवाह, स्वच्छन्दता, गति, गहनता आदि की प्रचुरता से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने एक जीवन-दर्शन को अभिव्यक्ति देना चाहता है।

(ग) परम्परावाद तथा स्वच्छन्दतावाद में साम्य और वैषम्य :—परम्परा-बाद तथा स्वच्छन्दतावाद में समानताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) परस्पर भिन्न होते हुए भी इन दोनों प्रवृत्तियों का अस्तित्व कला तथा काव्य के क्षेत्र में ही है।

(२) मुख्यतः इन दोनों प्रवृत्तियों का प्रचलन काव्य-साहित्य के अन्तर्गत ही अधिक हुआ।

परम्परावाद तथा स्वच्छन्दतावाद में भिन्नताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) परम्परावादी काव्य विषय-प्रधान है तो स्वच्छन्दतावादी काव्य व्यक्ति-प्रधान है।

(२) परम्परावादी काव्य बहिर्मुखी है तो स्वच्छन्दतावादी काव्य अन्तर्मुखी है।

(३) परम्परावाद में वाह्य रूप-विधान की प्रमुखता है तो स्वच्छन्दतावाद मे आन्तरिक प्रेरणा की।

(४) परम्परावाद में वाह्य इन्द्रियग्राह्य चाक्षुप सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है तो स्वच्छन्दतावाद में इन्द्रियातीत काल्पनिक सौन्दर्य का अधिक आग्रह है।

(५) परम्परावाद में प्रकृति की अपेक्षा मानव को प्रधानता दी गयी है तो स्वच्छन्दतावाद में मानव की अपेक्षा प्रकृति को।

(६) परम्परावाद में विषयगत यथार्थ का चित्रण होता है तो स्वच्छन्दतावाद में वैयक्तिक आदर्श का अंकन।

(७) परम्परावादी काव्य में हृदय पर बुद्धि का अंकुश रहता है तो स्वच्छन्दता-वाद में बुद्धि पर हृदय का अनुशासन।

(८) परम्परावाद सदा मध्यम मार्ग का अन्वेषण करता है तो स्वच्छन्दतावाद अति की खोज में लीन रहता है।[1]

---

1. 'The one seeks always a mean, the other an extremity." .... Scot James: The Making of Literature: P. 27

(९) परम्परावाद शान्ति तथा संतुलन से संतुष्ट है तो स्वच्छन्दतावाद में साहसिकता के प्रति प्रवल आकर्षण है।[1]

(१०) परम्परावाद परम्परा की ओर देखता है तो स्वच्छन्दतावाद में नवीनता का आग्रह है।[2]

(११) परम्परावाद में प्रबन्ध-काव्य (महाकाव्य तथा खण्ड-काव्य) की रचना की ओर अधिक झुकाव है तो स्वच्छन्दतावाद में गीतों तथा प्रगीतों के निर्माण की ओर।

(१२) वर्णन-बाहुल्य के कारण परम्परावादी काव्य में चित्र-कला का तथा भावोद्रेक के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य में संगीत-कला का अधिक महत्व रहता है।

(१३) परम्परावाद राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक बन्धनों को स्वीकार कर आगे की ओर अग्रसर होता है तो स्वच्छन्दतावाद इन सभी बन्धनों के प्रति विद्रोह खड़ा कर उनको अस्वीकार करता है।

(१४) परम्परावाद काव्य को मानव-जीवन की अनुकृति मानता है[3] तो स्वच्छन्दतावाद काव्य को मानव-आत्मा की अनुभूति एवं कल्पना की अभिव्यक्ति मानता है।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से परम्परावाद तथा स्वच्छन्दतावाद में भारी अंतर है। इतना होते हुये भी किसी कवि या काव्य में इन दोनों प्रवृत्तियों की मात्रा को पहचानना उतना सुलभ नहीं। इसका कारण यह है कि कुछ कवियों तथा काव्यों में इन दोनों काव्य प्रवृत्तियों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। ऐसे कवियों में कालिदास, दाँते (Dante), शेक्सपियर (Shakespeare) गेटे (Goethe) आदि कवियों की गणना आसानी से हो सकती है।[4] "डिवाइन कॉमेडी" (Divine Comedy), "कामायनी" आदि काव्यों में इन दोनों प्रवृत्तियों का संतुलन

---

१. "Repose satisfies the classic: Adventure attracts the Romantic." ....Ibid : P. 27

२. "The one appeals to tradition, the other demands the novel." Ibid. P. 28

३. अरस्तू ने काव्य तथा अन्य कलाओं को अनुकृति माना है।

४. कीट्स की "इजवेला", "दि ईव ऑफ सेंट एगिनस"- निराला की "राम की शक्ति पूजा" तथा विश्वनाथ सत्यनारायण का "रामायण कल्पवृक्षमु" (महाकाव्य) आदि काव्यों में परम्परावाद की बहुत-सी विशेषतायें पायी जाती हैं।

दिखाई पड़ता है। स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स, निराला तथा विश्वनाथ सत्यनारायण की कतिपय प्रौढ़ रचनाओं में परम्परावाद की झलक मिलती है। इसी प्रकार किसी परम्परावादी कवि में स्वच्छन्दतावाद की विशेषतायें आ जायें तो वह और भी महान होगा। दिनकरजी के शब्दों में, "**रोमांटिसिज्म के स्पर्श से क्लासिक कवि भी पहले से कुछ बड़ा कवि हो जाता है और संयमशील महाकवियों में तो रोमांटिक प्रवृत्तियाँ ऐसा चमत्कार उत्पन्न करती हैं जैसा कभी-कभी ही देखने में आता है। रवीन्द्रनाथ और गेटे रोमांटिक थे किन्तु, संयमशील होने के कारण, इन कवियों ने रोमांटिसिज्म के दोषों को अपने पास फटकने न दिया।**"[१] अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी कवि पूर्ण रूप से परम्परावादी या स्वच्छन्दतावादी नहीं होता, केवल उसके झुकाव के कारण सामान्यतः उसे प्रवृत्ति विशेष के अंतर्गत गृहीत किया जाता है।

लेफ़केडियो हेरिन का कथन है कि "**जब कभी साहित्य-क्षेत्र में परिवर्तन आ जाता है तो वह परिवर्तन स्वच्छन्दतावादी चेतना को अधिक परम्परावादी तथा परम्परावादी चेतना को अधिक स्वच्छन्दतावादी बना देता है। एक दूसरे का विरोध कर वे बहुत-कुछ सीख लेते हैं।**"[२] वास्तव में स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा ने परम्परावादी काव्य-नियमों का उल्लंघन कर काव्य-क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत बना दिया।[३] स्वच्छन्दतावाद के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् उसकी साहित्यिक मान्यताओं पर विचार किया जाय।

२. स्वच्छन्दतावाद की साहित्यिक मान्यतायें :

स्वच्छन्दतावाद की साहित्यिक मान्यताओं के विवेचन के पूर्व स्वच्छन्दतावादी आलोचना के उद्भव की ऐतिहासिक भूमिका पर किंचित् विचार किया जाय।

फ्राँस की नवीन परम्परावादी आलोचना (neo-classic criticism) का प्रभाव इंग्लैण्ड पर एक शताब्दी से अधिक रहा। इस आलोचना-प्रणाली ने प्राचीन

---

१. रामधारीसिंह दिनकर : काव्य की भूमिका। प्रथम संस्करण। पृ० ३६।

2. "Every alternation of the literary battle seems to result in making the romantic spirit more classic and the classic spirit more romantic. Each learns from the other by opposing it."
— Lefeadio Hearin.

3. "When a poet does not conform to the existing laws of poetry, he is extending the law."— Moulton : The Modern Study of Literature. P. 300.

ग्रीक तथा रोम के महाकाव्यों को दृष्टि में रखकर निर्दिष्ट किये गये नियमों के पालन पर बल दिया। उसके अनुसार काव्य अनुकृति मात्र है और प्रकृति उसके अनुकरण की वस्तु। फिर भी ड्राइडन (Dryden) आदि कुछ अंग्रेजी कवि तथा आलोचक इस आलोचना-प्रणाली के समर्थक होते हुये भी अपने समकालीन फ्रेंच आलोचकों की तुलना में प्राचीन-पंथी तथा कट्टर नहीं थे। इस का कारण यह था कि इन अंग्रेज आलोचकों के समक्ष शेक्सपियर के नाटकों का आदर्श था। इतना होते हुये भी वे परम्परावादी काव्य-नियमों से संतुष्ट रहे और कला-कृतियों का मूल्यांकन वाह्य मानदण्डों के आधार पर करने के पक्ष में ही थे। इस आलोचना प्रणाली का सब से अंतिम प्रतिनिधि सेम्युअल जॉनसन (Samuel Johnson) था। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में ही कुछ आलोचक साहित्य की स्वतन्त्रता पर बल देने लगे थे। वे नवीन परम्परावादी आलोचना को चुनौती आकस्मिक रूप से नहीं दे सकते थे। अतः प्रथमतः उन्होंने मध्ययुगीन अंग्रेजी काव्य का समर्थन इस आधार पर किया कि वह ऐसा काव्य है जिसके लिये परम्परावादी काव्य-नियम बिलकुल लागू नहीं होते। नवीन आलोचकों ने यह घोषणा की कि गेय-कथाओं (ballade) प्रेम-कथाओं (romances) तथा अन्य मध्ययुगीन काव्य-रूपों के मूल्यांकन के लिये भिन्न मानदण्डों की आवश्यकता है। उनका तर्क यह था कि सामाजिक जीवन तथा रीति-रिवाज को प्रतिबिम्बित करने वाले काव्यों के मूल्यांकन के लिये जो नियम लागू होते हैं, वे कल्पना एवं भावना-निर्मित काव्य के लिये नितान्त अनुपयोगी तथा असफल सिद्ध होते हैं। उन्होंने अनुकरण-काव्य तथा सृजनात्मक काव्य के भेद को स्पष्ट किया। इन नवीन आलोचकों ने द्वितीय चरण यह उठाया कि उन्होंने मध्ययुगीन काव्य-रूपों का समर्थन कर काव्य को सभी तरह के वाह्य नियमों से मुक्त करने का सफल प्रयास किया। इनमें-से कुछ आलोचक परम्परावादी काव्य नियमों से इतने रुष्ट हो गये कि अपने नये समीक्षात्मक आन्दोलन को प्रभाववादी बना दिया, जिसके फलस्वरूप आलोचना के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई। परन्तु कोलरिज तथा कार्लाइल आदि जागरूक आलोचकों ने इस परिस्थिति की रक्षा की। उन्होंने घोषित किया कि काव्य के अपने नियम हैं और कभी प्रतिभा नियम-विहीन नहीं होती। काव्य और प्रतिभा के उपकरण यांत्रिक नहीं, प्रत्युत जीवन्त (organic) हैं। जॉनसन और कोलरिज के बीच आलोचना के मानदण्डों में युगपत् परिवर्तन आ उपस्थित हुआ। तीन आलोचना प्रणालियों में स्पर्धा चलने लगी—एक ओर प्राचीन नियमों के समर्थन करने वाले परम्परावादी, दूसरी ओर सभी नियमों को अस्वीकार करने वाले प्रभाववादी तथा तीसरी ओर वाह्य नियमों के स्थान पर आन्तरिक नियमों को महत्व देने वाले स्वच्छन्दतावादी अपने-अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिये संघर्ष कर रहे थे। अंत में स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली की विजय हुई। इससे आलोचना में भावना एवं कल्पना को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। सृजन-प्रक्रिया के आंतरिक नियमों ने वाह्य

नियमों का स्थान ग्रहण किया और आलोचना निर्णयात्मक न होकर व्याख्यात्मक हो गयी ।

स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली के अनुसार नियम स्वयं अपने में साध्य नहीं, अपितु वे कवि के काव्य-लक्ष्य की प्राप्ति के साधन मात्र हैं । किसी भी काव्य-कृति का मूल्यांकन वाह्य नियमों के आधार पर नहीं, अपितु उसकी उपलब्धि को दृष्टि में रखकर करना चाहिये । काव्य-कृति पर निर्णय उसके आंतरिक तत्वों तथा मूल्यों के आधार पर देना चाहिये, वाह्य या आरोपित नियमों को लागू कर नहीं । अतः स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली काव्य-कृति से यही आशा करती है कि वह अपने आदर्श को स्वयं सच्चाई के साथ निभाये, उसके सभी अवयवों में सामंजस्य हो । इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली ने काव्य तथा कलाकृतियों को एक नवीन तथा मौलिक दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा की, जिससे कृति एव कृतिकार की प्रकृति एवं उपलब्धि का नया मूल्यांकन संभव हो सका । स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली को संक्षिप्त ऐतिहासिक विकासक्रम देने के पश्चात् उसकी साहित्यिक मान्यताओं पर प्रकाश डाला जाय ।

स्वच्छन्दतावाद की साहित्यिक मान्यताओं को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—१. **काव्य-सम्बन्धी मान्यतायें**, २. **विचार-सम्बन्धी मान्यतायें** ३. **कला-सम्बन्धी मान्यतायें** ।

(क) **काव्य-सम्बन्धी मान्यतायें**—किसी भी काव्यान्दोलन का मूल्यांकन अधिकतर उस काव्य की उपलब्धि पर आधारित होकर किया जाता है । हर प्रकार की काव्य-प्रवृत्ति की अपनी विशेषतायें होती हैं जिन को आधार बनाकर उस काव्य की समीक्षा की जाती है । अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य का अध्ययन उस की मान्यताओं के आधार पर करना अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है । स्वच्छन्दतावाद की काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है—

१. काव्य की स्वतन्त्रता, २. आत्माभिव्यंजकता, ३. अतिशय काल्पनिकता, ४. सौन्दर्य-प्रियता, ५. भावना एवं अनुभूति की मार्मिकता, ६. प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण ।

(ख) **काव्य की स्वतन्त्रता** —स्वच्छन्दतावादी मान्यताओं के अनुसार काव्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है । स्वच्छन्दतावाद काव्य को शुद्ध साहित्यक संवेदना, मानवीय अनुभूति एवं कल्पना का सौन्दर्यमयी माध्यम से स्पष्टीकरण मानता है । स्वच्छन्दतावाद के अनुसार काव्य स्वयं अपनी रसात्मकता, भाव-प्रवणता एवं कल्पना के द्वारा मानव में हर्ष और आनन्द का संचार करा देता है । स्वच्छन्दतावाद काव्य को अपने गुणों एवं सामर्थ्य पर खड़े होने को प्रेरित करता है । इस सम्बन्ध में कविवर

दिनकर कहते हैं कि "रोमांटिसिज्म (स्वच्छन्दतावाद कविता का सर्वाधिक काव्यात्मक तत्व है और कविता यदि विज्ञान का प्रतिलोम है तो रोमांटिक कविता विज्ञान का सब से बड़ा प्रतिलोम समझी जानी चाहिए।"[1] अतः स्वच्छन्दतावादी मान्यताओं के अनुसार काव्यात्मकता के कारण ही काव्य को अपना महान गौरव प्राप्त होता है, अन्य किसी वाह्य उपकरण से नहीं। स्वच्छन्दतावाद के अनुसार कविता स्वतन्त्र वातावरण में ही अपने अभीप्सित लक्ष्य को प्राप्त करने का निर्णय कर सकती है।[2]

स्वच्छन्दतावाद की महानतम उपलब्धि यह रही कि उसके कवि ने सृजनात्मक स्वातन्त्र्य के साथ कलात्मक स्वातन्त्र्य की भी घोषणा की। उसके अनुसार कवि को सामाजिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा कहीं अधिक अपने कृतित्व एवं भावना के प्रति विश्वास रखना चाहिए। सृजनात्मक प्रक्रिया अपने में स्वयं साध्य है और उसका मूल्यांकन वाह्य मानदण्डों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, चाहे वे कितने अच्छे या सत्य प्रतीत होते हों।[3] कविवर कीट्स के अनुसार काव्य में आत्मानुभूति को अभिव्यक्ति मिलती है, न कि विचार या नैतिक उपदेशों को। उसका कथन है कि "मानव को काव्य प्रतिभा का उपयोग अपने निर्माण के लिये करना चाहिए, उसकी परिणति कानून या नियमों के द्वारा नहीं, अपितु केन्द्रीय ग्राह्यता तथा निरीक्षण के द्वारा ही होती है। जो सृजनात्मक है, वह स्वयं अपना निर्माण करता है।[4] कविवर दिनकर भी काव्य स्वातन्त्र्य-सम्बन्धी स्वच्छन्दतावादी मान्यता का समर्थन

---

1. रामधारीसिंह दिनकर : काव्य की भूमिका। प्रथम संस्करण। पृ० ३६।
2. "Poetry makes its decision in freedom." (Derec Stanford : The Freedom of Poetry. (1947) P. 17.
3. The great achievement of English Romanticism was its grasp of the principle of creative autonomy, its declaration of artistic independence........he (poet) has an authority, as distinct from a social functian of his own The creative process is an end by itself; not to be judged by its power to illustrate something else, however true or good."

   (Blake after two centuries : Northrop Frye in 'English Romantic Poets—Ed by M. H. Abrams. P. 95.)
4. The "genius of poetry must work out of its own salvation in a man; it cannot be matured by law and precept, but by sensation and watchfulness in itself. That which is creative must create itself."

   John Keats : Letters PP. 222—3. (October 9, 1818.)

करते है। उनका मन्तव्य है' कि "कवि के लिए जो प्रथम और अंतिम बन्धन हो सकता है वह केवल इतना ही है कि कवि अपने-आप के प्रति पूर्ण रूप से ईमानदार रहे।"[1] स्वच्छन्दतावादी मान्यताओं ने उन विद्वानों का विरोध किया जो काव्य को धर्म, विज्ञान तथा विचारों के माध्यम के रूप में ग्रहण करते हैं। जैसे विद्वान काव्य में नैतिक उदारता या गूढ़ विचारों को देखने के पक्षपाती हैं। इन का समर्थन काव्य के बौद्धिक या नैतिक मूल्यांकन को प्राप्त है, जिस का सम्बन्ध काव्यानुभूति एवं आंतरिक संवेदना से नहीं है।[2] इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद ने काव्य के स्वतन्त्र अस्तित्व की प्राण-प्रतिष्ठा की तथा उसे मानव-जीवन के अन्य ज्ञान-विज्ञान से सर्वथा भिन्न मान लिया।

(ग) **व्यक्तित्व प्रकाशन तथा आत्माभिव्यंजकता**:—स्वच्छन्दतावाद के अनुसार काव्य में कवि के व्यक्तित्व का प्रकाशन होता है। कवि अपने आत्मिक स्वरूप को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है। काव्य में कवि के व्यक्तित्व को परखने की प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद की काव्य सम्बन्धी मान्यताओं में-से है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि का काव्यात्मक व्यक्तित्व अपने आप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। परन्तु प्राचीन परम्परावादी काव्य में कवि का व्यक्तित्व काव्य-कृति में ऐसा एकाकार हो जाता था कि कवि के व्यक्तित्व को काव्य से पृथक करना अत्यन्त कठिन है। काव्य में कवि-व्यक्तित्व के सम्बन्ध में परम्परावाद तथा स्वच्छन्दतावाद की मान्यतायें परस्पर विरोधी हैं। परम्परावादी मान्यता के अनुसार काव्य में कवि अपने व्यक्तित्व को ऐसा समाहार करता है कि उसका कोई स्वतन्त्र तथा पृथक अस्तित्व नहीं रहता। अतः परम्परावादी मान्यता के अनुसार काव्य-रचना में प्रवृत्त कवि अपने व्यक्तित्व से पलायन करता है, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं। इसके ठीक विपरीत स्वच्छन्दतावाद के अनुसार काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मिलती है। काव्य कवि की आत्माभिव्यंजना का माध्यम मात्र है।

काव्य में कवि के व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष प्रकाशन या व्यक्तित्व की सीधी अभिव्यक्ति के प्रश्न ने स्वच्छन्दतावादी आलोचना-प्रणाली के जन्म के पश्चात् ही आलोचकों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। परम्परावादी आलोचना में काव्य-कृति के सम्बन्ध में ही विचार किया जाता है, परन्तु काव्य में अभिव्यक्त कवि-व्यक्तित्व के

---

१. रामधारीसिंह दिनकर : मिट्टी की ओर : पृ० १३२

2. "Some people are indeed interested in profound thought or ethical nobility, and want to find them in a work of art; but these are extrinsic intellectual or ethical valuations which have little to do with the intrinsic poetic appeal." (S. K. De : Some Problems of Sanskrit Poetics. P. 46.)

विषय में बहुत कम विचार- विमर्श हुआ। स्वच्छन्दतावाद के प्रादुर्भाव के साथ काव्य में कवि-व्यक्तित्व के प्रश्न पर विचार किया गया। काव्य में व्यक्तित्व के प्रकाशन के सम्बन्ध में अनेक स्वच्छन्दतावादी कवि-विचारकों तथा आलोचकों ने अपने मत प्रकट किये हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध काव्य-समीक्षक एवं विचारक शिलर के अनुसार भावात्मक कविता में कवि अपनी कृति में सर्वथा वर्तमान रहता है और वह निरन्तर हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है।[1] यहाँ शिलर ने काव्य में अभिव्यक्त कवि-व्यक्तित्व की ओर ही संकेत किया। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं काव्य समीक्षक हेगेल का कथन है कि कवि को अपने जीवन को ही काव्यमय बनाना चाहिये।[2] यदि कवि अपने व्यक्तित्व को काव्य के रूप में ढालना चाहे तो उसे उसके पूर्व ही अपने जीवन को काव्यमय बनाना चाहिये जिससे उसकी अभिव्यक्ति ही काव्य बन जाय। इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पंत "ज्योत्स्ना" में एक पात्र के द्वारा कहलवाते हैं "सच्चा कवि वह है, जो अपने सृजन प्रेम से अपना निर्माण कर सकता है। अपने को जीवन के सत्य और सौन्दर्य की प्रतिमा बना लेता है। कवि का सबसे बड़ा काव्य स्वयं कवि है।"[3] यहाँ पंतजी कवियों को काव्य में अभिव्यक्ति पाने योग्य व्यक्तित्व का निर्माण करने की सलाह देते हैं जर्मन महाकवि गेटे कला या काव्य में अभिव्यक्त कलाकार के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं—"सब से महत्वपूर्ण स्वयं कलाकार ही है और वह जीवन के आनन्द को केवल कला में ही पाता है। कलाकृति में लीन होकर वह अपनी सम्पूर्ण अनुभूतियों एवं शक्तियों के साथ जीवित रहता है।"[4] यहाँ गेटे काव्य में कवि के प्रत्यक्ष व्यक्तित्व के अस्तित्व का समर्थन करते हैं। जर्मनी के कवि एवं विचारक नौवालिस के अनुसार "कलाकृति अहं का द्रष्टव्य बाह्याकृति मात्र है और काव्य

---

1. "....in sentimental poetry, the poet is constantly present in his work and solicits our attention to himself." (The Mirror and the Lamp : Romantic theory and critical tradition—Ed. by M. H. Abrams. p. 238.)

2. "Poet should make his life itself poetry."—Hegel.

3. सुमित्रानन्दन पंत : ज्योत्स्ना : तृतीय संस्करण। पृ० ९२।

4. "For the one thing that matters is the artist, so that he feels none of the blissfulness of life except in his art, so that absorbed in his instrument he lives therein with all his feelings and powers" (Qt, by M. H. Abrams in 'The mirror and the lamp : Romantic theory and critical tradition." P. 90.)

मानव की चेतना एवं उसके सम्पूर्ण अन्तर्जगत का प्रतिनिधित्व करता है।"[1] इससे स्पष्ट है कि नोवालिस भी काव्य में कवि—व्यक्तित्व को अधिक प्रधानता प्रदान करने के पक्ष में हैं। कीट्स ने स्वच्छन्दतावाद को अहं का उदात्तीकृत रूप माना है। कीट्स के अनुसार स्वच्छन्दतावाद ऐसी काव्य-धारा है जिसमें मौलिक एवं स्पष्ट व्यक्तित्व का अंकन हो, व्यक्तिवाद में अचंचल विश्वास हो, जिसमें कविता का मुख्य उपयोग आत्म प्रस्फुटन, आत्म-विश्लेषण, आत्म-निर्भरता और अंत में कभी-कभी दिखावट एवं आत्म-स्वीकृति के लिए हो। स्वच्छन्दतावाद का प्रथम एवं अंतिम धर्म ईश्वर सदृश "मैं" का समर्थन करना है, जो काव्य-जगत का निर्माण करना है और काव्य के निर्माण करने के साथ-साथ स्वयं अपनी ही सृष्टि करता है।[2] इस कथन में कीट्स ने काव्य में कवि-व्यक्तित्व का पूर्ण समर्थन किया है। केबल का कथन है कि जिस कविता में कवि के स्वभाव एवं रुचि को अभिव्यक्ति नहीं मिलती, चाहे वह जो कुछ भी हो, कविता नहीं हो सकती।[3] मिडिलटन मरे के अनुसार किसी एक साहित्यिक कृति को जानने का लक्ष्य उस के सृष्टा की आत्मा से अवगत होना ही है, जिसने अपने आत्म-प्रकाशन के लिये उस कृति का सृजन किया है।[4] लूकास का कथन है, "किसी एक

---

1. " .....a work of art' is the visible product of an ego.' 'Poetry is the representation of the spirit, of the inner world in its totality." (Ibid. P. 90)
2. "Romanticism can be defined as the 'egoistical sublime'—the cult of original, distinctive personality, the impassioned belief in individualism, the use of poetry primarily for self-projection, self-analysis, self-assertion and ultimately sometimes for exhibitionism and self-gratification. The first and foremost article of the Romantic creed was the affirmation of a god-like 'I' that makes the poetic world and that, in creating Poetry, creates itself."—Keats. (Qt. in 'On the Poetry of Keats' : E. G. Pettet. P. 283.)
3. Poetry which is not tinctured with the character and the leanings of poet as by some mysterious aroma absolutely not poetry at all. (Keble : Lectures on Poetry : 11—37.)
4. "To know a work of literature is to know the soul of the man who created it, and who created it in order that his soul should be known."—J. Middleton Murry (Qt. by M. H. Abrams in 'The Mirror and the Lamp : Romantic theory and the critical Tradition.' P. 227.)

कविता का रसास्वादन, मेरे लिए तो, उसकी पंक्तियों के बीच झलकने वाले व्यक्ति की सुचारुता पर आधारित रहता है और ग्रन्थ का शरीर निश्चित रूप से उस चेतना की अनु गुंज तथा वाह्याकृति मात्र है।[1] कवित्र रवीन्द्र के अनुसार भी कला या काव्य का प्रधान लक्ष्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना ही है, न कि सूक्ष्म अगोचर तथा विश्लेषण-प्रधान विषयों का विवेचना।[2] यस्० के० डे का कथन है—"हर एक कविता में कवि-व्यक्तित्व ही हमें अभिभूत करता है, जो कल्पना एवं अभिव्यंजना के सम्पूर्ण ताप, गति एवं दृढ़ता में अपने को प्रकट करता है।"[3] कविरत्न दिनकर के अनुसार "कविता कवि के उस व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न नहीं हो सकती जो उसका आंतरिक रूप है, जो उसके विचारों और चिंतनों के संग्रथन से निर्मित हुआ है। कवि जो कुछ सोचता है, उसी के अनुसार भाव वह अपनी रचनाओं में भी अभिव्यक्त करता है।"[4] "डा० नगेन्द्र भी काव्य में कवि-व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं—"अपने को पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करना—चाहे, वह कर्म द्वारा हो अथवा वाणी द्वारा, या किसी भी अन्य उपकरण के द्वारा हो, व्यक्तित्व की सब से बड़ी सफलता है। वाणी में कर्म की अपेक्षा स्थूलता और व्यावहारिकता कम तथा सूक्ष्मता और आंतरिकता अधिक होती है, अतएव वाणी के द्वारा जो आत्माभिव्यक्ति होगी उसके आनन्द में सूक्ष्मता और आंतरिकता स्वभावतः ही अधिक होगी—दूसरे शब्दों में यह आनन्द अधिक परिष्कृत होगा।"[5] नगेन्द्रजी कवि-व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिए सफल एवं निश्चल अभिव्यक्ति को आवश्यक समझते हैं। इस प्रकार सभी उपर्युक्त स्वच्छन्दतावादी विचारकों तथा आलोचकों ने

---

1. "……even the aesthetic pleasure of a poem depends for me on the fitness of the personality glimpsed between its lines, on the spirit of which the body of a book is inevitably the echo and the mould." (F. L. Lucas : The Decline and Fall of the Romantic Ideal. (New York, 1936) P. 22.
2. The principal object of art also being the expression of personality and not of that which is abstract and analytical"— Tagore : Personality.
3. " .. What appeals to us in a poem is the poetic Personality which reveals itself in the warmth, movement and integrity of imagination and expression."
(S. K. De : Some Problems of Sanskrit Poetics. P. 46.)
4. रामधारीसिंह दिनकर : काव्य की भूमिका : प्रथम संस्करण। पृ० १२१
5. डा० नगेन्द्र : विचार और विवेचन पृ० ५४।

काव्य में कवि-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को पहचाना और काव्य को कवि की आत्माभिव्यंजना का वाह्य स्वरूप मान लिया।

स्वच्छन्दतावाद की इस काव्य-सम्बन्धी मान्यता के अनुसार कवि अपने व्यक्तित्व को काव्य के माध्यम से निश्चल अभिव्यक्ति देता है। वह अपने जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा का प्रकाशन एक अभिन्न मित्र की भाँति करता है। कवि अपने व्यक्तित्व के मूल्यवान अंश आत्मा की अभिव्यक्ति के लिए काव्य को एक माध्यम बना लेता है। इतना होते हुए भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिये कि कवि में लक्षित होने वाले मानव का व्यक्तित्व एवं कवि-व्यक्तित्व एक नहीं है। कवि का व्यक्तित्व वही होता है जो काव्य के आकार एवं आवरण के बीच से स्पष्ट झलकता है। कवि-व्यक्तित्व वही है, जो काव्य-रचना के समय कवि में जागृत रहकर काव्य में अभिव्यक्ति पाता है।

संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि को सहज एवं भव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। कवि-व्यक्तित्व के आलोक से काव्य में नवीन शोभा एवं दीप्ति का संचार होता है। अतः काव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यंजना स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख काव्य-सम्बन्धी मान्यता है।

(घ) अतिशय काल्पनिकता :—स्वच्छन्दतावादी काव्य में कल्पना को सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। परन्तु कल्पना के स्वरूप पर विद्वानों में मतभेद है। कल्पना शब्द का प्रयोग छः अर्थों में किया जाता है और वे इस प्रकार हैं—

१. कल्पना सुस्पष्ट चाक्षुक प्रतिभाओं की उत्पादक शक्ति है।

२. रचनात्मक प्रक्रिया में कल्पना भाषा के आलंकारिक प्रयोग से सम्बद्ध है। जहाँ भाव-प्रेषणीयता के लिए रूपकों एवं उपमाओं का प्रयोग होता है।

३. कल्पना लेखक या कवि की वह शक्ति है, जिसकी सहायता से, वह अन्य मनुष्यों की चित्तावस्थाओं को तथा मनोवेगों को सहानुभूतिपूर्वक प्रस्तुत कर सकता है। इसे सहानुभूतिपूर्वक कल्पना (Sympathetic Imagination) कहते हैं।

४. कल्पना युक्ति-कौशल की द्योतक है। इस अर्थ में उस युक्ति को कल्पना शील कहा जाता है, जो असाधारण तत्वों को, जो सामान्यतः नहीं मिलाये जा सकते, मिलाता है।

५. कल्पना वह ऐन्द्रजालिक एवं संयोगिक शक्ति है, जो परस्पर विरोधी एवं विस्वर तत्वों तथा गुणों के सतुलन में प्रकट होती है। कल्पना की यही परिभाषा काव्य-शास्त्र को कोलरिज की सर्वोच्च देन है।

६. कल्पना वैज्ञानिक की वह मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा वैज्ञानिक सामान्यतः असदृश वस्तुओं में संगत सम्बन्ध दिखाता है।

इनमें से प्रथम पाँच अर्थों में कल्पना का सम्बन्ध काव्य और कला से है। वास्तव में कल्पना रचना-प्रक्रिया में संलग्न कवि की प्राणभूत शक्ति है, जिसके अस्तित्व के कारण वह काव्य में रूप-चित्रों तथा चाक्षुष प्रतिमाओं का निर्माण करता है। इस प्रकार कल्पना के द्वारा कवि अनेक सुन्दर विम्वों का सृजन करता है और वे विम्व काव्योत्कर्ष में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। अतः यहाँ पर कल्पना के उपर्युक्त अर्थों में प्रथम अर्थ को ही ग्रहण किया जाता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य अतिशय कल्पना-प्रधान काव्य है, जिसमें अनेक सौन्दर्य मण्डित तथा आकर्षक विम्वों एवं प्रतिमाओं का अंकन मिलता है। इस मूर्तिविधायिनी शक्ति कल्पना का स्वच्छन्दतावाद में महत्वपूर्ण स्थान है और अतिशय काल्पनिकता के कारण ही स्वच्छन्दतावादी काव्य को अन्य काव्यों से सुगमता के साथ पृथक किया जा सकता है। अतः निष्कर्ष यह है कि अतिशय काल्पनिकता स्वच्छन्दतावादी काव्य-मान्यताओं में प्रमुख स्थान रखती है।

स्वच्छन्दतावादी मान्यताओं के अनुसार काव्यगत सत्य की आधार-शिला कल्पना है। कल्पना का सत्य ही काव्यगत सत्य है। काव्य का सत्य वैज्ञानिक सत्य से सर्वथा भिन्न हैं। वैज्ञानिक या दार्शनिक का सत्य बुद्धिगम्य और वस्तुगत होता है, जब कि काव्य का सत्य उसके अभ्यान्तर मूल्यों, जीवन की अनुभूतियों तथा संवेदनशील, भावनाओं पर आधारित रहता है। अतः काव्य का सत्य बुद्धि-क्षेत्र से परे होकर कल्पना का आधार ग्रहण करता है। काव्य के इस सहृदय सवेद्य सत्य की ओर स्वच्छन्दतावाद अत्यन्त जागरूक है। स्वच्छन्दतावादी आलोचक सि० यम० बौरा का कथन है कि कल्पना का सत्य एवं यथार्थ के साथ गहरा सम्बन्ध है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उस सम्बन्ध को अपने काव्य में बनाये रखने का सम्पूर्ण प्रयास किया।[1] ली० हण्ट के अनुसार जहाँ भौतिकता या विज्ञान अपने स्वरूप को अनायास छोड़ देते हैं, वहाँ कविता का उदय होता है और वह विज्ञान के सत्य से परे के सत्य का प्रदर्शन करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भावनामय जगत् से उसका गहरा सम्बन्ध है और उसमें काल्पनिक आनन्द प्रदान करने की क्षमता है।[2] कविवर कीट्स के अनुसार

---

1. "They (Romantics) believed that the imagination stands in some essential relation to truth and reality, and they were at pains to make their poetry pay attention to them."..........
(C. M. Bowra: The Romantic Imagination, P.5)
2. "Poetry begins where matter of fact or of science ceases to be merely such, and to exhibit a further truth; that is to say, the connection it has with the world of emotion, and its power to produce imaginative pleasure."...... ...Leigh Hunt.

कल्पना, जिसे सौन्दर्य के रूप में ग्रहण करती है, वही सत्य है।[1] अतः कीट्स ने कल्पना के सौन्दर्य-विधायिनी-शक्ति-प्रसूत-तत्व को ही काव्यगत सत्य माना है। जार्ज थामसन की धारणा यह है कि सदा से कविता का कार्य मानव-चेतना को बुद्धि ग्राह्य संसार से मुक्त कर उसे एक अतीन्द्रिय एवं ऐन्द्राजालिक लोक की ओर उन्मुख कराना ही रहा है। यह अतीन्द्रिय काल्पनिक लोक वास्तविक विश्व से पृथक नहीं, यों कहें कि यही वास्तविक है जिसकी आन्तरिक गति का निरूपण करने के लिये सभी प्रकार के अनावश्यक विषयों का परित्याग किया जाता है।[2] बाबू श्यामसुन्दर दास ने काव्य में कल्पना के सत्य पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया है। उनका कथन है—"कल्पना सत्य होनी चाहिये और यह सत्य की साधना बड़ी ही दुस्साध्य है।........कवि-कल्पना में सत्यता होनी चाहिए, किन्तु सत्यता का जो अर्थ साधारणतः किया जाता है उसे कविता में ढूँढना ठीक न होगा। वह तो केवल विज्ञान में मिल सकता है। कविता में सत्यता से अभिप्राय उस निष्कपटता से है और अन्तर दृष्टि से है जो हम अपने भावों या मनोवेगों का व्यंजन करने में, उनका हम पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे प्रत्यक्ष करने में तथा उनके कारण हमें जो सुख-दुख, आशा-निराशा, भय आशंका, आश्चर्य-चमत्कार, श्रद्धा-भक्ति आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी अभिव्यक्ति करने में प्रदर्शित करते हैं। अतएव कविता में सत्यता की कसौटी यह नहीं हो सकती कि हम वस्तुओं का वास्तविक रूप खोलकर दिखावें, किन्तु इस बात में होती है कि उन वस्तुओं की सुन्दरता, उनका रहस्य, उनकी मनोमुग्धकारिता आदि का हम पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे कविता की दृष्टि से स्पष्ट करके दिखावें।"[3] श्याम सुन्दर-दास भी कल्पना के सत्य को वैज्ञानिक एवं भौतिक सत्य से सर्वथा भिन्न मानते हैं। अतः स्वच्छन्दतावाद काव्य में कल्पना के सत्य का प्रतिपादन करता है।

(घ) सौन्दर्य-प्रियता :— मानव अपने सौन्दर्य बोध के कारण पशु-पक्षियों से श्रेष्ठ माना जाता है। वह केवल अखिल रूपात्मक एव निखिल गुणात्मक विश्व में अनन्त सौन्दर्य का ही दर्शन नहीं करता, अपितु अपने ही वाह्य एवं आभ्यन्तरिक

---

1. "What the imagination seizes as Beauty must be truth." (John Keats.)—The letters of John Keats, (Nov. 22, 1817.) (P.67.)
2. " The function of poetry is still, as always, to withdraw the consciousness from the perceptual world into the world of fantasy. This world of fantasy is not of course a separate world from the real world; rather it is the real world stripped of all accidental, unessential features so as to reveal its underlying movement.

   (George Thomson: Marxism and Poetry. P. 23.)
3. श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन। तेरहवीं आवृत्ति। पृ० ७८-७९।

सौन्दर्य के प्रति भी चिर जागरूक रहा है। ऐसे सौन्दर्य के अस्तित्व के विषय में मतभेद है। कुछ विचारक सौन्दर्य का अस्तित्व वस्तु में मानते हैं तो कुछ द्रष्टा के मन में। और कुछ विचारक सौन्दर्य के अस्तित्व को वस्तु एवं द्रष्टा दोनों में मानते हैं।

स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य-भावना सौन्दर्य के प्रति व्यक्तिपरक दृष्टिकोण अपनाती है। वह वस्तु की अपेक्षा द्रष्टा के अंतःकरण में सौंदर्य का दर्शन करती है। स्वच्छन्दतावादी मान्यता के अनुसार काव्य में सौन्दर्य की व्यापक चेतना का होना परमावश्यक है। वस्तुत: सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने व्यापक सौन्दर्य-बोध के कारण प्रेम को जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया। सौन्दर्य इन कवियों का धर्म बन गया था। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मुख्यतः नारी तथा प्रकृति में अनन्त सौन्दर्य का दर्शन किया है। स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य-भावना आदर्शवादी है और उसके साथ उदात्तता तथा पवित्रता का समावेश हुआ है। इस स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य-बोध के कारण जिस प्रेम-भावना का उदय हुआ, वह अत्यन्त व्यापक शक्तिशाली एवं जीवन्त थी। अतिशय संवेदनशील होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि अपने संवेगों की अनियंत्रित धारा में बहते हुये भी प्रत्येक वस्तु में अपने भावानुकूल सौन्दर्य का आरोप किया करते हैं।

स्वच्छन्दतावाद में व्यक्ति का मन ही सौन्दर्य का आधार माना गया, वस्तु अथवा द्रव्य नहीं। रूसो, वाल्टेयर, कान्ट, हीगेल, शेलिंग, श्लीगल, कोलरिज, गेटे, रवीन्द्र आदि विद्वानों, विचारकों तथा कवियों ने इसी स्वच्छन्दतावादी मान्यता का समर्थन किया। अतः स्वच्छन्दतावाद सौन्दर्य को वस्तु-निरपेक्ष तथा आत्मपरक मानता है। उसने मन को सौन्दर्य ग्रहण करने वाला नहीं, अपितु उसका निर्माण करने वाला मान लिया। संक्षेप में यही स्वच्छन्दतावाद की सौन्दर्य-सम्बन्धी मान्यता है।

(ङ) भावना एवं अनुभूति की मार्मिकता :—स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्राणभूत तत्वों में अनुभूति एवं भावना की तीव्रता अत्यन्त प्रमुख है। स्वच्छन्दतावादी काव्य बुद्धि-प्रधान नहीं, अपितु भावना एवं अनुभूति-प्रधान काव्य है। भावना एवं अनुभूति को काव्य में प्रधानता देते हुये वर्ड्सवर्थ कहते हैं कि काव्य उत्कट अनुभूतियों का प्लावन है।[1] अनुभूति को प्रधानता देते हुये हाउसमेन कहते हैं कि अनुभूति ही कविता है और कविता ही अनुभूति है।[2] इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी काव्य में अनुभूति

---

1. "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings." Wordsworth: Preface to Lyrical Ballads.
2. "Feeling is poetry and poetry is feeling"—Edward Houseman: The name and nature of poetry.

एवं भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति पायी जाती है। स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी भावना एवं अनुभूति की तीव्रता के कारण परम्परावादी कवियों से भिन्न होता है। वह अपनी संवेदनशीलता द्वारा प्रकृति के जड़ एवं चेतन सभी पदार्थों के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है और वे पदार्थ उसकी अनुभूति के विषय बन जाते हैं। काव्य-प्रेरणा अनुभूतियों से प्राप्त होती है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की बाह्य रूप-रेखा के मर्म में आत्मानुभूति ही कार्य करती है। काव्य के सम्पूर्ण वैविध्य के भीतर एकात्म्य स्थापित करने वाली शक्ति यही है। भावना एवं अनुभूति का सम्बन्ध कवि के रागात्मक हृदय से होने के कारण, वह उसकी अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं की सहज काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में भावना की इतनी प्रधानता है कि उसका विचार-तत्व भी भावना पर आश्रित रहता है।[2] अतः भावना एवं अनुभूति स्वच्छन्दतावादी काव्य के मुख्य उपकरण हैं। काव्य में भावना एवं अनुभूति की गहराई स्वच्छन्दतावाद की काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं में से है।

(च) विचार-सम्बन्धी मान्यतायें :— जगत और जीवन के प्रति स्वच्छन्दतावाद अपनी स्वतंत्र विचारधारा रखता है। स्वच्छन्दतावाद में एक स्वतन्त्र जीवन-दर्शन का भी दर्शन होता है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जीवन और जगत के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया है, जिन विचारों को प्रकट किया है, उनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

१. व्यक्तिवाद का आदर्श।
२. अहंवाद, निराशावाद एवं दुखवाद का समर्थन।
३. प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण।
४. रूढ़ियों का विद्रोह।
५. दार्शनिक विचारधारा।
६. जीवन-दर्शन।

(क) व्यक्तिवाद का आदर्श—व्यक्तिवाद एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का समर्थन स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का राजनैतिक पहलू है। इसी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना ने सामाजिक धरातल पर स्वच्छन्दतावाद की मानवतावादी विचारधारा की प्रतिष्ठा की।

---

2. "In literature there is no such thing as pure thought, thought is always the handmaid of emotion"—(Middleton Merry: The Problem of Style. P. 73)

स्वच्छन्दतावादी काव्य व्यक्तिवादी समाज की उपज है। इसी कारण स्वच्छन्दतावादी कवि सर्वाधिक वैयक्तिक तथा अंतर्मुखी होता है। वह अपने व्यक्तित्व की अतल गहराइयों से अनेक मानवीय मूल्यों का अन्वेषण कर, उनका उद्घाटन करता है। वह समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व देता है। वह समाज को एक सामूहिक इकाई के रूप में न ग्रहण कर व्यक्तियों के समुदाय के रूप में देखता है।[1] अतः स्वच्छन्दतावाद का आदर्श कवि तथा पाठक व्यक्तिवादी समाज के सदस्य हैं। वास्तव में सभ्य कविता अत्यधिक व्यक्तिवादी समाज की उपज है।[2] इसी कारण व्यक्तिवाद के आदर्श की स्थापना स्वच्छन्दतावाद की विचार-सम्बन्धी मान्यता रही है।

(ख) **अहंवाद, निराशावाद तथा दुखवाद का समर्थन** :—व्यक्तिवाद की अतिशयता ने स्वच्छन्दतावादी विचारधारा में अहंवाद को जन्म दिया। स्वच्छन्दतावादी कवि समाज-विद्रोही, स्वतन्त्र, उच्छृंखल एवं आत्म-केन्द्रित होता है। कभी-कभी वह "अहम्" का कवच पहन कर अपने को महान् एवं श्रेष्ठ समझने लगता है। वह अपने को समाज के अन्य मनुष्यों से पृथक एवं विचित्र मानता है। जीवन में अपनी असफलता को छिपाने के लिये उसने उच्चता की भावना (Superiority complex) अपनायी। स्वच्छन्दतावादी कवि की इस, प्रवृत्ति का परिणाम यह निकला कि वह जीवन-संघर्ष में हार कर अपने अहम् के घेरे में बन्दी हो गया। वह समाज निरपेक्ष होकर अपने वैयक्तिक सुख-दुख, आशा-निराशा का अंकन करने लगा। प्रेम की असफलता, निराशा एवं दुखजन्य वेदना अधिकतर उसकी काव्य-वस्तुएँ बनीं। इस अतिशय अहंवादिता के कारण (केवल कुछ कवियों में ही) अंतिम काल में स्वच्छन्दतावादी कविता आत्म-कथात्मक हो गयी। इस अहंवाद के दो रूप सभी स्वच्छन्दतावादों में सुगमता के साथ पाये जाते हैं और वे इस प्रकार हैं :—

१. आत्म-प्रशंसा एवं अतिशय आत्म-विश्वास।
२. वैयक्तिक निराशा एवं दुख की वेदना तथा मृत्यु की उपासना।

---

1. "The point of reference in their (Romantics) poetry is the individual rather than society, or society seen as a collection of individuals."
   (R. A. Foakes—the Task of the Romantic Poet: in 'The 'Romantic Assertion.' P. 42)
2. "Civilized poetry is the work of a more highly individualised society."
   (George Thomson: Marxism and Poetry. P. 23)

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि कुछ स्वच्छन्दतावादी कवि व्यक्तिवादी थे तो कुछ अहंवादी रहे। अहंवाद के सम्पूर्ण गुण तथा अवगुण स्वच्छन्दतावादी काव्य के परिवेश में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

(ग) **प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण** :– स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वैदिक ऋषियों की भाँति प्रकृति में चेतन सत्त का आरोप कर अपने हृदय की सौन्दर्य-भावना को मूर्त्त किया है।[1] अधिकतर स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण सर्ववादी रहा। यूरोप के स्वच्छन्दतावादी चिंतक रूसो ने प्रकृति की विचित्रता, विराटता रहस्यात्मकता, भयानकता एवं निर्जनता के प्रति विशेष आकर्षण का अनुभव किया। परन्तु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के उग्र और विराट स्वरूप के के साथ उसके शान्त-स्निग्ध एवं आनन्दमय स्वरूप का भी अंकन किया। स्वच्छन्दतावादी कवि तथा प्रकृति के बीच आध्यात्मिक तथा भावात्मक सम्बन्ध भी दिखाई पड़ता है। उसके लिए प्रकृति जड़ न होकर एक चेतन तथा सप्राण व्यक्तित्व रखता है। उसने अपनी ही चेतना का, अपने ही सौन्दर्य-बोध का आरोप प्रकृति पर किया। मुख्यतः प्रकृति के प्रति स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण दो मुख्य रूपों में लक्षित होता है (१) आत्मारोपित और (२) सर्ववादी। प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग होने के कारण इस पर उसने अपनी आत्मा का आरोप किया और उसमें एक ही चेतन तत्व के दर्शन करने के कारण उसका अंकन काव्य के अन्तर्गत कर दिया। स्थूल रूप से स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति-चित्रण निम्नलिखित रूपों में मिलता है—

---

1. **"वास्तव में उस प्राचीन जीवन ने मनुष्य को प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करने की, उसके व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप की तथा उसकी समष्टि में रहस्यानुभूति की सभी सुविधायें सहज ही दे डालीं।"—महादेवी वर्मा : अपने दृष्टिकोण से। आधुनिक कवि—१। पृ० १४।**
2. "Wild and inaccessible, therefore, was the peculiar beauty to which Rousseau's temperament was attuned....that wild beauty which charms the susceptible mind but is horrible to others; the beauty of a nature big and lifty, of a nature which is called sometimes in contradiction to the beautiful, in which pleasure is mixed with awe; of a nature seen from lonely mountain tops, awakening emotions of adoration for the wonders of God's creation and heroic resolves for a nobler life here-to-fore led in the valleys below."
(Robert M. Wernaer : Romanticism and Romantic School in Germany : P. 192.)

(१) प्रस्तुत या आलम्वन के रूप में।

(२) उद्दीपन के रूप में।

(३) आलम्वन के रूप, गुण तथा क्रिया-कलापों के स्पष्टीकरण के लिए अप्रस्तुत (अलंकार) के रूप में।

(४) परोक्ष की अभिव्यक्ति, उसके प्रतिविम्व, प्रतीक एवं संकेत के रूप में।

रुढ़ियों का विद्रोह :—स्वच्छन्दतावादी विचारधारा ने हर एक क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। राजनैतिक क्षेत्र में उसने साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद का विरोध किया। सामाजिक धरातल पर मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर सामन्तकालीन श्रृंखलाओं का खण्डन किया। उसने सामाजिक कुरीतियों का भी विरोध किया। स्वच्छन्दतावाद ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का समर्थन करते हुये समाज की नैतिक तथा धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध क्रान्ति मचा दी। उसने प्राचीन परम्परावादी काव्य-श्रृंखलाओं का विरोध कर काव्य तथा कला के क्षेत्र में नवीन भावनाओं एवं विचारों का संचार किया। स्वच्छन्दतावाद ने प्राचीन काव्य-परम्परा का खुलकर विरोध किया। उसने सामंती तथा दरवारी संस्कृति के बन्धनों से काव्य को मुक्त किया।[1] भापा, छन्द, काव्य-वस्तु, कल्पना एवं सौन्दर्य-वोध—सव में प्राचीन परम्परावादी काव्य के रुढ़िगत दृष्टिकोण का विरोध कर स्वच्छन्दतावाद ने नवीन दृष्टिकोण अपनाया। उसने उन्मुक्त कल्पना, स्वतन्त्र भावना, सूक्ष्म सौन्दर्यबोध तथा वेगवती आवेग द्वारा प्राचीन काव्य-रूढ़ियों का विरोध किया। स्वच्छन्दतावादी कवि ने स्थूल बन्धनों के प्रति विद्रोह कर सूक्ष्म कल्पना एवं भावना से अपने मनोलोक की रचना की।[2] उसने बौद्धिक नीरसता के स्थान पर भावुकता एवं हार्दिकता को, स्थूल वासनापरक ऐन्द्रिय प्रेम के स्थान पर आदर्शवादी प्रेम (Platonic Love) तथा स्वाभाविक प्रेम को प्राधान्य दिया। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण ने काव्य को संकीर्ण धरातल से ऊपर उठाकर उसे

---

1. "एक दीर्घकाल से कवि लिये, सम्प्रदाय अक्षयवट और दरवार कल्पवृक्ष बनता आ रहा था और इस स्थिति का बदलना एक व्यापक उलट फेर के बिना सम्भव ही नहीं था। जो समय से सहज हो गया।"

—महादेवी : विवेचनात्कम गद्य : पृ० ५२।

2. "जब-जब स्थूल की प्रभुता असह्य होती गयी, तभी सूक्ष्म ने उसके विरुद्ध क्रान्ति की है। इस क्रान्ति और इस विद्रोह के प्रोद्भास रूप से जो गान संसार की आत्मा ने उन्मत्त होकर गाये, वे ही छायावाद की कविता के प्राण हैं।"

—डा० नगेन्द्र : सुमित्रानन्दन पंत। नवम् संस्करण। पृ० २।

सूक्ष्म एवं आंतरिक सौन्दर्य के आकाश में पहुँचा दिया।[1] इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं काव्यगत रूढ़ियों का विरोध किया।

(ङ) **दार्शनिक विचारधारा**—स्वच्छन्दतावाद की एक विशिष्ट दार्शनिक विचारधारा के न होते हुए भी उसका झुकाव कुछ दार्शनिक विचारों की ओर अवश्य है। विश्व की अधिकांश स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं पर सूफियों का प्रतिविम्ववाद, यूनानी सर्वात्मवाद (Pantheism) तथा भारतीय रहस्यवाद की विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इनमें से किस विशेष दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव जर्मनी, अंग्रेजी या भारतीय स्वच्छन्दतावाद पर पड़ा। अधिकांश भारतीय स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं पर, मुख्यतः रहस्यवाद, उपनिषदों का ब्रह्मवाद, सांख्य और वेदान्त-दर्शन, अद्वैतवाद, बौद्धदर्शन का दुःखवाद, शैवागम का आनन्दवाद, सूफियों का प्रतिविम्ववाद आदि के दार्शनिक विचारों का प्रभाव कम या अधिक मात्रा में पड़ा परन्तु पाश्चात्य स्वच्छन्दता वादों में सर्वात्मवाद तथा रहस्यवाद का ही दर्शन होता है।

(च) **जीवन-दर्शन**— स्वच्छन्दतावाद जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण रखता है। वह मानव को प्रकृति के एक विशिष्ट अंश के रूप में ग्रहण करता है। उसके लिए मानव तथा प्रकृति समान महत्व के हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रेम, सौन्दर्य तथा यौवन की कविता है। अतः स्वच्छन्दतावाद ने जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। वह जीवन की समस्याओं का समाधान बुद्धि की विश्लेषण-पद्धति से न दे कर भावना के माध्यम से देता है। वह जीवन को समग्र रूप में लेना चाहता है, खण्ड रूप में नहीं। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य जीवन की समग्रता, सरसता एवं जीवन्तता का द्योतक है। वह मानव-जीवन के यौवन एवं उमंग का काव्य है।[2]

---

1. "इसके साथ-साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम वेगवती न थी। अतः उस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनायें विद्रोह कर उठीं।............पर स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृत्तियों से थके हुए और कविता की परम्परागत नियम शृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं में बँधे स्थूल का, न तो यथार्थ-चित्रण रुचिकर हुआ न उसका रूढ़िगत आदर्श भावा। उन्हें नवीन रूप-रेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता थी जो छायावाद में पूर्ण हुई।"—महादेवी वर्मा : अपने दृष्टिकोण से। आधुनिक कवि—१। पृष्ठ १५।
2. "यह रंगीन दृष्टिकोण वास्तव में कुछ अस्वाभाविक भी नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति और जाति के जीवन में यह एक न एक समय आता ही रहता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य आदर्शवादी है। स्वच्छन्दतावादी कवि स्वप्नद्रष्टा होने के कारण अनन्त सौन्दर्य लोकों की सृष्टि करता है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण आदर्शवादी है। वह जीवन से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है।[1] वह अपनी भावना को कल्पना के पंख लगाकर सौन्दर्यमयी लोकों में विचरण करता है। वह वस्तु-जगत की भौतिकता की अपूर्णता से ऊबकर आदर्श के प्रासाद खड़ा करता है। स्वच्छन्दतावादी कवि का आदर्शवाद कोरे आध्यात्मिक उपदेश मात्र न रहकर कल्पना के सौन्दर्यमयी वैभव से निर्मित हुआ है। इसके अतिरिक्त स्वच्छन्दतावादी कवि ने आध्यात्मिक आदर्शवाद की भी सृष्टि की। उसने प्रेम, विश्व-बन्धुत्व तथा अतीत के गौरवपूर्ण स्थल आदि क्षेत्रों को भी अपने आदर्श लोक के निर्माण के लिये उपकरण के रूप में स्वीकार किया है।

इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद ने जीवन के प्रति आदर्शवादी, भावात्मक स्वप्निल तथा तारुण्यपूर्ण दृष्टिकोण को अपनाया।

स्वच्छन्दतावाद की कला-सम्बन्धी मान्यतायें :—

स्वच्छन्दतावाद की कुछ अपनी कला-सम्बन्धी मान्यतायें भी हैं। उसने परम्परावादी मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह किया है और काव्य के रचना-प्रक्रिया तथा कला-सौष्ठव के सम्बन्ध में अपने पृथक एवं नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया। स्वच्छन्दतावाद के कला-पक्ष की मान्यताओं एवं विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है—

१—रचना-प्रक्रिया, २—शैली तथा अभिव्यक्ति : लक्ष्य और साधना।

(क) रचना-प्रक्रिया :—रचना-प्रक्रिया को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१—कवि की प्रतिभा या कल्पना-शक्ति। २—काव्य प्रेरणा तथा रचना-प्रक्रिया।

(ख) कवि की प्रतिभा या कल्पना-शक्ति :—भारतीय काव्य-शास्त्र में कवि जिस शक्ति के कारण काव्य-सृष्टि में समर्थ होता है उस शक्ति को प्रतिभा के नाम

विशेष रूप से यह तारुण्य का द्योतक है जो चाँदनी के समान हमारे जीवन की कठोरता, कर्कशता, विषमता आदि को एक स्निग्धता से ढक देता है।"—महादेवी वर्मा—अपने दृष्टिकोण से—आधुनिक कवि १—पृ० २३—२४

1. "आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाये यथार्थ का चित्र दे, परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता।"—महादेवी वर्मा—अपने दृष्टिकोण से। आधुनिक कवि १—पृ० २३।

से अभिहित किया गया है तो पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में कल्पना-शक्ति के नाम से । पाश्चात्य आलोचना-प्रणाली में जो स्थान कल्पना को प्राप्त हुआ है, वही स्थान भारतीय आलोचना में प्रतिभा को । 'प्रतिभा'' का शब्दार्थ है "झलक" अर्थात् मानस के क्षितिज पर भावों का स्वतः प्रकाश या प्रादुर्भाव । भट्टतौत के अनुसार प्रतिभा चिरनवीन विचारों तथा मूर्तियों के निर्माण करने तथा उन्हें उज्ज्वल शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की शक्ति है । नवीन अर्थोन्मीलन में समर्थ प्रज्ञा ही "प्रतिभा" है ।[1] अभिनव गुप्त के अनुसार प्रतिभा अपूर्व वस्तु-निर्माण में प्रवृत्त प्रज्ञा ही है । प्रतिभा ऐसा उद्गम स्थान है, जहाँ से प्रत्येक वस्तु का जन्म होता है । कवि रसावेश की गहनता एवं सौन्दर्य-लिप्सा के कारण काव्य-निर्माण में सक्षम होता है ।[2] राजेश्वर के मतानुसार काव्य के सम्पूर्ण उपकरणों को—शब्द-समूह, अर्थपुन्ज, अलंकार, उक्ति प्रकार आदि को—कवि-हृदय में प्रतिभासित करने वाली शक्ति प्रतिभा है ।[3] डा० के० सी० पाण्डेय ने प्रतिभा के सम्बन्ध में लिखा है– किसी सुन्दर पदार्थ का, उसके समग्र एवं सजीव रूप में, स्पष्टतः दर्शन करने वाली शक्ति को प्रतिभा कहते हैं ।[4] विद्वानों की इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य-सृष्टि में कवि को समर्थ बना देने वाली शक्ति ही प्रतिभा है । रचनात्मक प्रक्रिया की दृष्टि से प्रतिभा के दो पक्ष माने गये हैं—१—दृष्टि पक्ष और २—सृष्टि पक्ष । प्रथमतः कवि अपनी प्रतिभा के कारण विश्व के रूप का दर्शन करता है और असंख्य वस्तुयें तथा अनुभूतियाँ उसके हृदय में स्मृति बनकर रह जाती हैं । प्रतिभा के द्वितीय रूप द्वारा कवि अपने मनः पटल पर अंकित रूप-विधानों, वस्तुओं तथा अनुभूतियों के सौन्दर्य को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । अतः दृष्टि-पक्ष एवं सृष्टि-पक्ष कवि-कर्म के दो मुख्य अंग हैं । वास्तव में कवि अर्थ और शब्द, स्फुरण और अभिव्यंजना, दर्शन और वर्णन आदि काव्य के दोनों पक्षों का उन्मीलन प्रतिभा के द्वारा ही कर सकता है । कुछ विद्वानों का कथन है कि अभिव्यंजना ही स्फुरण का अन्तिम पर्यवसान है । क्रोचे

---

1. "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता
तदनुप्राणनाजी वद्वर्णना निपुणःकविः ।।"—(हेमचन्द्र—काव्यानुशासन पृ० ३ पर उद्धृत लुप्तपाय "काव्य कौतुक" ग्रन्थ में निर्दिष्ट लक्षण)
2. "प्रतिभा अपूर्व वस्तुनिर्माण क्षमा प्रज्ञा । तस्या : विशेष रसावेशवैशद्य सौन्दर्य काव्य निर्माण क्षमंत्वम्" लोचन । पृ० २६ ।
3. या शब्द ग्रामम्, अर्थसार्थम्, अलंकार तंत्रम् अन्यदीप तथाविधमधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा ।"—काव्य मीमांसा । पृ० ११-१२
4. "The power of clear visualisation of the aesthetic image in all its fullness and life is technically called 'Pratibha,'". Indian Aesthetics. P. 151.

का स्पष्ट कथन है कि ज्ञान के अस्तित्व का परिचय केवल अभिव्यंजना के द्वारा (मानसिक रूप में ही सही) मिलता है।[1]

कल्पना के विषय में पाश्चात्य विचारकों ने कई मत प्रकट किये हैं। ड्राइडन के अनुसार कल्पना एक ऐसी शक्ति है जो एक तेज शिकारी कुत्ते की भाँति स्मृति-क्षेत्र पर भावनाओं के अन्वेषण में दौड़ती है, जिनके द्वारा वह अनुभूतियों को विशुद्ध रूप में प्रदर्शित कर सके। ड्राइडन के अनुसार कल्पना द्वारा रचना-प्रक्रिया इस प्रकार सम्पन्न होती है—"कल्पना की पहली क्रिया युक्ति अथवा ठीक विचारों का पाना, दूसरी क्रिया तरंग अथवा मनोग्रहण अथवा पाये हुए विचारों को अवधारणा के निदर्शन में विषय के अनुकूल ढालना अथवा करना, तीसरी क्रिया वाग्मिता अथवा पाये हुये विचारों की उपयुक्त, सार्थ और रूपान्तरित ध्वनिपूर्ण शब्दों में व्यंजना। पहली क्रिया में कल्पना की प्रशंसा उसकी तेजी के लिये होती है, दूसरी क्रिया में उसकी प्रशंसा सफलता के लिये होती है, और तीसरी क्रिया में उसकी प्रशंसा उसकी विशुद्धता के लिये होती है।"[2]

ऐडिसन दृश्य-जगत् को ही कल्पना का क्षेत्र मानता है। उनके अनुसार कल्पना में केवल वे ही प्रतिभायें आ सकती हैं, जो पहले ही दृष्टिगोचर हुई हैं। कल्पना अपने इच्छानुसार प्रतिभाओं को पृथक् कर सकती है और मिला भी सकती है। इससे स्पष्ट है कि ड्राइडन कल्पना को स्मृति-क्षेत्र से सीमित करता है तो ऐडीसन चक्षेन्द्रिय से। इन की कल्पना-सम्बन्धी धारणा अत्यन्त सीमित है। स्वच्छन्दतावादी कवियों तथा विचारकों ने कल्पना का गम्भीर विवेचन किया। कविवर ब्लेक का कथन है कि केवल एक ही शक्ति कवि का निर्माण करती है, वह है कल्पना या दिव्य दृष्टि।[3] शेली का मन्तव्य इस प्रकार है—"सामान्य अर्थ में, कल्पना को

---

1. 'Intuition is only intuition in so far as it is, in that act, expression. An image that does not express, that is not speech, song, drawing, painting, sculpture or architecture—speech at least murmured to oneself, song at least echoing within one's own breast, line and colour seen in imagination and colouring with its own tint, the whole soul and organism is an image that does not exist." (Broce : Aesthetics. P. 148)
2. श्री लीलाधर गुप्तः पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त। प्रथम संस्करण। पृ० ५२
3. One power alone makes a poet : imagination, The Divine vision"—Blake – 'Annotations to Wordsworth's poems' : in 'Poetry and Prose'. P. 821.

अभिव्यक्ति ही काव्य है।"[1] कोलरिज ने कल्पना के स्वरूप का समग्र विवेचन कर उसे काव्य-निर्माण का मूल तत्व सिद्ध किया। उसके अनुसार कवि अपने आदर्श स्वरूप में सम्पूर्ण मानव-आत्मा को क्रियाशील बना देता है। वह ऐकीकरण की चेतना एवं आत्मा के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है जो एक एकीकरण करने वाली ऐन्द्रजालिक शक्ति से, जिसे हम कल्पना कहते हैं, परिचालित होकर वस्तुओं के स्वरूप को बदल कर उनके भीतर प्रविष्ट हो जाता है। यह कल्पना-शक्ति परस्पर विरोधी तत्वों एवं गुणों के बीच संतुलन तथा सामंजस्य स्थापित करने में प्रकट होती है।[2] कोलरिज का यह भी कथन है कि कल्पना के नियम अपने आपमें केवल विकास और उत्पादन की शक्तियाँ मात्र हैं।[3] कोलरिज प्राचीन मनौवैज्ञानिकों की भाँति चेतना को केवल ठण्डे, मृत और कोरे संस्कारों एवं प्रत्ययों से निर्मित तत्व नहीं मानते, अपितु उसके लिये वह सजीव सर्जनात्मक शक्ति है। चेतना मे संवेदना ही नहीं, अपितु मन भी वर्तमान है। जिस प्रकार सृजन में प्रवृत्त ब्रह्म प्रकृति में विषयीकृत होता है उसी प्रकार कवि अपने सृष्टिकार्य में प्रकृति एवं जीवन से सम्बद्ध विषयों एवं वस्तुओं के साथ विषयीकृत हो जाता है। इसका कारण यह है कि मन और प्रकृति पूर्व से ही समस्वर हैं। विश्व का निर्माण ब्रह्म के आत्मज्ञान से तथा काव्य का सृजन मनुष्य के आत्मज्ञान से ही सम्पन्न होता है। कोलरिज के अनुसार इस आत्मज्ञान का कारण प्राथमिक कल्पना (Primary imagination) है। मूलतः

---

1. "Poetry, in a general sense, may be defined to be the expression of the imagination"—P. B. Shelley—'A Defence of Poetry' Qt. in : 'Poetry and Criticism of the Romantic Movement' P. 503.
2. 'The Poet, described an ideal perfection, brings the whole soul of man in to activity ..He diffuses a tone and spirit of unity, that, blends, and (as it were) fuses, each into each, by that synthetic and magical power, to which we have exclusively appropriated the name of imagination. This power reveals itself in the balance or reconciliation of opposite or discordant qualities.' (S. T. Coleridge : Biographia Literaria, II, 12.)
3. 'The rules of imagination are themselves the very powers of growth and production."—(S. T. Coleridge : Biographia Literaria. II, 63-5.)

यह कल्पना वस्तुओं एवं बिम्बों का प्रत्यक्षीकरण मात्र है।[1] कोलरिज के अनुसार काव्य-सृष्टि में कवि की सहायता करने वाली शक्ति मूर्तिविधायिनी या निर्माण-कुशला कल्पना है जिसके द्वारा कवि या कलाकार काव्य-सृजन के विभिन्न तत्वों का एकीकरण करता है और जो परस्पर विरोधी एवं विस्वर गुणों के संतुलन में प्रकट होती है। इसी निर्माण-कुशला कल्पना को कोलरिज ने "सेकण्डरी इमेजिनेशन" Secondary imagination कहा है।[2] मेगेनस ने कोलरिज के उपर्युक्त दोनों प्रकार की कल्पनाओं के अंतर को स्पष्ट करते हुये कहा कि उनका स्वरूप एक होते हुये भी उनकी स्थिति एवं उनके कार्य-व्यापार में भारी अंतर है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्माण कुशला कल्पना Secondary imagination इच्छा शक्ति के अनुसार कार्य करती है, परन्तु प्राथमिक कल्पना का कार्य असंकल्पित होता है और हम अपनी इच्छा या अनिच्छा से असंपृक्त होकर उसका प्रत्यक्षीकरण करते हैं।[3] इसके अतिरिक्त स्वयं कोलरिज ने कपोल-कल्पना (Fancy) और कल्पना के अंतर को अपने प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रंथ "बयाग्राफ़िया लिटरेरिया" में इस प्रकार स्पष्ट किया है—कपोल-कल्पना केवल निश्चित एवं पूर्व निर्दिष्ट तथ्यों से खेलती हैं। वास्तव में कपोल-कल्पना गतिमान समय तथा स्थान के क्रम से आविर्भूत स्मृति मात्र है, जो सामान्य इच्छा शक्ति से (जिसे हम युक्तायुक्त विवेक-शक्ति कहते हैं) नियंत्रित एवं परिमार्जित होती है। किन्तु कपोल-कल्पना को भी सामान्य स्मृति की तरह सभी उपकरणों तथा पदार्थों को संघात-नियम के अनुसार उनके निर्मित स्वरूप

---

1. "Primary imagination which acting upon the raw materials of sensation enables us to have perception. "—Sir Phillip Magnus: English Studies.
2. "The imagination·····'recreates' its elements by a process to which Coleridge sometimes applies terms borrowed from physical and chemical unions. Thus imagination is a 'synthetic', a 'Permeative' and a 'blending, fusing power.' At other times Coleridge describes the Imagination as an 'assimilative power' (M. H Abrams - The Mirror and the lamp : Romantic theory and critical tradition.. P. 168)
3. It is like primary imagination in kind and differs only in degree and in the mode of its operation. The difference would seem to mean that it acts in accordance with the will. The primary imagination is involuntary, we perceive whether we wish or not' (Sir Phillip Magnus : English–Studies.)

में अनिवार्यतः ग्रहण करना पड़ता है।[1] अतः कोलरिज के अनुसार कल्पना की तीन श्रेणियाँ इस प्रकार है—

१. कपोल कल्पना या फेन्सी (Fancy)

२. प्राथमिक कल्पना (Primary imagination)

३. निर्माण कुशला कल्पना (Secondary imagination)

कल्पना के उपर्युक्त विवेचन से निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जाते हैं :—

१. कल्पना को मूर्तिविधायिनी शक्ति माना गया है।

२. कल्पना-शक्ति को ग्राहक एवं विधायक माना गया है।

३. कल्पना कवि या कलाकार के रचनात्मक मन की अद्‌भुत शक्ति है।

४. कल्पना के दो मुख्य भेदों का स्पष्टीकरण हुआ है—

१. कपोल-कल्पना, २. निर्माण-कुशला कल्पना

काव्य-प्रेरणा तथा रचना-प्रक्रिया :—

स्वच्छन्दतावादी विचार धारा ने काव्य-प्रेरणा तथा रचना-प्रक्रिया पर विशेष प्रकाश डाला है। वह काव्य को कवि के अर्धचेतन, परन्तु कला के प्रति चिरजागरूक व्यक्तित्व से प्रसूत मानता है। उसके अनुसार कवि किसी अव्यक्त प्रेरणा के भार से दबकर काव्य-सर्जना में प्रवृत्त होता है। प्रेरणा के कारण ही कवि में रचना-प्रक्रिया का आरम्भ होता है। प्रेरणा के कारण ही व्यावहारिक मानव का हृदयस्थ कवि अपनी सम्पूर्ण मानसिक चेतना के साथ अपने सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होता है। अतः प्रेरणा द्वारा ही मानव में स्थित कवि का स्वरूप काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित होने लगता है। प्रेरणा ही रचना-प्रक्रिया में प्रवृत्त कवि को इस लौकिक धरातल से ऊपर उठाती है

---

1. 'Fancy has no other counters to play with, but fixites and definites. The Fancy is indeed no other than a mode of Memory emancipated from the order of time and space, while it is blended with, and modified by that empirical faculty of the will, which we express by the word CHOICE. But equally with the ordinary memory, the Fancy must receive all its materials ready made from the law of association.''—S. T. Coleridge. (Qt. in 'The Mirror and the Lamp : Romantic Theory and Critical Tradition : M. H. Abrams. P. 168.)

और उसका हृदय विश्व-हृदय के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है। उस समय कवि का साधारणीकृत स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। प्रेरणा कवि को रचना-प्रक्रिया के कर्म-क्षेत्र में अद्‌भुत शक्ति के साथ ढकेल देती है तो कवि अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ अपने सृजन-लोक में तीव्रगति से चलने लगता है। कवि ऐसी स्थिति में कुछ समय तर्क रहता है। कवि के रचना-प्रक्रिया में रहने का समय, प्रेरणा का स्वभाव और उसकी गहनता कवि की क्षमता एवं साधना और अन्य परिस्थितियों की सानुकूलता पर निर्भर करता है। प्रेरणा और रचना-प्रक्रिया एक दूसरे से ऐसे अभिन्न हैं कि उनको पृथक नहीं किया जा सकता। इतना तो कहा जा सकता है कि प्रेरणा कवि को रचना-प्रक्रिया में प्रवृत्त कर सकती है और सृष्टि कर्म ही रचना प्रक्रिया है।

प्रेरणा तथा रचना-प्रक्रिया के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य कवियों तथा विचारकों ने यत्र-तत्र अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं। भारत के महान कवियों ने प्रेरणा-शक्ति की ओर संकेत किया है। महाकवि बाल्मीकि के मुख से जब विश्व का प्रथम श्लोक निकल पड़ा था, तो वे स्वयं आश्चर्यचकित होकर कह उठे कि यह विचित्र वाणी क्या है जो मेरे मुख से अकस्मात निकल पड़ी।[1] इससे ज्ञात होता है कि कवि की इच्छा के बिना ही श्लोक उसके मुख से निकल पड़ा। महाकवि तुलसीदास के अनुसार कवि-हृदय को सरस्वती नचाती है।[2] अर्थात कवि का हृदय केवल वाणी की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है। तेलगु के महाकवि पोतना का कथन है कि **"प्रणीत होने वाली कृति भागवत है, उसे मेरे मुख से कहलवाने वाले रामचन्द्र हैं। उसे मैं अपने मुख से कहकर सम्पूर्ण भव-बन्धनों से मुक्ति पाना चाहता हूँ। इस कृति का प्रणेता कोई और है, मैं नहीं हूँ।"**[3] पोतना यहाँ अपने को उस भगवद्प्रेरणा का माध्यम मात्र मानते हैं। कविवर निराला के कथन के अनुसार वाणी अपना गान स्वयं गाती है और व्यर्थ ही कवि उसके लिए सम्मान पाता है।[4] इनके अतिरिक्त गेटे, ब्लेक, कीट्स, रवीन्द्रनाथ, दिनकर आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचनाओं में कहीं-कहीं ऐसी पंक्तियाँ मिल जाती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि

---

1. "तस्यैवं दुवन्तश्चिता वभूव हृदि वीक्षतः
शोकार्त्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ?"—वाल्मीकिः रामायण।
2. "कवि-उर-अजिर नचावहिं बानी"—तुलसीदास : रामचरित मानस।
3. "पलिकेडिदि भागवतमट
पलिकिंचेडु वाडु रामभद्रंडट ने
पलिकिन मवहरँ मगुनट
पलिकेद वेरोंडु गाथ पलिकेद नेला।"—बम्मेर पोतना : महान्ध्र भागवतम्।
4. "तुम्हीं गाते हो अपना गान, व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान"—निराला।

काव्य-प्रेरणा एक लोकोत्तर तथा अलौकिक शक्ति है और कवि केवल किसी अन्य के हाथ में साधनमात्र है। इसका वास्तविक कारण यह है कि रचना में प्रवृत्त होते समय कवि का व्यक्तित्व अत्यन्त साधारणीकृत रूप में रहता है और प्रेरणा के उन अमूल्य क्षणों में कवि अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा महान काव्य का सृजन कर सकता है। रचना-प्रक्रिया की समाप्ति होने के पश्चात् जब वह इस भौतिक-जगत में प्रविष्ट हो जाता है तो उसका व्यावहारिक रूप या आलोचक का रूप उसमें पुनः प्रतिष्ठित हो जाता है। उस समय प्रेरणा से दबी हुई कवि-प्रतिभा से सृजित काव्य उसके लिए नितान्त नवीन या अन्य किसी की सृष्टि भी लगे तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि काव्य-सृष्टा कवि-व्यक्तित्व या कवि-रूप उसे पहले ही त्याग चुका था और इस समय उसके पूर्व के मानव या आलोचक का रूप ही उसमें रह जाता है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति केवल उन्हीं क्षणों में कवि होता है, जिन क्षणों में वह रचना-प्रक्रिया में प्रवृत्त रहता है। उसके पश्चात् जो रूप उसमें शेष रह जाता है, वह कवि का विशिष्ट रूप न होकर अन्य मानवों की तरह सामान्य रह जाता है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रेरणा एक पारलौकिक एवं दैविक शक्ति है। परन्तु विश्व के मान्य स्वच्छन्दतावादी चिंतकों ने मनोविज्ञान की सहायता से प्रेरणा के स्वरूप पर तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। यहाँ कुछ चिंतकों एवं आलोचकों के मत ध्यान देने योग्य हैं। शेलिंग का कथन है कि कलाकार को अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सर्जना में प्रवृत्त होना पड़ता है। कलाकार अपने कृतित्व में कर्म-प्राधान्य की निश्चलता पर तुले रहने पर भी वह ऐसी सम्मेलक शक्ति के प्रभाव के अधीन रहता है, जो उसे सभी मनुष्यों से पृथक कर ऐसी वस्तुओं को अभिव्यक्ति देने के लिए बाध्य करती है, जिसकी अतल गहराइयों से वह (कलाकार) स्वयं अनभिज्ञ है तथा जिनका महत्व अनन्त एवं असीम है।[1] इस प्रकार शेलिंग ने प्रेरणा तथा रचना-प्रक्रिया के विवेचन में अर्थ-आधिभौतिक तथा अर्थ-मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया। शेलिंग के अनुसार काव्य-सर्जना के समय कवि में चेतना

---

1. "The artist is driven to production involuntarily, and even against an inner resistance ...No matter how purposeful he is, the artist, with respect to that which is genuinely objective in his production, seems to be under the influence of a power that sunders him from all other men and forces him to express or represent things that he himself does not entirely fathom, and whose significance is infinite."—Schelling (Qt. by M. H. Abrams in' The Mirror and the Lamp : Romantic Theory. and the Critical Tradition, P. 210.)

(Consious) और अवचेतन (Unconsious) के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाता है। कलात्मक सृजन की प्रक्रिया में अवचेतन को महत्व देने वाले प्रथम विचारक नहीं होते हुए भी उस के प्रसार में मुख्य सहयोग देने का श्रेय शेलिंग को है। शिलर की धारणा यों है—"अनुभव का विषय यह है कि कवि पूर्णतः अवचेतन में ही रचना में प्रवृत्त होता है और मेरे लिए तो कविता का महत्व अवचेतन को ठीक अभिव्यक्त कर प्रेषणीय बनाने में ही है अर्थात् उसे एक आकृति प्रदान करने में ही है। अवचेतन जागरूकता के साथ जुड़कर कवि-कलाकार का निर्माण करता है।"[1] गेटे का कथन है—"मेरा विश्वास है कि अवचेतन दशा में ही प्रतिभावान अपनी प्रतिभा का प्रत्यक्षीकरण कर सकता है।"[2] इसी प्रसंग में सि० यम्० बौरा का मत ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार सृजन के क्षणों में कवि अज्ञात रूप से अपने को किसी अद्‌भुत शक्ति के प्रभाव के अधीन पाता है, जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने में समाहार कर, उसके मन से सभी प्रकार के अन्य विषयों को दूर हटा देता है।[3] उसी समय कवि में रचना-प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। तत्काल काव्य-प्रेरणा अत्यन्त गहन एवं शक्तिशाली भावनाओं का संप्रेषण करने लगती है। सामान्यतः इन भावनाओं के अनुगामी शब्द उनका स्पष्टीकरण कर सामान्य प्रणाली से केवल सम्बन्ध ही नहीं जोड़ते, अपितु स्वयं अपने में भी असामान्य शक्ति एवं गहनता को संचित किये हुये हैं। प्रेरणा ऐसी बलवती इच्छा के साथ कर्म में (कवि को) प्रवृत्त करती है, जिसके समक्ष कुछ भी नहीं टिक सकता।[4] यहाँ बौरा ने काव्य-प्रेरणा

1. In experience, the poet begins entirely with the unconscious and poetry, it seems to me, conists precisely in being able to express and communicate that unconscious i. e, to carry it over in to an object....The Unconscious united with awareness constitutes the poetic artist."—Schiller (Qt. by M, H. Abrams in the Mirror and the Lamp : Romantic theory and the critical tradition. P. 211.)

2. 'I believe that everything which the genius does as genius, eventuates unconsciously·'—Goethe—Ibid. P. 211.

3. 'The poet unaccountably finds himself dominated by something which absorbs his being and excludes other interests from his mind '—(C. M. Bowra : Inspiration and Poetry. P. 4)

4. 'It (inspiration) begins at once to shoot out ideas of great force and intensity, and these are often accompanied by words which not only clearify them and relate them to the general scheme but are themselves of an unusual force and intensity. Inspiration sets to work with nothing can withstand. (C. M. Bowra : Inspiration and Poetry. P. 5.)

तथा रचना-प्रक्रिया का अत्यन्त मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है । क्रिस्टोफर कॉडवेल का कथन है—"हम जब कवि को प्रेरणा से अनुप्राणित करते हैं, उससे हमारा तात्पर्य यह है कि वह अन्य मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक कल्पना के कलात्मक जगत् में अपनेपन का अनुभव करता है । वस्तुओं की सतह को भेदकर उनकी गहराइयों में अवस्थित सार-तत्व तक पहुंचने तथा उसे ग्रहण कर बिम्बों के रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता कवि में अधिक मात्रा में रहती है ।"[1] जे० बी० प्रीस्टले के अनुसार स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी प्रतिभा के क्षणों में ऐसा आलोक बिखेरता है जिसका प्रभाव ऐन्द्रजालिक होता है ।[2] आगे चलकर प्रीस्टले कहते हैं कि चेतन मन स्वीकृति दे सकता है, परिष्कार कर सकता है, परन्तु उन समासों एवं पंक्तियों की सृष्टि नहीं कर सकता, जो अनेक अर्थों से भरे हुए से प्रतीत होते हैं ।[3] अरविन्द के अनुसार—"कवि की कल्पना आध्यात्मिक शक्ति से प्रेरित होकर विधान और उपनियमों के ऊपर उड़ान लेती है । कवि-रचना-विधान का बहिष्कार नहीं करता, किन्तु काव्य-सृजन के उच्चतम क्षणों में विधान का बौद्धिक तत्व गौण हो जाता है, कवि उसे भूल जाता है । शैली और शब्दों की गति स्वतः उसकी आत्मा के स्वरूप को ग्रहण कर लेती है ।" दिनकर के अनुसार "प्रेरणा बुद्धि के केन्द्रीकरण में उत्पन्न कोई अनिर्वचनीय शक्ति है जिसके मूल हमारे संस्कारों में रहते हैं, जिनकी शिरायें हमारी स्मृतियों में गड़ी होती हैं तथा जो मनुष्य की सम्बुद्धि से समन्वित होती है ।... हम जब जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों, समस्त स्मृतियों एवं बुद्धि की सारी शक्ति को लेकर

---

1. "When we speak of a poet as inspired, we mean that he is more at home than other men in this artistic world of fantasy. He possesses in a high degree the faculty of penetrating beneath the surface to the essence of things and of expressing what he perceives in images."—(C. Candwell : Illusion and Reality (1937). Pp. 171-172.)
2. "........the romantic writer in his moments of genius illuminates, with an effect that is magical."—(J. B. Priestley : Literature and Western man. P. 118.)
3. "The conscious mind can accept and refine, but cannot create those phrases and lines that seem pregnant with many meanings."—(J. B. Priestley : Literature and Westernman. P. 120.)
4. "कविता के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार नामक लेख : सत्यनारायण द्विवेदी । आजकल (दिसम्बर १९५८) पृ० ९ ।

सोचने लगते हैं अर्थात् चिंतन की प्रक्रिया में जब केवल मन ही नहीं, सम्पूर्ण अस्तित्व विलीन हो जाता है, उस समय हमारे भीतर एक विलक्षण-शक्ति जाग पड़ती है जो छलांग मार कर अदृश्य पट से आवरण को खींच लेती है, जो तर्कों की राह.से न चलकर अनायास समाधान के दर्शन करा देती है। यही शक्ति प्रेरणा है।"[1] दिनकर का यह विवेचन बौरा के मत के अधिक समीप प्रतीत होता है। स्वच्छन्दतावादी चिंतकों तथा अन्य विद्वानों के उपर्युक्त मतों को दृष्टि में रखा जाय तो यह प्रतीत होता है कि प्रेरणा एवं रचना-प्रक्रिया का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है और एक दूसरे से पूर्णतः पृथक् भी नहीं किये जा सकते। प्रेरणा के उद्गम से लेकर रचना के समाप्त होने तक की प्रक्रिया का विवरण क्रमशः इस प्रकार है—

१. काव्य-सृष्टि आकस्मिक, अनायास तथा अप्रत्याशित रूप में होती है।

२. रचना-प्रक्रिया कवि के नियंत्रण में नहीं रहती। वह कवि के मानस में अपने आप घटित होती है।

३. रचना-प्रक्रिया के क्षणों में कवि आनन्दातिरेक का अनुभव करता है। परन्तु रचना-प्रक्रिया कभी-कभी कवि के लिये दुखदायिनी भी होती है। कवि रचना-प्रक्रिया से दूर भी भागना चाहता है, परन्तु प्रेरणा के पास ऐसी चुम्बक-सी शक्ति है कि वह उसे कहीं भटकने नहीं देती।

४. इस प्रकार रचना-प्रक्रिया से संभूत काव्य कवि को नितान्त नवीन और अदभुत् लगता है। सृजित काव्य कवि के लिये किसी अन्य की सृष्टि-सा प्रतीत होता है।

संक्षेप में स्वच्छन्दतावाद की रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी मान्यतायें ये ही हैं।

शैली तथा अभिव्यक्ति : लक्ष्य और साधन :—

किसी भी काव्य-धारा के विवेचन में उसके शैली-तत्व एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि अपनी भावनाओं, कल्पनाओं, अनुभूतियों एवं विचारों को अभिव्यक्ति देता है। परन्तु इन सभी विषयों को प्रेषणीय बनाने के लिये उसके पास केवल भाषा का साधन है, जो स्वयं अनेक सार्थक शब्दों से निर्मित हुई है। अतः स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी भावाभिव्यंजना के लिये भाषा का विशिष्ट एवं कलात्मक प्रयोग करता है। अतः वह भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का सम्पूर्ण उपयोग करता है। भावनाओं को सुचारु रूप से अभिव्यक्त करने के लिये प्रत्येक काव्य-धारा के, उसमें भी प्रत्येक कवि के, अपनी पृथक शैली तथा अपने पृथक् अभिव्यंजना शिल्प होते हैं। इसी प्रकार

---

१. रामधारीसिंह दिनकर : काव्य की भूमिका। प्रथम संस्करण पृ० १२९।

स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिये भी अपनी विशिष्ट शैली तथा अभिव्यक्ति बनी हुई हैं। शैली के अंतर्गत काव्य-रूप तथा कला के सभी उपकरण अपने आप समविष्ट हो जाते हैं। भारतीय आचार्यों के अनुसार शब्द और अर्थ में चमत्कार या विशिष्टता उत्पन्न करने वाली रीति ही शैली का स्वरूप ग्रहण करती है। पाश्चात्य विद्वान प्रो० मिडिलटन मरी के अनुसार काव्य की उत्कृष्ट शैली के लिये तीन तत्वों का होना परमावश्यक है[1]—

१. सानुरूप एवं सुगठित भावाभिव्यक्ति।
२. प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत बिम्बों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति।
३. लय की संगीतात्मक अभिव्यक्ति।

मरी के अनुसार उपर्युक्त तीनों में सानुरूप तथा सुगठित भावाभिव्यक्ति ही शैली का प्रधान तत्व है। प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत बिम्बों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जाता है—(१) अलंकार विधान (२) चित्रण कला लय की संगीतात्मक अभिव्यक्ति को छन्द और लय तत्व नामक शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। इनके अतिरिक्त काव्य के रूप तथा भाषा तथा शब्द-चयन पर भी शैली तथा अभिव्यक्ति के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। काव्य के रूप तथा भाषा और शब्द समूह काव्य की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। अतः स्वच्छन्दतावादी कला-सौष्ठव का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

१. काव्य के रूप।
२. भाषा और शब्द-चयन।
३. शैली तथा प्रेषणीयता।
४. अलंकार-विधान।
५. चित्रण-कला।
६. छन्द और लय तत्व।

---

1. "I examined two qualities of style which are not infrequently put forward as essential, namely, the musical suggestion of the rhythm, and the visual suggestion of the imagery, and I tried to show that these were subordinate. On the positive side, I tried to show that essential quality of style was precision; that this precision was not intellectual, not a precision of definition but of emotional suggestion." (J. Middleton Murry : The Problem of style. P. 95.)

(क) **काव्य के रूप** :—स्वच्छन्दतावादी काव्य में नवीन काव्य-रूपों का प्रयोग हुआ है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रबन्ध-काव्य, प्रगीत-मुक्तक (Ode) मुक्तक-प्रबन्ध, गीति-काव्य, गीति-प्रबन्ध, गीति-नाट्य (Opera) प्रलम्ब मुक्तक आदि काव्य रूपों का प्रयोग मिलता है। इन काव्य रूपों में भी प्रगीत मुक्तक तथा गीति-काव्य का ही प्रचलन सर्वाधिक हुआ। वैयक्तिकता के आधिक्य के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि प्रगीत तथा गीतों में अपनी भावनाओं को स्वच्छन्द अभिव्यक्ति दिया करते थे। आशा-निराशा, आह्लाद-विषाद आदि अत्यन्त तीव्र मनोवेगों की अभिव्यक्ति के लिए प्रगीत मुक्तक तथा गीत अत्यन्त उपयुक्त होते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रगीत-मुक्तकों, गीतों तथा गीत-प्रबन्धों आदि काव्य-रूपों का प्राधान्य होते हुए भी कहीं-कहीं खण्ड-काव्य तथा महाकाव्य के भी दर्शन होते हैं। शैली का **"प्रोमीथियस् अन्बाउण्ड"** तथा प्रसाद की **"कामायनी"** स्वच्छन्दतावादी महाकाव्य है तो कीट्स के **"इसबेला"**, **"दिन ईव आफ सेइन्ट एंगिनस"** तथा निराला के **"तुलसीदास"** **"राम की शक्ति पूजा"** आदि स्वच्छन्दतावादी खण्ड काव्य हैं।

(ख) **भाषा और शब्द चयन** :-काव्य-भाषा के सम्बन्ध में स्वच्छन्दतावाद की कोई निश्चित धारणा नहीं है। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवि वर्ड्सवर्थ बोलचाल की भाषा को तथा कोलरिज परिनिष्ठित तथा विशिष्ट भाषा को काव्योपयोगी समझते हैं। विश्व की अधिकांश भाषाओं की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में भाषा के उपर्युक्त दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवि शब्दों को चुन-चुनकर काव्य में उनका प्रयोग करता है। वह हर एक शब्द का सार्थक प्रयोग करता है। वह शब्द-शिल्पी होता है। भाषा की प्रकृति से उसका पूर्ण ज्ञान होता है। उसे शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान रहता है।

(ग) **शैली तथा प्रेषणीयता** :—स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। अपनी भावनाओं को एक विशिष्ट भाषा शैली के द्वारा, प्रेषणीय बनाता है। स्वच्छन्दतावादी कवि अपने हृदय की रागात्मिकता को भावात्मक शैली में अभिव्यक्त करता है। वह अपने मनोनुकूल शब्द-चयन, अलंकार, छन्द एव चित्रण को अपना कर, उन्हें अपनी काव्य-शैली का अंग बना देता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य-शैली की निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं—

१. काव्य-शैली कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हैं।

२. कवि अपनी अनुभूतियों, भावनाओं तथा कल्पनाओं को मूर्त रूप में काव्य-शैली के माध्यम से प्रकट करता है।

३. व्यक्तित्व की भिन्नता के कारण प्रत्येक कवि की काव्य-शैली भिन्न होती है।

४. कवि भावात्मक काव्य-शैली अपनाता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में भावोद्रेक के आधिक्य के कारण काव्य-शैली में क्षिप्रगति का होना सहज ही है।

५. काव्य-शैली में संगीतात्मकता अधिक रहती है।

संक्षेप में ये ही स्वच्छन्दतावादी काव्य-शैली की विशेपतायें हैं।

(घ) अलंकार विधानः—भाषा के अभिव्यक्ति-कौशल को बढ़ाने के लिए अलंकारों का प्रयोग होता है। अलंकार अपने आप में साध्य न होकर भावाभिव्यंजना के साधन मात्र हैं। काव्य में अलंकारों का प्रयोग गुण और प्रभाव के साम्य के कारण अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त मानव-सभ्यता के विकास के साथ भाषा भी अधिक संश्लिष्ट तथा अलंकृत होती जाती है। जिस प्रकार वस्त्र आदि सभ्य-मानव के व्यक्तित्व के अंग बन गए हैं, उसी प्रकार अलंकार बाह्य होते हुए भी भाषा के अंग के रूप में स्वीकृत हुये हैं। किन्तु आलंकारियों के अलंकारों को सामान्य व्यवहृत भाषा से लोकोत्तर तथा विचित्र उक्ति मान लिया और उन्होंने अलंकारों को स्वाभाविक नहीं, अपितु कृत्रिम माना है। इस तरह इन आचार्यों की धारणा के अनुरूप परम्परावादी काव्य में अस्वाभाविक तथा अनावश्यक अलंकारों से भाषा एवं भाव का सहज सौन्दर्य ढँक गया। ऐसे काव्य में अलंकार ही प्रधान तथा अलंकार्य गौण हो गए। अलंकार परम्परावादी काव्य के साधन न होकर स्वयं साध्य बन गए।

स्वच्छन्दतावाद ने अलंकारों को अपने में साध्य न मानकर, केवल भावाभिव्यक्ति के माध्यम या साधन के रूप में स्वीकार किया।[1] स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी अलंकारों का बहुत अधिक प्रयोग किया। किन्तु उनके अलंकार भाव-प्रेषणीयता में सहायता पहुँचाने वाले हैं, बाधा उपस्थित करने वाले नहीं। स्वच्छन्दतावादी कवि अलंकारों के नवीन प्रयोग में विश्वास करता है। वह अलंकारों के सार्थक तथा औचित्यपूर्ण प्रयोग में विश्वास रखता है। इसी कारण सामंतकालीन काव्य की स्थूल अलंकार-प्रियता तथा पिटे-पिटाए अप्रस्तुतों की अशोभन आवृत्ति के प्रति स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपना विरोध प्रकट शिया।[2] अलंकारों के मुख्यतः दो भेद माने गए

---

१. "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं. ये वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं।

—सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का "प्रवेश"। पल्लव–पृष्ठ २८।

२. "और इनकी भाषालंकारिता ? जिन की रंगीन डोरियों में वह कविता का हैंगिग गार्डन—वह विश्व-वैचित्र्य झूलता है, जिस के हृद्पट पर वह चित्रित है....इन साहित्य के मालियों में से जिसकी विलास-वाटिका में भी आप प्रवेश करें, सब में अधिकतर वही कदली के स्तम्भ, कमलनाल, दाडिम के बीज, शुक,

हैं—१. शब्दालंकार और २. अर्थालंकार। यद्यपि शब्दालंकारों का प्रयोग स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जान बूझ कर अपने आप नहीं किया है, तथापि उनके काव्य में उनका सर्वथा अभाव नहीं। शब्दालंकार अपने आप भाषा के आकार में समा गये हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सादृश्यमूलक तथा विरोधमूलक अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। सादृश्यमूलक अलकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, तुल्ययोगिता तथा दृष्टान्त आदि का प्रयोग अधिक हुआ है। विरोधमूलक अलंकारों में विरोधाभास की ओर स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति अधिक है। इनके अतिरिक्त विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यात्मकता तथा मानवीकरण आदि अलंकार भी अपनाए गए। इस काव्य में कहीं-कहीं सन्देह, अन्योक्ति, सहोक्ति, यथासंख्य, तद्गुण, स्मरण आदि अलंकारों की छटा भी देखने को मिलती है।

(ङ) चित्रण-कला:—स्वच्छन्दतावादी काव्य में चित्रण-कला को अत्यन्त प्रमुखता दी गयी है। काव्य में चित्र-कला एवं संगीत-कला का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि चित्रकार रंग और तूलिका से चित्र का निर्माण करता है तो कवि चित्र को शब्दों के द्वारा ग्राह्य बनाता है। काव्य में अंकित चित्र चक्षेन्द्रिय से अधिक सम्बद्ध नहीं होते। काव्य में अंकित चित्रों का प्रत्यक्षीकरण मनोचक्षु के समक्ष होता है। केवल चित्र की रेखाओं का नहीं अपितु उसके रूप-रस-गंध-स्पर्श का भी प्रत्यक्षीकरण काव्य में होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में ऐसे काव्य-चित्रों की संख्या अपार है। इन काव्य-चित्रों को "बिम्ब" कहते हैं। ये बिम्ब अधिकतर प्रकृति तथा मानव-जीवन के चित्रों के काव्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि इन बिम्बों का, अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा, निर्माण करता है जिस में अनन्त सौन्दर्य का वैभव संचित रहता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य का सम्पूर्ण वैभव अधिकांश इस बिम्ब-विधान या चित्रण-कला पर ही आश्रित है।

(च) छन्द और लय तत्व: स्वच्छन्दतावाद ने प्राचीन परम्परावादी काव्य के छन्द-विधान तथा उन छन्दों की लय के प्रति विद्रोह किया। स्वच्छन्दतावादी

पिक, खंजन, शंख, सर्प, सिंह, मृग, चन्द्र, चार आँखें होना, कटाक्ष करना, आह छोड़ना, रोमांचित होना, दूत भेजना, कराहना, मूर्छित होना, अभिसार करना—बस इसके सिवा और कुछ नहीं।

"भाव और भाषा का ऐसा शुक प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एक स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रान्त उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में, मिल सकती है?"

—सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का "प्रवेश" पल्लव (चतुर्थ संस्करण) पृ० ९-१०

काव्य की भावनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्राचीन छन्द सर्वथा अनुपयुक्त थे। भाव के बदलने के कारण शैली का भी बदलना आवश्यक था। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अनेक लयात्मक छन्दों का प्रयोग किया। इन छन्दों का संगीत तथा उनकी लय भाषा की प्रकृति पर अधिक निर्भर करता है।[1] स्वच्छन्दतावाद में प्रगीतों तथा गीतों का आधिक्य है, जिनमें संगीतात्मकता एवं लयात्मकता को प्राधान्य दिया जाता हैं।

इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी काव्य का अपना पृथक् स्वरूप तथा सुगठित अस्तित्व है। जीवन और कला, भाव और विचार आदि क्षेत्रों में उसकी सुनिश्चित विचारधारा भी है। विश्व के किसी भी भाषा की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा में उपर्युक्त सभी विशेषतायें कम या अधिक मात्रा में अवश्य उपलब्ध होती हैं।

(छ) **निष्कर्ष** :— स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप तथा साहित्यिक मान्यताओं के विवेचन के पश्चात् उस काव्य-धारा के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—

स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक विशिष्ट स्वरूप है, जो अन्य काव्यों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। वह वैयक्तिक या व्यक्तिपरक काव्य है, जिसमें कवि के व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति मिलती है। स्वच्छन्दतावाद की अपनी स्वतंत्र साहित्यिक मान्यतायें हैं और ये मान्यतायें परम्परावादी काव्य-मान्यताओं के विरोध में प्रकट हुई हैं। स्वच्छन्दतावाद भावना, अनुभूति, एवं कल्पना को अधिक प्राधान्य देता है और काव्य में काव्यात्मकता को अधिक महत्व प्रदान करता है। जगत और जीवन तथा कला एवं अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में उसकी निर्दिष्ट मान्यतायें हैं, जिनका विवेचन इस अध्याय में किया गया है। संक्षेप में इतना तो कहा जा सकता है कि विश्व के किसी भी काव्य-साहित्य में भी स्वच्छन्दतावाद का उपर्युक्त स्वरूप का दर्शन होता है। भाषा एवं प्रान्त की भिन्नता के होते हुये भी सभी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के प्राणभूत तत्व एक समान ही हैं।

१. "भौगोलिक स्थिति, शीत, ताप, जलवायु, सभ्यता आदि के भेद के कारण संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं के उच्चारण-संगीत में भी विभिन्नता आ जाती है। छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है।"— सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का "प्रवेश" पल्लव। पृ०—१७।

चतुर्थ अध्याय

स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का विकास-क्रम

किसी भी साहित्यिक आन्दोलन के विकास-क्रम का अध्ययन इसी कारण अपेक्षित होता है कि उसके द्वारा आन्दोलन की गतिविधि, उसके प्रवर्त्तकों तथा निर्माताओं का परिचय प्राप्त हो। कोई भी साहित्यिक आन्दोलन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में जन्म लेकर उस समय की साहित्यिक चेतना को समग्र रूप से अभिव्यक्त करता है। समय-समय पर उसे प्रतिभावान कवियों, विचारकों, चिंतकों तथा कलाकारों का सहयोग प्राप्त होता है। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के विकास-क्रम पर दृष्टिपात करना परमावश्यक है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय को तीन भागों में विभाजित किया जाता है :

१. यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि।
२. हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद का विकास-क्रम।
३. तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद का विकास-क्रम।
४. हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों के विकास-क्रम की तुलना।

यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि :—

अठारहवीं शताब्दी के अंत तक रूसो-वालटेयर की रचनाओं में सम्पूर्ण यूरोप प्रभावित हो चुका था। सन् १७८९ में फ्रांस की राज्य क्रान्ति के संगठन में इन विचारकों का अत्याधिक योगदान रहा। इस क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप पर पड़ना स्वाभाविक था। यूरोप में प्राचीन रूढ़ियों को अस्वीकार किया गया। वैज्ञानिक आविष्कारों के फलवस्रूप व्यावसायिक क्षेत्र में क्रान्ति जागृत हो उठी। जनता ग्रामों को त्यागकर नगरों में बसने लगी। नागरिक जीवन ने प्राचीन सदाचार के नियमों को शिथिल कर दिया। ऐडम स्मिथ तथा गाडविन की व्यक्तिवादी विचार-धारा का भी प्रभाव जन-मानस पर पड़ा। एक प्रकार से उन्नीसवीं शती के आरम्भ तक यूरोप की आर्थिक स्थिति बहुत कुछ सुधर चुकी थी। खण्ड-खण्डान्तरों में यूरोप के प्रधान देशों के साम्राज्य फैल चुके थे और पराधीन एशिया तथा अफ्रीका के देशों से उन्हें अपार सम्पत्ति अनायास मिल जाती थी। इन अनायास प्राप्त होने वाली धनराशियों

से यूरोप के प्रधान राज्य अपने देशों के आर्थिक निर्माण में निमग्न थे। यह बिलकुल ऊपरी सतह की बात है, किन्तु उस देश के (यूरोप के) विचारशील लोगों में एक प्रकार की मानसिक अशान्ति अत्यन्त स्पष्ट होकर प्रकट हुई थी। संतुलन नष्ट हो रहा था, संवेदनशील चित्त बाहरी समृद्धि और भीतरी औचित्य बोध के संघर्ष से अस्थिर हो उठा था और भीतर बाहर के इस संघर्ष ने सुकुमार कलाओं के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करना शुरू किया था। कवि-चित्त जब बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता तब छन्दों की भाषा अत्यन्त प्रभावशाली होकर प्रकट होती है, आंतरिक सौन्दर्यानुभूति और बाह्य असुन्दर-सी लगने वाली परिस्थिति की टकराहट से जो विक्षोभ पैदा होता है। वह सब देशों में काव्य की भाषा को मुखर बना देता है, उसमें सम्मूर्तन का रूप और आवेग का पंख लगा देता है।[1] इस प्रकार कवि तथा कलाकारों ने यूरोप में एक नवीन साहित्यिक आन्दोलन का श्रीगणेश किया, जो बाद में स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित होने लगा।

यूरोप के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रभाव क्रमशः हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनों पर पड़ा।

२. हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद का विकास-क्रम :

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के विकास-क्रम को तीन भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जाता है—

(१) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का प्रथम उत्थान (सन् १८७५-१९१३)।

(२) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का द्वितीय उत्थान (सन् १९१४-१९३५)।

(३) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का ह्रासोन्मुख काल (सन् १९३६-१९४२)।

समय को दृष्टि में रखते हुए स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा पर विचार किया जाय—

(क) हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का प्रथम उत्थान (सन् १८७५-१९३५) :—हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का संकेत भारतेन्दु-युग से ही देखने को मिलता है। इस युग में हिन्दी-कविता मध्य-युगीन पौराणिक वातावरण से नवीनता की ओर अग्रसर होने का प्रयास कर रही थी। यद्यपि भारतेन्दु के निधन के पश्चात् खड़ी बोली ने शनैः शनैः काव्य के क्षेत्र में प्रवेश

---

१. "रोमांटिक साहित्य शास्त्र" की "भूमिका" से : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ ५।

करना आरम्भ किया। भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी-युग के संधिकाल में एक उच्चकोटि के कवि पं० श्रीधर पाठक का प्रादुर्भाव हुआ। पाठकजी के कृतित्व के साथ हिन्दी की काव्य-भाषा में एक भारी परिवर्तन आया। उन्होंने व्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली में ही अधिकतर काव्य रचनायें प्रस्तुत कीं। सन् १८८६ में उनके 'एकान्तवासी योगी" का प्रकाशन हुआ। वह अंग्रेजी काव्य "हेर्मिट" (Hermit) का खड़ी बोली में स्वच्छन्द अनुवाद है। इसके पश्चात् सन् १६०२ में इनकी दूसरी काव्य-कृति "श्रान्त पथिक" का प्रकाशन हुआ, जो गोल्डस्मिथ के "ट्रेवेलर" (Traveller) का खड़ी बोली में अनुवाद है। तदुपरान्त इनकी "कश्मीर-सुषमा" (सन् १६०४) तथा "देहरादून" सन् १६१५) के साथ उनके कुछ काव्य-संग्रह भी निकले। वास्तव में पाठक जी के समक्ष भाषा तथा विषयवस्तु--दोनों की समस्या थी। एक सर्वसाधारण विषयवस्तु को ग्रहण कर उसे भावुकता के संस्पर्श के साथ खड़ी बोली में अंकन करने का सर्व-प्रथम श्रेय पाठक जी को ही है। एक ओर जहाँ पाठक जी ने पाश्चात्य कथा-काव्यों के भारतीय संस्करण प्रस्तुत किये थे, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने हिन्दी के काव्य-जगत में नवीन भावनाओं तथा काल्पनिक बिम्बों को सुन्दर अभिव्यंजना दी। पाठक जी का सम्पूर्ण, काव्य-साहित्य स्वच्छन्दतावादी विचार-धारा एवं भावनाओं से ओतप्रोत है। निस्सन्देह उन्हें हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद का प्रथम कवि कहा जा सकता है। स्वच्छन्द प्रेम-भावना, स्वातन्त्र्य के प्रति अनुराग, पर्यटक भावना की ललक, प्रकृति के प्रति अपार मोह, काव्य-शिल्प का नवीन प्रयोग आदि स्वच्छन्दतावादी विशेषताओं का उन्होंने अपने काव्य में समावेश किया। पाठक जी की प्रतिभा का उत्कर्ष उनकी मुक्तक कविताओं की अपेक्षा, खण्ड-काव्यों में ही अधिक देखने को मिलता है। पाठक जी के काव्य की उक्त विशेषताओं को दृष्टि में रखकर ही शुक्ल जी ने उन्हें "सच्चे स्वच्छन्दतावाद" का प्रवर्तक मान लिया।[1] हरिश्चन्द्र-युग के कवियों में काव्य-धारा को नवीनता की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई देने पर भी उनमें भावना, अनुभूति, विचार-धारा तथा अभिव्यंजना आदि में स्वच्छन्दता का दर्शन नहीं हुआ। किन्तु पाठक जी में इसका पूर्ण आभास पाया जाता है। समय की दृष्टि से उन्हें भाषा-क्षेत्र में भी आशातीत सफलता मिली। उन्होंने भाषा के प्रयोग तथा शब्दों के चुनाव में प्रौढ़ कलात्मकता दिखाई। "अंगरेजी और संस्कृत दोनों के काव्य-साहित्य का अच्छा परिचय रखने के कारण हिन्दी कवियों में पाठकजी की रुचि बहुत ही परिष्कृत थी। शब्द शोधन में तो पाठक जी अद्वितीय थे। जैसी चलती और रसीली इनकी व्रजभाषा होती थी, वैसा ही कोमल और मधुर, संस्कृत पद-विन्यास भी। वास्तव में एक बड़े प्रतिभाशाली, भावुक और सुरुचिसम्पन्न कवि थे। भद्दापन इन में न था--न रूप रंग में, न भाषा में, न भाव में, न चाल में। पं०

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल नवां संस्करण पृ० ६०४।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल। नवां संस्करण। पृ० ६०।

पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी जी के शब्दों में "पाठक जी एक कोमल आधुनिकता के कवि थे। उनके द्वारा मानों अविकच खड़ी बोली ही ब्रजभाषा की सुकुमार आधुनिकता बन गयी। काव्य में भारतेन्दु-युग ब्रजभाषा का अंत है, द्विवेदी युग खड़ी बोली का उदय है; इसी अस्तोदय की द्वाभा पाठकजी की कविता है।"[1] इस प्रकार बंगला के स्वच्छन्दता-वाद के विकास में जो स्थान बिहारीलाल जी को है, ठीक वही स्थान हिन्दी-स्वच्छन्द-तावाद के विकास में पाठकजी को है। इन दोनों कवियों के अभाव में शायद रवीन्द्र एवं प्रसाद का विकास इतना शीघ्र तथा इतना सार्वभौमिक रूप से नहीं हुआ होता।

पाठकजी के कृतित्व के काल से ही खड़ी बोली का आन्दोलन तीव्र रुप से चलने लगा था। सन् १८८८ में ही बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने "खड़ी बोली आन्दोलन" नामक ग्रंथ का प्रकाशन कराया जिसमें खड़ी बोली का पूर्ण समर्थन किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के समय तक यह आन्दोलन अपना समय संघटित करने में लगा हुआ था। द्विवेदी जी "सरस्वती" का संपादकत्व ग्रहण कर भाषा-परिमार्जन में लग गये। "गद्य और पद्य का पद-विन्यास एक ही होना चाहिए" इस सिद्धान्त को उनसे अधिक शक्ति मिली। वास्तव में द्विवेदी-युग में हिन्दी काव्य-क्षेत्र का काया कल्प ही हो गया। इस युग में स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की प्रगति में योगदान देने वाले और एक मुख्य कवि श्री रामनरेश त्रिपाठी जी हैं। श्रीधर पाठक के स्वच्छन्दतावादी मार्ग का अनुसरण करने में इन्हें सफलता मिली। "मिलन", "पथिक" और "स्वप्न" नामक इनके तीन खण्ड-काव्यों में सरस कल्पना एवं भावुकता का उचित समावेश हुआ है। इन्होंने न केवल भाव एवं भाषा में ही स्वच्छन्दता दिखायी, अपितु कथा वस्तुओं को भी इतिहास एवं पुराणों से न लेकर, उनकी नवीन उद्भावना की।

द्विवेदी-युग में ही कविवर मैथिलीशरण गुप्त का प्रादुर्भाव हुआ। काव्य-क्षेत्र में इनके प्रविष्ट होने के पहले ही हिन्दी काव्य-जगत में पाठक जी को एक सम्मानित स्थान प्राप्त हो चुका था। सन् १८९९ में ही द्विवेदीजी से 'सरस्वती' में 'श्रीधर सप्तक' लिखकर पाठक जी का काव्याभिनन्दन किया।[2] गुप्तजी द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने खड़ीबोली को काव्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उनकी 'यशोधरा' तथा 'साकेत' के कुछ सर्गों में भाव-व्यंजना गीतों के माध्यम से हुई है। इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य होते हुए भी गुप्तजी के काव्यों में स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। उनके 'नक्षत्रनिपात' (सन् १९१४) 'अनुरोध' (सन् १९१५) 'पुष्पांजलि' (सन् १९१७), 'स्वयं आगत' (सन् १९१८) इत्यादि

१. युग और साहित्य : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। द्वितीय संस्करण। पृ० १६९।
२. युग और साहित्य : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। दूसरा संस्करण। पृ० १६७।

प्रगीतों में स्वच्छन्दतावादी स्वर अत्यन्त प्रधान हैं। उनके भावात्मक तथा रहस्यात्मक गीत 'झंकार' (सन् १९१४-१५) में संगृहीत हैं। इस तरह गुप्तजी द्विवेदी-युगीन इतिवृत्तात्मकता से स्वच्छन्द प्रगीत मुक्तकों तथा अभिव्यंजना की लाक्षणिकता की ओर अग्रसर होते हुए दिखाई पड़ते हैं। पाठकजी की भाँति गुप्तजी के समक्ष भी भाषा का प्रश्न था। एक ओर उनको अपने भाव-जगत का निर्माण करना पड़ता था तो दूसरी ओर भाषा का भी। सन् १९०८ से खड़ी बोली की रचना प्रारंभ कर सन् १९१५ तक उन्होंने उस भाषा में सुन्दर काव्य-साहित्य का निर्माण किया।

इसी अवसर पर हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रथम उत्थान में पं० बदरीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, ठाकुर गुरुभक्त सिंह आदि कवियों ने विशेष योगदान दिया है। पं० बदरीनाथ भट्ट ने सन् १९१३ के पूर्व भावात्मक गीतों की रचना की। श्री मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति अपार स्नेह, प्रकृति के रहस्यमय संकेतों का ग्रहण तथा भाषा की चित्रात्मकता का दर्शन होता है। इन विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मैथिलीशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय को स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक मान लिया।[1] शुक्लजी ने श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों में लक्षित होने वाली काव्य-धारा का **'सच्चा स्वच्छन्दतावाद'** तथा मैथिलीशरण एवं मुकुटधर पाण्डेय आदि कवियों की कतिपय कविताओं में स्पष्ट होने वाली काव्य-धारा को **'स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद'** की संज्ञाएँ दीं। शुक्लजी के अनुसार उपर्युक्त काव्य-धाराओं का विकास बहुत कुछ स्वतन्त्र एवं स्वाभाविक रूप से हुआ था। उन पर बाह्य प्रभाव अपेक्षाकृत कम था। इनमें अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की अपेक्षा बहिर्मुखी प्रवृत्ति ही अधिक थी। ये कवि स्वच्छन्द रूप से अपनी भावनाओं को नवीन भाषा (खड़ी बोली) में अभिव्यक्ति दिया करते थे। विकास की दृष्टि से यहाँ तक की स्वच्छन्दतावदी काव्य-वृत्ति को सैद्धान्तिक स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस समय में ध्यान रखने का विषय यह है कि पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने संस्कृत काव्य-संस्कारों के साथ हिन्दी काव्य-क्षेत्र की गतिविधि को अत्यन्त सतर्कता के साथ संभाल रहे थे। एक प्रकार से इनके गम्भीर व्यक्तित्व ने सच्चे तथा स्वाभाविक (सैद्धान्तिक) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को रोक लगा दी। इनके संरक्षण में इतिवृत्तात्मक एवं सांस्कृतिक प्रवन्ध काव्य का विकास हुआ। ऐसे ही नीरस तथा विषय-वस्तु-प्रधान काव्य के विरुद्ध हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान (छायावाद) का जन्म हुआ। इस स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के द्वितीय उत्थान (छायावाद) में स्वच्छन्दतावाद की

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल। नवाँ संस्करण। पृ० ६५०।

सभी विशेषताओं का सुन्दर समावेश हुआ। किन्तु यह काव्य-धारा अन्तर्मुखी होती चली गयी, जिसका सर्वाधिक उत्तरदायित्व महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा समय की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर है। छायावाद के नाम से अभिहित होने वाली हिन्दी की यह स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा भारत के सांस्कृतिक एवं देश परक आधार-फलक पर अंकित हो गयी है। वास्तव में शुक्ल जी से नामांकित "**सच्चा स्वच्छन्दतावाद**" तथा "**स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद**" विभिन्न काव्य-धारायें न होकर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के विकास-क्रम की सीढ़ियाँ मात्र हैं। अत: हम समझते हैं कि शुक्ल जी के अनुसार जो "**सच्चा स्वच्छन्दतावाद**" तथा "**स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद**" का समय है, वह केवल हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रथम उत्थान का काल रहा है, जिसकी नींव पर हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान (छायावाद) का विशाल भवन निर्मित हुआ है। अत: यह कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि भारतेन्दु-युग से द्विवेदी-युग तक हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा ही श्रीधर पाठक जी के "**सच्चे स्वच्छन्दतावाद**" तथा गुप्त जी और मुकुटधर पाण्डेय जी के '**स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद**' के विभिन्न नामों से अपने आरम्भिक स्वरूप को संघटित कर रही थी, जो बाद में भारतीय सांस्कृतिक चित्र-फलक पर छायावाद के नाम से पूर्णत: प्रकट हुई। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के विकास में जो स्थान स्कॉट, विलियम ब्लेक, वर्ड्सवर्थ तथा कोलरिज का है, वही स्थान हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के विकास में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों का रहा है।

(ख) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का द्वितीय उत्थान (छायावाद युग)—सन् १९१४-१९३५ :—स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को शक्ति प्रदान करने वाले चार महान स्तंभ हैं – जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्दन पंत तथा महादेवी वर्मा। गुप्तजी तथा अन्य कवियों की कविताओं द्वारा खड़ी बोली के प्रचार होने के पश्चात् जयशंकर प्रसाद ब्रजभाषा से खड़ी बोली के काव्य-प्रांगण में पदार्पण करते हुये दिखाई देते हैं। सन् १९१३ के पहले वे ब्रजभाषा में कवितायें लिखा करते थे; परन्तु बाद में "इन्दु" पत्रिका में उनके स्वच्छन्दतावादी मुक्तकों का प्रकाशन होने लगा। "**कानन कुसुम**" खड़ीबोली में उनकी प्रथम पुस्तक है जिसमें १९०९-१७ तक की उनकी रचनायें संगृहीत हैं। इससे यह विषय भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में गुप्त जी के पश्चात् अधिक विलम्ब से नहीं आये। सन् १९२० तक उनके "**प्रेम-पथिक**", "महाराणा का महत्व" तथा "**करुणालय**" आदि खण्ड-काव्यों का प्रकाशन हुआ। इन रचनाओं में अतुकान्त कविता को एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ। मैथिलीशरण गुप्त तथा प्रसाद जी के काव्य का विकास ब्रजभाषा से खड़ी बोली की

ओर ही है। गुप्तजी की काव्य-प्रतिभा द्विवेदी जी के पर्यवेक्षण में अपना विकास कर रही थी तो प्रसाद जी पाठक जी के पथ पर एकान्त साधना में लगे हुये थे। गुप्त जी की प्रतिभा प्रबन्ध काव्यों में अपना उत्कर्ष दिखाने लगी तो प्रसाद जी की प्रतिभा भावात्मक मुक्तकों में। इतना होते हुये भी गुप्त जी ने **"साकेत"**, **"यशोधरा"** आदि प्रबन्ध-काव्यों में भावात्मक मुक्तकों तथा गीतों का समावेश किया है तो प्रसाद जी ने अपनी आरंभिक काव्य कृतियों तथा **"कामायनी"** में भावात्मक मुक्तकों तथा गीतों को प्रबन्धात्मकता के क्षीण सूत्रों से बाँधने की चेष्टा की।

प्रसाद जी के साथ इस नवीन काव्य-क्षेत्र में उतरने वाले और दो कवि हैं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तथा सुमित्रानन्दन पंत। प्रसाद जी इन दोनों कवियों के पहले ही नवीन काव्य धारा (स्वच्छन्दतावाद) में आ चुके थे। केवल **"अंतर यह है कि प्रसाद का कण्ठ खड़ी बोली में खुल चुका था, ये अपना कण्ठ खोल रहे थे। इसके बाद जिन प्रेरणा-केन्द्रों (बंगला और अंग्रेजी) से द्विवेदी युग में नवीन भावात्मक मुक्तक का दर्शन हुआ, उन्हीं प्रेरणा-केन्द्रों से पंत और निराला ने भी अपने भावी विकास का श्रीगणेश किया।**[1] आचार्य शुक्ल ने भी छायावादी काव्य-धारा को पाश्चात्य प्रभाव तथा रवीन्द्र के आध्यात्मिक रहस्यवाद के प्रभाव का परिणाम मान लिया। उनका कथन है कि बाहरी प्रभावों के आधिक्य के कारण यह काव्य-धारा अपने स्वतंत्र मार्ग की उद्भावना सूचित नहीं करती।[2] हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का परिणाम था या स्वाभाविक विकास— इसका निर्णय देना सरल कार्य नहीं है। फिर भी शुक्ल जी की धारणा सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है। वास्तव में रवीन्द्र का प्रभाव उनकी **'गीतांजलि"** को सन् १९१३ में नोबुल पुरस्कार प्राप्त होने के पश्चात् ही अन्य कवियों पर पड़ने लगा था। किन्तु इस समय तक प्रसाद ने कुछ स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचना की तथा माखनलाल जी की आरम्भिक कवितायें भी प्रकाश में आगयीं। इन दोनों कवियों पर रवीन्द्रनाथ का कोई प्रभाव नहीं है। महाकवि एवं विचारक दिनकर जी के शब्दों में **"यह स्थापना ठीक नहीं दीखती कि हिन्दी का छायावादी आन्दोलन रवीन्द्र की प्रेरणा से आया था। किन्तु छायावाद के अन्य दो अग्रणी कवियों, निराला और पंत, पर रवीन्द्रनाथ के प्रभाव स्पष्ट मिलते हैं, यद्यपि, महादेवी वर्मा फिर इस प्रभाव के क्षेत्र से बाहर चली जाती हैं। मिला-जुलाकर यह कहना अधिक युक्तियुक्त लगता है कि नये आन्दोलन की तैयारी हिन्दी-कविता के भीतर अपने आप होती आ रही थी तथा प्रसाद जी और माखनलाल जी की**

---

१. युग और साहित्य : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वितीय संस्करण। पृ० १८५।
२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल। नवाँ संस्करण। पृ० ६५०—५१।

रचनाओं तक वह हिन्दी की पूर्वगत धारा के समीप थी। हाँ, जब निराला और पंत आये, उनके साथ कुछ रवीन्द्रिक प्रभाव भी हिन्दी-कविता में सम्मिलित हो गया।।'[1]

निराला और पंत का रचना काल सन् १९१५-१७ से आरम्भ होता है। निराला जी की आरम्भिक रचनायें सन् १९१६ से ही प्रकाशित होती थीं और "मतवाला" में इनकी कवितायें नियमित रूप से छपती थीं। पंतजी की "वीणा", "ग्रन्थि" आदि रचनायें सन् १९२० तक प्रकाशित हो चुकी थीं और सन् १९२१ में "उच्छ्वास" तथा "आँसू" भी प्रकाश में आयीं। परन्तु प्रसादजी के आरम्भिक गीत "झरना" में संगृहीत हैं, जिसका प्रकाशन सन् १९१८ में हुआ। इस काव्य-संग्रह में कवि ने आत्मदान एवं आत्म-प्रकाशन की अभिलाषा व्यक्त की है। कवि की भाव-विह्वलता तथा आद्रता इसमें स्पष्ट झलकती है। निराला और पंत स्वतन्त्र रूप से द्विवेदी-युगीन काव्य-साहित्य के साथ अंग्रेजी तथा बंगाली कविता से प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण कर भविष्य की ओर अग्रसर होते हुये दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद जी ने युग और काव्य के सम्बन्ध को अच्छी तरह पहचाना था। समय की बदलती हुई जनता की मनोवृत्ति एवं अभिरुचि को दृष्टि में रखकर उन्होंने लिखा था—"सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कवितायें नहीं मिलतीं और पुरानी कविता को पढ़ना तो महादोष-सा प्रतीत होता है, क्योंकि उस ढंग की कवितायें तो बहुतायत से हो गयी हैं।"[2] पंत जी के "पल्लव" का प्रकाशन सन् १९२६ में बड़े धूमधाम से हुआ "पल्लव" की प्रसिद्ध भूमिका में पंतजी ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य के बहिरंग-पक्ष का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करते हुये सम्पूर्ण हिन्दी-काव्य-साहित्य का संक्षिप्त पर्यालोचन किया। इस भूमिका द्वारा उन्होंने खड़ी बोली का पूर्ण समर्थन करते हुये कई वर्षों से गतिमान व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के द्वंद्व को समाप्त कर दिया। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की रुपरेखा के संघटन में वर्ड्सवर्थ की "लिरिकल बेलेड्स" की भूमिका, कोलरिज की "लिटरेरिया बयाग्राफ़िया", शैली की "दि डिफेन्स आफ पोइट्री" ने मिलकर जो कार्य किया, वही "पल्लव" की भूमिका ने हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के समर्थन में किया। पंतजी भाव तथा भाषा के क्षेत्र में नवीनता एवं स्फूर्ति के संचार करने के निमित्त लिखते हैं कि नयी भावात्मक (स्वच्छन्दतावादी) कविता में "नये हाथों का प्रयत्न, जीवित साँसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं से अंकुर, वर्तमान के पद चिह्न, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा अथवा नवीन-युग की नवीन सृष्टि का समावेश है।

---

१. काव्य की भूमिका : रामधारीसिंह "दिनकर"। प्रथम संस्करण पृ० ३०-३१

२. मासिक "इन्दु" सन् १९१० : "कवि और कविता" नामक लेख से जयशंकर प्रसाद।

उसमें नये कटाक्ष, नये रोमांच, नये स्वप्न, नया हास, नया रुदन, नया हृत्कम्पन, नवीन वसन्त, नवीन कोकिलाओं का गान है।" पंतजी युग की जागृत चेतना के प्रति चिर सजग रहे हैं। उनके अनुसार भावों के साथ भाषा की अभिव्यंजना-प्रणाली भी बदलनी चाहिये। उनका मन्तव्य है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य में 'नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं, आशाओं के अनुसार उस की वीणा से नये गीत, नये छन्द, नये राग, नयी रागिनियाँ, नयी कल्पनायें तथा भावनायें फूटने लगती हैं।'[1] "पल्लव" के प्रकाशन के साथ पंतजी को काव्य-क्षेत्र में प्रसाद एवं निराला के पहले ही एक सम्मानित स्थान प्राप्त हो चुका था। "वीणा" में पंतजी की बाल-भावुकता, हृदय की स्निग्धता एवं कोमलता गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। "ग्रन्थि" एक खण्ड काव्य है, जिसमें कवि ने अपने व्यथा-भरित जीवन की विफल प्रेम-कथा का अत्यन्त मनोहर चित्रण किया है। "पल्लव" में उन्होंने दृश्य-जगत के विविध सुन्दर रूपों का मूर्त एवं मांसल चित्रण प्रस्तुत किया है। "आँसू", "उच्छ्वास", "विश्व-वेणु", "मौन-निमंत्रण", "छाया", "बादल", "नक्षत्र", "वीचि-विलास" आदि सौन्दर्यमयी कल्पना-प्रसूत कविताओं ने "पल्लव" में स्थान प्राप्त किया है। 'पल्लव' की 'परिवर्तन' कवि की प्रौढ़तम रचना है। इसमें कवि की कल्पना ने जीवन और जगत के नश्वर और अनश्वर तत्वों का सांगोपांग विवेचन किया है। इसमें कवि ने जीवन के सुख एवं दुख का अत्यन्त उदात्त दार्शनिक धरातल पर विवेचन किया है। सन् १९१७ में प्रसादजी की 'झरना' का दूसरा संस्करण ३१ नयी कविताओं के साथ प्रकाशित हुआ और निराला जी की स्फुट कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर छपने लगी थीं। अतः सन् १९२७ तक हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का द्वितीय उत्थान (छायावाद) भी अपने पूर्ण उन्मेष को प्राप्त कर रहा था।

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान (छायावाद) से प्रवर्तक के निर्णय में विद्वानों में मतभेद है। इलाचन्द्र जोशी तथा विश्वनाथ शुक्ल के अनुसार हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान (छायावाद) का आरम्भ सन् १९१३-१४ में होता है और इसके जनक हैं जयशंकर प्रसाद। इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं, "प्रसाद जी अवि-वादास्पद रुप से हिन्दी के सर्वप्रथम छायावादी कवि ठहरते हैं। सन् १९१३-१४ के आसपास "इन्दु" में प्रतिमास उनकी जिस ढंग की कवितायें निकलतीं थीं (जो बाद में "कानन-कुसुम" के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं) वे निश्चय रुप से तत्कालीन

---

१. "पल्लव" का "प्रवेश" सुमित्रानन्दन पंत। तृतीया वृत्ति। इण्डियन प्रेस से प्रकाशित। पृ० १८।

२. "पल्लव" का "प्रवेशः" सुमित्रानन्दन पंत। तृतीयावृत्ति। इण्डियन प्रेस से प्रकाशित पृ० २०

हिन्दी काव्य-क्षेत्र में युग-विवर्तन की सूचक थी।"[1] किन्तु आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी भाव एवं भाषा की प्रांजलता एवं प्रौढ़ता को दृष्टि में रखते हुये सुमित्रानन्दन पंत को छायावाद के प्रवर्तक होने का श्रेय देते हैं। उनकी धारणा है कि **"साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य-शैली का वास्तविक अभ्युदय सन् १९२० के पूर्व-पश्चात् सुमित्रानन्दन पंत की "उछ्वास" नाम की काव्य-पुस्तिका के साथ माना जा सकता है।"**[2] दृष्टिकोणों की भिन्नता ही विद्वानों के मत-वैभिन्य का कारण है। वास्तव में प्रसाद और पंत स्वच्छन्दतावाद के विकास की विभिन्न दशाओं के सूचक हैं। समय की दृष्टि से निस्सन्देह प्रसाद जी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान के प्रवर्तक ठहरते हैं। प्रसाद ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को नवीन स्वरूप दिया तो पंत ने अचिरकाल में ही स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को प्रौढ़ता एवं प्रांजलता प्रदान की। अन्य कवियों की अपेक्षा स्वच्छन्दतावाद की सभी विशेषतायें पंत जी के काव्य में सुगमता के साथ देखी जा सकती हैं। वास्तव में पंत जी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के मूर्धन्य कवि होने के साथ-साथ उस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि भी हैं। किन्तु प्रसाद और पंत की अपेक्षा स्वच्छन्दतावाद का विद्रोही स्वर निराला जी में अधिक मुखर हुआ है।

सन् १९२९ में निराला जी का "परिमल" नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। **"जूही की कली"**, "छः बादल गीत", "जागृति में सुप्ति", **"भिक्षुक"** आदि परिमल की मुख्य कवितायें हैं जिनमें स्वच्छन्दतावाद की अनेक मुखी विशेषतायें पायी जाती हैं। इस काव्य-संग्रह में कवि का संयम, अंतःकरण की उदात्तता, करुणा से आप्लावित हृदय की विशालता, भावों का सूक्ष्म सौन्दर्य तथा दार्शनिक गरिमा आसानी से पाये जाते हैं। सन् १९३१ में प्रसाद जी की प्रौढ़ रचना **"आँसू"** प्रकाशित हुई। **"आँसू"** एक विरह प्रधान काव्य है। कवि की अतीतकालीन स्मृतियाँ काव्य के आकार में ढल गयी हैं। इसमें कवि प्रसाद ने अपनी वैयक्तिक प्रेम-वेदना को दिव्यता के उदात्त धरातल पर अंकित किया है। सन् १९३२ में पंतजी का प्रसिद्ध काव्य-संग्रह **"गुंजन"** प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी सन् १९२९-३२ के बीच लिखी हुई कवितायें संगृहीत हैं। इसमें **"नौका-विहार"**, **"एक तारा"**, **"अप्सरा"**, **"भावी पत्नी के पति"**, **"चाँदनी"** आदि प्रौढ़ रचनायें हैं। इस काव्य-संग्रह में पंतजी के विचारक एवं कवि के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है। इस वर्ष के पश्चात् प्रसाद, निराला और महादेवी की महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाश में आयीं। सन् १९३५ तक प्रसाद जी का कविता-संग्रह **"लहर"** तथा महाकाव्य **"कामायनी"** का प्रकाशन हो गया। **"लहर"** में प्रसाद जी ने अपनी कल्पना को विभिन्न भाव-भूमियों की ओर अग्रसर किया है। इस

---

१. हिन्दी साहित्य कोश : छायावाद। पृ० २९६।
२. नन्ददुलारे वाजपेयी : बीसवीं शताब्दी।

में कवि की आनन्दवादी दृष्टि के साथ-साथ अज्ञात प्रियतम से रहस्यमयी अभिसारों का चित्र भी अंकित हुआ है। उनका "**कामायनी**" महाकाव्य हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद की महान् उपलब्धि है। इसमें काव्य, दर्शन तथा मनोविज्ञान का उचित सम्मिश्रण कर कवि ने मानव-जीवन में समरसता के माध्यम से आनन्दवाद की प्राण-प्रतिष्ठा की। सन् १९३७ तक निराला जी की "**गीतिका**" तथा "**अनामिका**" का प्रकाशन हुआ। "**अनामिका**" निराला जी का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है। कवि ने जीवन की आशा-निराशा के बीच आलोड़ित होते हुये भी अपनी पुरुष तेजस्विता का परिचय दिया है। इसी में उनकी "**राम की शक्ति पूजा**" छपी है, जिसमें उनकी प्रौढ़ एवं सुगम्भीर काव्य-कला का दर्शन होता है। इसके पश्चात् उनका प्रबन्ध-काव्य "**तुलसीदास**" का प्रकाशन हुआ। इस समय तक महादेवी जी की "**नीहार**", "**रश्मि**", "**नीरजा**", "**सान्ध्य-गीत**" तथा "**दीपशिखा**" आदि प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ प्रकाश में आयीं। प्रायः कवयित्री की अभिव्यक्ति गीतों में हुई है। उनकी कविता में सीमा के बन्धन में जकड़ हुई असीम चेतना का क्रन्दन मुखरित हुआ है। तदुपरान्त निरालाजी के "**कुकुरमुत्ता**", "**अणिमा**", "**बेला**", -'**नये पत्ते**", "**अर्चना**" तथा "**आराधना**" और पंतजी के "**युगान्त**" एवं "**युगवाणी**" आदि काव्य-संग्रहों का प्रकाशन हुआ, जिनमें हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी-युग का अवसाद तथा नवीन युग का उदय स्पष्टतः देखा जा सकता है।

(ग) हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का ह्रासोन्मुख काल (सन् १९३६-४२) :—हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के इन चार महान कवियों के पश्चात् उसकी गति मंद पड़ गयी। इस तरह स्वच्छन्दतावादी धारा ह्रासोन्मुख होती चली जा रही थी। इस काल के कवियों में डा० रामकुमार वर्मा, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेंद्र शर्मा, रामधारी सिंह "दिनकर", हरिवंशराय "बच्चन", "अंचल", हरिकृष्ण "प्रेमी", मोहनलाल महतो वियोगी, जानकी वल्लभ शास्त्री, सुमित्राकुमारी सिन्हा तथा विद्यावती "कोकिल" उल्लेखनीय हैं। राम कुमार वर्मा की "**अंजलि**", "**अभिशाप**" "**रूपराशि**" "**चित्ररेखा**", "**चन्द्रकिरण**" तथा "**संकेत**" स्वच्छन्दतावादी रचनायें हैं, जिनमें कवि की रहस्यात्मक प्रवृत्ति, विरह-वेदना, प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति असीम अनुराग प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। "बच्चन" जी की आरम्भिक कृतियों में तथा उनकी "**निशा-निमन्त्रण**", "**एकान्त संगीत**" आदि रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनकी कविता में मानव-जीवन की आशा तथा निराशा का सफल चित्रण हुआ है। दिनकर जी की आरम्भिक कृतियों में ("**रेणुका**" से "**रसवंती**" तक) स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति एवं

काव्य-शैली भी अत्यन्त स्पष्ट लक्षित होती हैं।[1] इस प्रकार अन्य कवियों की कतिपय रचनायें स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की पोषक होती हुई भी अपनी उत्साह-हीनता के कारण उस धारा की ह्रासोन्मुखता का संकेत देती है।

वास्तव में हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के ह्रास के कई अन्य कारण भी हैं। सन् १९३६ से प्रसादजी की असामयिक मृत्यु से इस काव्य-धारा का एक महान स्तम्भ इस संसार से ही उठ गया। पंत और निराला भी समय की परिवर्तित समस्याओं को दृष्टि में रखकर प्रगतिवादी विचार-धारा को अपनाने लगे। पंतजी का 'युगान्त' स्वच्छन्दतावादी-युग के अंत का सूचक है तो 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' उनकी प्रगतिवादी दृष्टिकोण की परिचायिका है। निरालाजी की 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' आदि कवितायें उनकी प्रगतिशील चित्तवृत्ति को स्पष्ट करती हैं। पंतजी ने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में अपने परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय इस प्रकार दिया है:—।'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था"[2] पंतजी के इस कथन में सत्य की मात्रा अत्यन्त गौण होते हुए भी उनकी परिवर्तित विचारधारा की ओर संकेत करता है। वास्तव में सत्य यह है कि किसी भी साहित्य के क्षेत्र में कोई काव्य-धारा अधिक समय तक नहीं टिक सकती। इसका मूल कारण यह है कि मानव-मन हर एक स्थिति में परिवर्तन चाहता है और नवीन के प्रति आकर्षण उस की प्रवृत्ति में ही विद्यमान है। इस विषय पर दिनकरजी का मन्तव्य द्रष्टव्य है—"साहित्य में कोई भी धारा बहुत दिनों तक नहीं ठहरती। कारण, एक शैली के बहुकाल तक प्रचलित रहने से अभिव्यक्ति में एकरसता आ जाती है, एक ही प्रकार के शब्द बार-बार प्रयुक्त होने से अपना जादू खो बैठते हैं और लीक इतनी पिटी-पिटायी और परिचित हो जाती है कि उस पर चलने वाला कोई भी कवि इस विश्वास से बोल नहीं पाता कि वह कोई नई बात बोल रहा है।"[3] समय की परिस्थितियों से प्रेरणा एवं शक्ति पाकर हिन्दी की प्रगतिवादी काव्य-धारा चल पड़ी, जिसने स्वच्छन्दतावादी धारा का अंत किया। सन् १९२७ में ही पंतजी ने "गा कोकिल बरसा पावक कण, नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन", 'द्रुत झरो जगत के

---

१. काव्य की भूमिका : रामधारी सिंह 'दिनकर'। प्रथम संस्करण। पृ० ५०

२. आधुनिक कवि—२ का पर्यालोचन : सुमित्रानन्दन पन्त : सातवाँ संस्करण। पृ० १७१।

३. काव्य की भूमिका : रामधारी सिंह 'दिनकर' : प्रथम संस्करण। पृ० २६

जीर्ण पत्र"¹ आदि पंक्तियों के साथ प्रगति-युग का प्रारम्भ किया। इसके एक वर्ष के पूर्व ही सन् १९३६ में प्रेमचन्द जी के सभापतित्व में "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई, जिसने आगे चल कर प्रगतिवादी काव्य-धारा के विकास में विशेष योगदान दिया।

३. तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद का विकास-क्रमः—

तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के विकास-क्रम का अध्ययन चार भागों में किया जाता है—

१. वीरेशलिंगम्-युग से तिरुपति वेंकटकवुलु-युग तक की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति। (१८८०-१९०८)

२. तेलुगु स्वच्छन्दतावाद (भावकवित्वमु) के विकास का प्रथम चरण। (१९०९-१९१८)

३. तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के विकास का द्वितीय चरण। (१९१९-१९३३)

४. तेलुगु स्वच्छन्दतावाद का ह्रासोन्मुख काल। (१९३४-१९४१)

(क) वीरेशलिंगम्-युग से तिरुपति वेंकटकवुलु-युग तक की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिः—श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् जी के समय तक तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में एक-रसता आ गयी थी। प्राचीन काव्यों के अनुकरण पर इतिवृत्तात्मक प्रबन्ध काव्य लिखे जाते थे, किन्तु उनमें प्राण-तत्व नहीं रह जाता था। ऐसी दशा में वीरेश-लिंगम्‌जी ने तेलुगु साहित्य की कुछ प्रमुख विधाओं का श्रीगणेश किया। उनके सम-कालीन कवियों में कोई नवीनता द्रष्टिगोचर नहीं होती। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक तेलुगु का काव्य-भाषा-सम्बन्धी विवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। गिडुगु राम-मूर्ति पंतुलु ने व्यावहारिक भाषा का (बोलचाल की भाषा) विद्वत्तापूर्ण समर्थन किया। वास्तव में, तेलुगु साहित्य में काव्य-भाषा-विषयक विवाद अत्यन्त प्राचीन रहा। सभी युगों में ग्रांथिक शैली तथा व्यावहारिक शैली में काव्य-रचना होती आयी थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक तेलुगु काव्य मे तिरुपति वेंकटकवुलु मार्ग शैली का तथा गुरजाड अप्पाराव देशी शैली का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। ऐसी दशा में सन् १९०० में एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई। डा० कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने अंग्रेजी के कथा-काव्यों को दृष्टि में रखकर **'मुसल्लम मरणमु'** (मुसलम्मा की मृत्यु) नामक कथा काव्य का प्रणयन किया। इसमें कथानक का मुख्यांश यह रहा कि ग्राम की

---

१. युगान्त : सुमित्रानन्दन पंत। पृ० २७।

एक युवा बहू ने अपनी ग्राम की सुरक्षा के लिए आत्म-बलिदान किया है। यद्यपि इसका कथानक लोक-जीवन से लिया गया है, तथापि काव्य की भाषा-शैली परम्परा-गत ही थी। परन्तु काव्य की योजना, कथन की शैली, भावनाओं का विकास-क्रम तथा वर्णन-पद्धति आदि पर अंग्रेजी के कथा-काव्यों के शिल्प का प्रभाव अवश्य परि-लक्षित होता है। रचना-विधान, भावों की अभिव्यक्ति तथा काव्य की समाप्ति में नवीनता का संस्पर्श इसमें मिलता है। अतः इस कृति ने तेलुगु के काव्य-साहित्य को नवीनता की ओर अग्रसर किया।

तिरुपति शास्त्री और वेंकटशास्त्री—इन दोनों कवियों का सम्मिलित नाम ही "**तिरुपति वेंकटकवुलु**" है। उनके नामांकित अपार काव्य-कृतियाँ इन दोनों कवियों की सम्मिलित काव्य-साधना के परिणाम हैं। आँध्र प्रान्त में कविता को जनता के बीच लाकर, उसे अत्यन्त लोकप्रिय बनाने का अधिक श्रेय इन्हीं कवियों को है। उन्होंने कविता के प्रचार को एक आन्दोलन के रूप में स्वीकार कर जनता में साहित्य के प्रति रुचि जगाने का स्तुत्य प्रयास किया। 'बुद्ध चरित्र' (बुद्ध चरित), 'गीरतमु', **श्रवणानन्दमु**', '**नानाराज संदर्शनमु**' आदि इनकी विख्यात काव्य-रचनायें हैं। उनका, '**बुद्ध चरित्र**' काव्य एडविन अर्नाल्ड के 'लाइट आफ एशिया' (Light of Asia) तथा अश्वघोष के '**बुद्ध चरित्र**' के आधार पर प्रणीत हुआ है। उन्होंने उपर्युक्त दोनों कृतियों को आदर्श रूप में रखकर उन्हीं से कथावस्तु भी ग्रहण किया तथा उन दोनों की सौन्दर्य वर्द्धक विशेषताओं को अपने काव्य में समाविष्ट किया[1]। इनकी अन्य रचना '**गीरतमु**' व्यंग्य-प्रधान है। इन कवियों ने अपनी सीमाओं में काव्य-भाषा को व्याव-हारिक शैली के निकट लाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने व्यवहार में (बोलचाल में) प्रयुक्त शब्दों को काव्य में प्रयोग कर उन्हें काव्य-गौरव से विभूषित किया।

---

1. "This story of Buddha's life in Telugu poetry is as the authors say, mainly based on Edwin Arnold's 'Light of Asia', and Aswaghosha's Buddha Charitra, and so far as I have been able to make out the merits of the Telugu work, it seems to me that it has markedly succeeded in assimilating to a noticeable degree some of the peculiar excellences belonging to the two works taken as models and as the sources of information therein contained."

(Preface of 'Buddha Charitra' by prof. Rangachari)

उन्होंने भाषा, भाव तथा रस को एक दूसरे के अत्यन्त निकट लाने का प्रयत्न किया। वे ही परम्परावादी काव्य की रूढ़ियों को विच्छिन्न करने वाले प्रथम परम्परावादी कवि थे। उन्होंने काव्य को ही एक आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया था तथा इस नेतृत्व को संभालने की असाधारण क्षमता उन में वर्तमान थी। उनकी अपनी मौलिक भावनायें तथा स्वतन्त्र विचारधारा भी थी। वे समय के साथ परिवर्तित होते गए। तेलुगु-काव्य के विकास में इस कविद्वय का विचित्र स्थान है। **"इन की कविता प्राचीन कविता के लिए भरत वाक्य तथा नवीन कविता (स्वच्छन्दतावादी कविता) के लिए नांदी प्रस्तावना है"**[1] प्राचीन और नवीन कविता के संधिस्थल पर ये कवि (Transitory Poets) अवतीर्ण हुए हैं। इस प्रकार इन कवियों के कृतित्व के साथ परम्परावादी कविता का अंत तथा स्वच्छन्दतावादी कविता का आरम्भ होता है। इन्हीं कविवरों का प्रभाव उनके शिष्यों के साथ अन्य युवक कवियों पर भी पड़ा, जो आगे चलकर तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन के कर्णधार बने।

(ब) **तेलुगु स्वच्छन्दतावाद (भावकवित्वमु) के विकास का प्रथम चरण (१९०९-१९१८)**:—एक दिशा में जब तिरुपति वेंकटकवुलु अपनी मार्ग-शैली के काव्य का प्रचार तथा प्रसार रसावेश के साथ कर रहे थे तो दूसरी दिशा में गुरजाड अप्पारावजी ने (१८६२-१९१५) देशी-शैली को अपनाकर तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। महाकवि गुरजाड अप्पाराव जी बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे एक महान कवि ही नहीं, अपितु एक समाज-सुधारक, राष्ट्रप्रेमी, उच्चकोटि के नाटककार, चिन्तनशील निबन्ध लेखक, इतिहासकार तथा कहानीकार भी थे। वीरेशलिंगम जी की सुधारवादी दृष्टि तथा गिडुगु राममूर्तिजी का व्यावहारिक भाषावाद का आकलन कर अप्पारावजी ने साहित्य-साधना की। इन्होंने सन् १९१० में अपने प्रसिद्ध काव्य-संग्रह **'मुत्याल सरालु'** (मोतियों के हार) का प्रकाशन कराया। हर दृष्टि से इसमें नवीनता थी। इसकी कतिपय कविताओं में अप्पारावजी ने **'मुत्याल सरमु'** नामक नवीन मात्रिक छन्द का प्रयोग किया, लोक-जीवन से काव्य-वस्तु को ग्रहण किया, व्यावहारिक (बोलचाल की भाषा) का काव्य में सफल प्रयोग किया तथा परम्परावादी काव्य-शैली के यति, प्रास आदि नियमों का त्याग कर दिया। इस प्रकार काव्य-शैली तथा विषय-वस्तु में नवीनता का संचार करने वाली कविताओं में **'मुत्याल सरालु', 'लवण राजुकल', 'पूर्णम्मा, कासुलु', कन्यका'** आदि उल्लेखनीय हैं, जिनमें स्वच्छन्दतावाद के सभी लक्षण देखे जा सकते हैं। विशुद्ध प्रेम की भावना, नारी की चारित्रिक निर्मलता, बाल्य-विवाहों के दुष्परिणाम आदि

---

१. **"वीरिकवित्वमु प्राचीन कवितकु भरतवाक्यमु, नवीन कवित्वमुनकु नान्दीवाक्यमु"। श्री मुद्दुकृष्ण कृष्णाराव ('साहित्य समालोचनमु' से उधृत : पिल्ललमर्रि वेंकट हनुमंतराव। तृतीयावृत्ति : ११७)**

इन कविताओं के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। उनके **'नीलगिरि पाटलु'** (नीलगिरि के गीत) भी नवीन शैली में लिखे गए हैं। उनकी भाषा तथा विषय-सम्बन्धी धारणाओं पर अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ का प्रभाव है, जिसे स्वयं कवि ने स्वीकार किया था। अप्पारावजी स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत होते हुए भी प्राचीन साहित्य के सौन्दर्यवर्धक पहलुओं के प्रति चिर जागरूक थे। उन्होंने अपने काव्य में प्राचीन तथा नवीन का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया।[1] फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि समय की दृष्टि से वे सर्वाधिक नवीन थे। अप्पारावजी के उपर्युक्त दोनों काव्य-संग्रहों का प्रभाव परवर्ती कवियों पर पड़ा।

श्री रायप्रोलु सुब्बारावजी अप्पारावजी के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से काव्य-निर्माण में सक्रिय भाग लेने वाले कवि थे। सन् १६०६ में ही उन्होंने अंग्रेजी के कथा-काव्य "हेर्मिट" (Hermit) के अनुकरण पर "ललित" नामक कथा-काव्य का प्रणयन किया। उन्होंने कथा-वस्तु को तो अंग्रेजी काव्य से अवश्य लिया, परन्तु उसमें भाव तथा शैली की दृष्टि से अत्यधिक नवीनता थी। कथा-वस्तु ने भी उनके हाथों में एक नवीन स्वरूप को प्राप्त किया। इस लघु काव्य के सम्बन्ध में रमाकान्ताचार्युलु के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं। **"मेरे अनुसार यह काव्य प्रचलित अंग्रेजी भाषा के घाटों से प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करते हुये भी प्रेम की पवित्र भावनाओं का गान करने वाला एक तेलुगु कवि का प्रथम सफल प्रयास है और इसी कारण वह आधुनिक तेलुगु-साहित्य के विकास में एक नूतन अध्याय के आरम्भ का द्योतक है। अपने पूर्व-वर्ती लेखकों के (जिन्होंने पश्चिम के महान लेखकों के अनुवाद तथा अनुकरण प्रस्तुत किये और तेलुगु साहित्य को सुसम्पन्न किया था) विपरीत इस लेखक ने प्रकृति के प्रत्यक्ष बिम्बों का छायाग्रहण प्रस्तुत कर अपनी कृति में नवीन जीवन तथा नवल रक्त का संचार किया।"**[2] पवित्र प्रणय का समर्थन, प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन, प्रकृति के

---

१. **"कोत्तपातल मेलु कलयिक, कोम्मेरुंगुलु जिम्मगा.... " मुत्याल सरालु। पृ० १।**

2. "This poem.......I believe is the first successful attempt on the part of a Telugu poet to sing the glories of the sacred passions of love under the direct inspirations of the votaries of English in use, and as such, marks a new epoch in the development of modern Telugu literature. The author unlike his predeces-sors (who have enriched the Telugu Literature by translating and imitatings the Western masters) infused fresh life and blood into the composition by photographing his images direct from nature." (Vide : Introduction to Lalita : 2nd. Edition : by Ramakantacharyulu.)

रहस्यों का मार्मिक अनुशीलन, सृष्टि के रहस्यों के प्रति जिज्ञासा की भावना, प्रकृति में पवित्र प्रणय का दर्शन, प्रकृति के प्रोत्साहन से कवि में घटित होने वाले चित्त-संस्कार, भावों का प्राधान्य आदि सभी स्वच्छन्दतावाद की विशेषतायें इस छोटे-से काव्य में लक्षित होती हैं। इसमें अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों के अभिव्यंजना-शिल्प का आभास भी दिखाई पड़ता है। इसमें सुब्बाराव जी की कला-दृष्टि, शब्द-सन्धान की चातुरी तथा शब्दों की सुकुमारता की पहिचान विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनके सम्पूर्ण काव्यों में इसी कला-दृष्टि का समुचित विकास पाया जाता है। यह छोटा-सा काव्य विद्वानों, विद्यार्थियों तथा अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित नागरिकों के आनन्द का स्रोत बन गया। भाषा तथा शैली ने विद्वानों को आकर्षित किया। प्राचीन काव्य-परम्परा की शृंखलाओं को तोड़ने के कारण विद्यार्थियों में काव्य की लोकप्रियता बढ़ी तथा उस की नवीनता ने अंग्रेजी-शिक्षा-प्राप्त नागरिकों को आकृष्ट किया। इस प्रकार इस छोटे-से काव्य ने तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य-भवन की एक सुदृढ़ नींव डाल दी। सुब्बाराव जी ने सन् १९०९ और सन् १९१२ के बीच "अनुमति", "कष्ट कुमारि" नामक दो कथा-काव्यों की रचना की। "अनुमति" अंग्रेजी कवि टेनीसन के "डोरा" (Dora) के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी रूप-कल्पना तथा अभिव्यक्ति-कौशल की दृष्टि से उसे एक मौलिक रचना के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। "तृणकंकणमु" सुब्बाराव जी का चौथा महत्व-पूर्ण कथा-काव्य है। "ललित" की नवीनता ही इस काव्य में आकर विकसित हुई। सन् १९१३ में "तृणकंकणमु" के प्रकाशन ने तेलुगु के काव्य-जगत् में एक हलचल पैदा कर दी। इस काव्य ने सुब्बारावजी को तेलुगु के प्रथम महान स्वच्छन्दतावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उसके पश्चात् सुब्बाराव जी कुछ दिनों तक शान्तिनिकेतन जाकर रवीन्द्र के सम्पर्क में रहे। इसी कारण उनकी कतिपय वाद की रचनाओं पर रवीन्द्र के रहस्यवाद का किंचित् प्रभाव भी देखा जा सकता है। इसी समय में "अभिनव कविता मण्डलि" (The School of Romantic Revival) की स्थापना हुई। उसके सहयोग से अनेक नवागत कवियों को प्रोत्साहन मिला। सन् १९१३ से लेकर सन् १९२३ तक "स्नेहलतादेवि", "आन्ध्रवलि" तथा 'मधुकलशमु' आदि सुब्बा-रावजी की काव्य-कृतियाँ नियमित रूप से प्रकाशित हो चुकी थीं। इन सभी काव्यों में काव्य-कला की सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। उनमें प्रकृति के प्रति वर्ड्सवर्थ की अनन्य प्रेमभावना, शैली का आदर्श प्रेम-दर्शन तथा रवीन्द्र की रहस्य-भावना का सुन्दर समन्वय मिलता है। शब्द-मूल्य, शब्द-संगीत तथा शब्दाभिव्यंजना की क्षमता का उन्हें गहरा ज्ञान था। अपनी कोमल भावनाओं, काव्य-सम्बन्धी तथा दार्शनिक विचारों को उन्होंने जिस सुन्दर भाषा का परिधान पहिनाया था, उसी ने तेलुगु स्वच्छन्दतावादी काव्य में एक नवीन जीवन तथा सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। सुब्बाराव जी ने न गुरजाड अप्पाराव जी से प्रयुक्त नवीन छन्द (मुत्याल सरमु) का प्रयोग किया और न

व्यावहारिक भाषा का ही उपयोग किया। फिर भी इन दोनों कवियों में काव्य-वस्तु के सम्बन्ध में एक नवीन दृष्टि के दर्शन होते हैं। सुब्बाराव जी के नवीन काव्य को कुछ आलोचक **"नव्य कवित्वमु"** (नयी कविता) के नाम से पुकारने लगे तो और कुछ इस नवीन काव्य-धारा को **"काल्पनिकोद्यममु"** (काल्पनिक आन्दोलन) के नाम से अभिहित करने लगे। परन्तु **"नव्यकवितमु"** के नाम में अतिव्याप्ति का दोष है तो **"काल्पनिकोद्यममु"** के नाम में काव्य के कल्पना-तत्व पर ही अधिक बल दिया गया है। ये दोनों नाम इस नवीन काव्य-धारा की विशेषताओं को अपने में समाहित न कर सके। कुछ अन्य आलोचकों के साथ स्वयं सुब्बाराव जी ने अपनी कविता को **"भावकवित्वमु"** (भावात्मक कविता) की संज्ञा दे दी। डा० गिडुगु सीतापतिजी के अनुसार गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तमरावजी ने ही नवीन काव्य के लिये "भावकवित्वमु" के नाम का सर्वप्रथम उपयोग किया।[1] मूलतः नवीन काव्य में भावना की अत्यधिक प्रधानता होने के कारण ही उसके लिये यह नाम पड़ गया है।[2] पाटिवंड माधव शर्मा ने **"गीतात्मक आत्मपरक, व्यंग्य-प्रधान तथा एक भावाश्रयी** लघु रचना को **"भाव कवित्वमु" "कहा है।**[3] किसी न किसी प्रकार सन् १९२० तक तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के लिये "भाव कवित्वमु" का नाम अधिक प्रचलित हो गया। यदि कुछ आलोचक सुब्बारावजी को तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद या "भाव कवित्वमु" का प्रवर्तक मानते हैं तो कुछ गुरजाड़ अप्पाराव जी को। यह विवाद यहाँ ध्यान देने योग्य है।

तल्लावज्झल शिवशंकर शास्त्री के अनुसार सुब्बाराव जी का "तृणकंकणमु" ही तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद का प्रथम काव्य है तो नोरि नरसिंह शास्त्री के अनुसार अप्पाराव जी के "नीलगिरि पाटलु" तथा "मुत्याल सरालु" नामक काव्य-संग्रह ही तेलुगु स्वच्छन्दतावाद की सर्वप्रथम रचनायें हैं। समय की दृष्टि से देखा जाय तो अप्पाराव जी की रचनाओं से भी सुब्बाराव जी का "ललित" काव्य का प्रकाशन पहले हुआ। शैली तथा कथावस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो अप्पाराव जी के

---

१. "गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तमरावुगारी माट पुट्टिंचिनारु।" गिडुगु सीतापतिगारु।— "आन्ध्र पत्रिका"—२७.१०.१९४०।

२. "भावप्रधानमुगा व्रासिन कवित्वमु कावट्टि" भाव कवित्व "मन वच्चु दीनिनि" कुरुगंटि सीताराम भट्टाचार्युलु—न० यान्ध्र साहित्य वीधुलु: द्वितीय भाग: पृ० २१५।

३. "गानयोग्यमु, आत्मनायकमु, व्यंग्यप्रधानमु, एकभावाश्रयमु नगु नोक लघुरचन भावकवित्वमनि तेलियनगु चुन्नदि।" -पाटिवंड माधव शर्मा—"भारति", श्रीमुख, पुष्यमु।

"नीलगिरि पाटलु" तथा "मुत्याल सरालु" से भी सुब्बाराव जी का "तृणकंकणमु" अधिक नवीन है। भावनात्मक विचार-धारा, कथा-वस्तु तथा शैली के क्षेत्रों में सुब्बाराव तथा अप्पाराव एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। अप्पारावजी ने यहाँ व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषा में काव्य-रचना की, वहाँ सुब्बाराव जी ने संस्कृत-निष्ठ साहित्यिक भाषा में ही काव्य-रचना कर विद्वानों का समर्थन भी अनायास प्राप्त किया। परवर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों में अधिकांश कवियों ने सुब्बाराव जी की परम्परा का ही अनुसरण किया। परन्तु अप्पारावजी एक साथ अनेक क्षेत्रों में कार्य कर रहे थे। वे केवल एक कवि ही नहीं, अपितु समाज-सुधारक तथा महान नाटककार भी थे। उन्होंने अपने सम्पूर्ण भावावेश में कविता नहीं, अपितु सुधारवादी नाटक लिखे, जबकि रायप्रोलु सुब्बारावजी ने अपने सम्पूर्ण भावावेश, उत्साह एवं स्फूर्ति के साथ नवीन काव्यान्दोलन (स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन) का नेतृत्व किया। सुब्बारावजी युग की परिवर्तित साहित्यिक अभिरुचि के विषय में सतत जागरूक थे। उन्होंने कहा कि विद्वानों को भावना की महत्ता पहचाननी चाहिए तथा अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित नागरिकों के हृदय की छायाओं का स्वरूप-चित्रण बिना किये नहीं छोड़नी चाहिए।[1] अतः सुब्बारावजी को ही तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के प्रवर्तक के रूप में ग्रहण करने के पक्ष में अत्यधिक तर्क विद्यमान हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि परवर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाषा तथा विचारधारा पर अप्पारावजी का प्रभाव भी कम नहीं रहा। अतः इन दोनों कवियों को तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तकों के रूप में स्वीकार करना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। एक प्रकार से ये दोनों स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के जनक हैं। इन दोनों कवियों के अपनाये हुए मार्ग एवं दृष्टिकोण अत्यन्त पृथक होते हुए भी, वे एक दूसरे के सहयोगी बनकर तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-सरिता को आगे की ओर अग्रसर करने में सहायक हुए। इस प्रकार रायप्रोलु सुब्बारावजी के कथा-काव्य तथा अप्पारावजी के गीति-काव्य के दोनों भागों की परवर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों ने स्वीकार कर, उन्हें और भी आगे बढ़ाया।

सुब्बारावजी के पश्चात् तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को शक्ति प्रदान करने वाले कवि हैं अल्लूरि रामकृष्ण राव। "मल्लिकाम्बा", "ऊहागानं" नामक काव्य तथा "नदी सुन्दरि" नामक नाटिका इनकी कृतियाँ हैं। इन रचनाओं में मौलिकता की मात्रा अधिक है। इनकी भाषा संस्कृतिनष्ठ होती हुई भी अतीव सरस

---

१. "पण्डित लोकमुनकु नूतन भाव पक्षपातमुदयिंचि तीरवलेनु : आंग्ल विद्याभास-कुल केवल हृदयच्छायलु स्वरूप वैचित्रि निर्मिपक विडुवरादु।"—रायप्रोलु सुब्बाराव ("न० यान्ध्र साहित्यवोधुलु" से उद्धृत : द्वितीय भाग : कुरुगंटि सीतारामाचार्युलु : पृ० २२१)

बन पड़ी है। रामकृष्णराव ने अनेक नवीन छन्दों का प्रयोग किया। इनकी कविता माधुर्य से ओतप्रोत है। वह हर्ष तथा उत्साह का गायक है, पर दुख या निराशा का नहीं। इसकी रचनाओं ने स्वच्छन्दतावाद के अन्य युवक कवियों के हृदय में नूतन उत्साह का संचार किया। रामकृष्णराव अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व में सुब्बारावजी के अधिक निकट है।

सन् १९१५—१९२३ के बीच तेलुगु का स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन शीघ्राति-शीघ्र अपनी प्रगति कर रहा था। इसी समय काव्य-धारा के विकास में सक्रिय योग-दान देने वाले कवियों में दुव्वूरि रामिरेड्डी (१८९५—१९४७) बसवराजु अप्पाराव (१८९४—१९३३) अडवि वापिराजु (१८९५—१९५२) कविकोण्डल वेंकटराव (१८९२………) तथा नण्डूरि सुब्बाराव (१८९५—१९५६) प्रसिद्ध हैं। इन सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने दो-तीन वर्षों की अवधि के बीच काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। दुव्वूरि रामिरेड्डी जी ने सन् १९१७ में "नलजारम्म अग्नि प्रवेशमु" सन् १९१९ में **"कृषीवलुडु"** काव्यों की रचना कर प्रकाशित किया। "नलजारम्म अग्नि **प्रवेशमु**" एक कथा-काव्य है जिसमें कवि ने एक पतिव्रता के पवित्र तथा त्यागमय जीवन का अंकन किया। कवि ने नायिका (नलजारम्म) के आत्म-बलिदान के द्वारा उसकी चारित्रिक निर्मलता एवं उदात्तता का निरूपण किया। "कृषीवलुडु" काव्य में भारतीय किसान के जीवन का साँस्कृतिक चित्र उपस्थित किया गया। सन् १९२० तक उन्होंने **"जलदांगना"** भी लिखा। इसके पश्चात् उनकी बहुत-सी रचनाओं का प्रकाशन **"कवि कोकिल ग्रन्थावली"** के विभिन्न भागों में हुआ। रामिरेड्डीजी प्रकृति के अनन्य उपासक रहे हैं। भारतीय ग्राम्य जीवन के प्रति उनके हृदय में अपार ममता थी। वे फारसी, अंग्रेजी, से लेकर तेलुगु तक नौ भाषाओं तथा उनके साहित्यों से परिचित हैं। उनकी भाषा में माधुर्य, भावों में गाम्भीर्य तथा अर्थ का सारल्य पाठक को विमोहित कर लेते हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण काव्य में जीवन की ,मार्मिक अनु-भूतियों को वाणी देने का सफल प्रयास किया। उन्होंने अधिकतर कथा-काव्य, प्रगीत तथा गीतों की सृष्टि की। उनकी सुकुमार भावनाओं तथा शिल्प-सौन्दर्य को दृष्टि में रखकर उन्हें **"कवि कोकिल"** की उपाधि से विभूषित किया गया।

बसवराजु अप्पाराव एक अत्यन्त भावुक कवि तथा प्रसिद्ध गीतकार हैं। उसने कई गीतों का निर्माण किया। पुस्तकाकार में इनकी रचनायें सन् १९२३ के पश्चात् ही काव्यांगण में आने पर भी, इसके पूर्व ही वे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं। कवि के निधन के पश्चात् कुछ गीतों का दिगवल्लि वेंकट शिवराव ने **"बसवराजु अप्पाराव गीतालु"** में समावेश कर तेलुगु काव्य-जगत् की अपार सेवा की। अप्पाराव की **"सेलयेटि गानमु"** भी उल्लेखनीय रचना है। वह एक अत्यन्त लोकप्रिय कवि रहा है। उसने अपने वैयक्तिक जीवन के सुख-दुख को स्निग्धता तथा तीक्ष्णता

के साथ काव्य में अभिव्यक्त किया है। वह पाठक के समक्ष अपनी हृदयस्थ भावनाओं को एक आंतरिक मित्र की भाँति बिना कोई दुराव या छिपाव के गीतों में व्यक्त करते हुए दिखाई पड़ता है। उसके गीत केवल उसके जीवन-सिन्धु को आन्दोलित करने वाली उच्छ्वसित भाव-तरंगें मात्र हैं। उसके कृतित्व को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने केवल आत्माभिव्यंजना के लिए ही काव्य रचना की। व्यंजना करने की शीघ्रता में भाव एवं भाषा के संतुलन पर भी ध्यान न देकर वह कभी-कभी नग्न अभिव्यक्ति करने के लिए भी हिचकिचाते नहीं। इसकी रचनाओं से तेलुगु स्वच्छन्दतावाद में एक प्रकार की नवीनता आ गयी; आत्माश्रयी गीतिकाव्य को एक निश्चित एवं स्फुट आकार मिल गया। अधिकतर कविताओं को व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषा में लिखना तथा गीतों के माध्यम से भावनाओं को अभिव्यक्त करना उस पर गुरजाड़ अप्पारावजी के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। बसवराजु ने भी सन् १९२३ के पश्चात् काव्य-प्रांगण में पदार्पण करने वाले कुछ युवक कवियों को आकृष्ट किया।

अडवि बापिराजु एक सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली कवि तथा कलाकार हैं। वे एक उच्चकोटि के गीतिकार, उपन्यासकार, कहानी-लेखक, चित्रकार तथा मूर्तिकार भी हैं। भारतीय कला तथा संस्कृति का उन्हें गहरा ज्ञान था। सन् १९२२ में उन्होंने "तोलकरि" नामक काव्य-संग्रह का प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक गीतों की भी रचना की। हृदयगत अनुभूतियों को वे अपने गीतों में प्रकट करते थे।

कविकोण्डल वेंकटरावजी ने भी इसी समय अपने काव्य-जीवन का आरम्भ किया। इसके पूर्व वे अंग्रेजी में कविता लिखते थे, परन्तु बाद में तेलुगु में बहुत-से सुन्दर गीतों का सृजन किया। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ की भाँति इन्होंने भी ग्राम-जीवन तथा प्रकृति को अपनी कविताओं की विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया। भाषा भी व्यावहारिक होने के कारण अतीव सरल बन पड़ी है।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में नन्डूरि सुब्बाराव का एक विशिष्ट स्थान है। केवल स्वच्छन्दतावादी काव्य में ही नहीं, अपितु तेलुगु के गीति-काव्य में उनके "यॅकि पाटलु" (यॅकि के गीत) अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। सन् १९१७–१९२३ के बीच उसने इन गीतों की रचना की। इस गीत संग्रह में कवि ने अपने हृदय की प्रेम-भावना को ही यॅकि (नायिका) तथा नायुडु बाव (नायक) के स्निग्ध प्रणयोद्गारों के रूप में चित्रण किया। कवि ने व्यावहारिक भाषा को भी प्रयोग में न लाकर, लोकगीतों की भाषा को, जो प्रायः असमय तथा अशिक्षित ग्रामीणों की बोलचाल की भाषा से मिलती है, काव्य में प्रयोग कर, उसमें काव्य-गरिमा की प्रतिष्ठा की।

(ग) तेलुगु स्वच्छन्दतावाद (भाव कवित्वमु) के विकास का द्वितीय चरण (१९१९–१९२३) :- तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के विकास में कुछ संस्थाओं ने अपार योगदान दिया है। उन संस्थाओं में "**साहिती समिति**" का अत्यन्त प्रमुख स्थान है। सन् १९१८-१९१९ के बीच के समय तक तेलुगु साहित्य के प्रचार के लिए बहुत कम पत्र पत्रिकायें थीं। वेंकट पार्वतीश्वरकवुलु, गुरजाड अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव, बसवराजु अप्पाराव तथा नण्डूरि सुब्बाराव आदि प्रतिष्ठित कवियों की ही कवितायें प्रकाशित हो पाती थीं। इनकी रचनाओं को पढ़कर उत्साही तथा भावप्रवण युवक अपनी साहित्यिक तृष्णा को बुझा लेते थे। वे भी अपनी भावनाओं को काव्य के आकार में ढालना चाहते थे। ऐसे ही उत्साही तथा भावप्रवण युवकों ने मिलकर सन् १९१९ में "**साहिती समिति**" की स्थापना तेनालि में की। युवक-मण्डली में काव्य तथा ललित कलाओं के प्रति विशेष अनुरक्ति थी। "साहिती समिति" में साहित्य-गोष्ठियाँ चलती थीं, एक दूसरे के काव्य पाठ उत्सुकता तथा सहृदयता के साथ सुनते थे, संस्कृत, अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी तथा मराठी साहित्यों के विषय में भी चर्चायें होती थीं। वास्तव में वह एक निस्वार्थ काव्य तथा कला-प्रेमी युवकों की मण्डली थी। कीर्ति या स्वार्थ की कामना ने उनके सुकुमार हृदयों को कलुषित नहीं किया। उस मण्डली में अत्यन्त प्रतिभाशाली युवक थे। उनके हृदय-स्पन्दन तथा भाव धारा प्रायः एक समान थे। इस तरह "साहिती समिति" एक स्नेहाकांक्षी भाइयों की मण्डली थी।

"**साहिती समिति**" की स्थापना सन् १९१९ में अवश्य हुई थी, पर सन् १९२३ तक उसका समग्र स्वरूप संघटित हो गया था तो इसका सम्पूर्ण श्रेय समिति के सभापति तल्लावजभुल शिवशंकर शास्त्रीजी को मिलना चाहिए। स्वच्छन्दतावाद के सभी प्रमुख कवि "**समिति**" के सदस्य थे जिनमें स्वयं शिवशंकर शास्त्री (सभापति) चिन्ता भीमशंकरम्, चिन्ता दीक्षितुलु, नोरि नरसिंह शास्त्री, कोडवगंटि वेंकट सुब्बय्या, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण, कोडालि आंजनेयुलु, नण्डूरी वेंकट सुब्बाराव, नाग्ननि सुब्बाराव, विजमूरि पार्थसारथी उल्लेखनीय हैं। शिवशंकर शास्त्री जी महान प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। वे स्वयं एक उच्चकोटि के कवि तथा समीक्षक हैं। उनको "**साहिती समिति**" का केन्द्र कहा जा सकता है। वास्तव में वे एक व्यक्ति नहीं, अपितु स्वयं एक संस्था हैं। वे अनेक भाषाओं तथा साहित्यों के मर्मज्ञ होते हुए भी संस्कृत साहित्य के प्रति उनका अपार स्नेह रहा है। उन्होंने संस्कृत के काव्य-सिद्धान्त विषयक लक्षण ग्रन्थों, अंग्रेजी के काव्य-शास्त्र की पुस्तकों के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन भाषाओं में संचित कला-विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन कर विशाल दृष्टिकोण को अपनाया।[1] काव्य-भाषा तथा विषयवस्तु के विषय में वे

---

1. "He is a great linguist. He has a perfect knowledge of Sanskrit,

अत्यन्त उदार रहे हैं। उन्होंने व्यावहारिक तथा ग्रांथिक भाषा-शैलियों के सामंजस्य का अधिक आग्रह किया। एक ओर ग्रांथिक भाषा-शैली में अपने काव्य-निर्माण करते हुएभी उन्होंने व्यावहारिक भाषा का समर्थन किया। वे भाषावादी न होकर केवल रसवादी रहे हैं। शास्त्री जी मूलतः एक समन्वयवादी साहित्यिक हैं। उन्होंने प्राचीन तथा नवीन का सामंजस्य स्थापित किया। वे प्राचीन परम्परा-प्रेमी कवियों तथा नवीन स्वच्छन्दतावाद के प्रेमी युवक कवियों को समान रूप से प्रोत्साहन देते थे। परस्पर विरोधी प्रकृति वाले कवियों को कई वर्षों तक एक ही संस्था के अन्तर्गत संघटित रखना उनके असाधारण व्यक्तित्व का ही परिणाम है। उन्होंने सन् १९२० से "साहिति" पत्रिका का सम्पादन किया। इसमें स्वच्छन्दतावादी कवितायें धूम-धाम से प्रकाशित होती थीं। उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखों में स्वच्छन्दतावाद का विद्वत्तापूर्ण समर्थन किया। स्वच्छन्दतावादी काव्य के विरोधियों के आक्षेपों को तर्कसंगत तथा पांडित्यपूर्ण उत्तर देने वाले स्वच्छन्दतावादी कवि-समीक्षकों में तल्लावज्झुल शिवशंकर शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण, नोरि नरसिंह शास्त्री प्रमुख हैं। इन तीनों में शिवशंकर शास्त्री अपनी विदग्धता तथा व्यवहार-कुशलता के कारण विरोधियों की भी प्रशंसा पा जाते थे। एक प्रकार से वे तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के जागरूक प्रहरी रहे हैं और स्वच्छन्दतावाद को एक काव्यान्दोलन के रूप में चलाने का अत्यधिक श्रेय इन्हीं को है। इनका प्रभाव उस समय के सभी युवक कवियों पर देखा जा सकता है।[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के विकास में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रीजी (१८९७–....) की महत्वपूर्ण सेवा भुलायी नहीं जा सकती। सन् १९२३ तक प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों की कतिपय रचनाओं का प्रकाशन हो ही चुका था जिनमें वेंकट सुब्बय्या का **सन्ध्यारागं** विश्वनाथ सत्यनारायण का **आन्ध्र पौरुषम**, पिंगलि-काटूरि कवियों का **तोलकरि** तथा नोरि नरसिंह शास्त्री की **गीतमालिका** उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त **शारदा**, **भारति** तथा **साहिति** में अनेक स्वच्छन्दतावादी कविताओं

Telugu and English. He is well versed in the Bengalee and Hindi languages and has translated famous books from them into Telugu. He knows in various degrees Pali, Prakrit, Marathi, Persian, Urdu, German and may be other languages.".... Nori Narasimha Sastry. (Qt. in 'Navyandhra Sahitya Veedhulu: part II : P. 300.)

2. 'It can be said, without fear of exaggeration that there is no modern writer in the Telugu land who has not been influenced by Sastry to some extent."
(Triveni, March, 1938.)

का प्रकाशन भी हो चुका था। नन्डूरि सुब्बाराव के यॅंकि पाटलु काव्य-प्राँगण में आ चुके थे। कृष्णशास्त्रीजी अपने इन कवि मित्रों की कविताओं का स्थान-स्थान पर सस्वर पाठ किया करते थे। वे स्वयं एक भावुक तथा सहृदय कवि एवं कलाकर हैं। इसी कारण उन्होंने केवल स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रचार एवं प्रसार के निमित्त सन् १९२३ से लेकर दस वर्ष सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश का भ्रमण कर विभिन्न सभाओं तथा संसदों में अपनी तथा अपने अन्य साथियों की रचनाओं का पाठ किया। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन तथा काव्य का जितना प्रचार कृष्णशास्त्रीजी के द्वारा हुआ है, उतना अन्य किसी कवि या साहित्यिक के द्वारा नहीं हुआ। जहाँ तक उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का प्रश्न है, वे तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के प्रतिनिधि कवि होने के साथ-साथ निस्संदेह उसके सर्वोत्तम कवि हैं। एक आलोचक की हैसियत से उन्होंने तेलुगु स्वच्छन्दतावाद का सशक्त समर्थन किया। उन्होंने अपने कवि-मित्र वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु के एकान्त सेवा शीर्षक काव्य की भूमिका में अपनी स्वच्छन्दतावादी विचारधारा को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया—

"प्राच्य तथा पाश्चात्य सभ्यताओं के सम्पर्क के कारण हमारे कवि नवीन बन गये .... नवीन कवियों के लिए स्वच्छन्दता ही प्राण है। वे शृंखलाबद्ध रहने की अपेक्षा प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं। इन्हें प्राणों से भी गान ही मधुर है— शृंखलाओं में संगीत! सीमाओं में कविता?"[1]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि कृष्णशास्त्रीजी ने तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के विकास में प्रमुख योगदान दिया है। इन्होंने **"कृष्णपक्षमु"** (१९२५), **"उर्वशी"** **"प्रवासमु"** (१९२९) शीर्षकों के अन्तर्गत ३ काव्य-संग्रहों का प्रकाशन किया। इन पुस्तकों के प्रकाशन से आन्ध्र के साहित्य-जगत् में एक हलचल पैदा हो गयी। इसका मूल कारण यह रहा कि इन काव्यों का प्रधान विषय वेदना तथा दुख था। इसी अवसर पर अक्किराजु उमाकान्तम् ने अपनी **"नेटिकालपु कवित्वम"** (समकालीन कविता) नामक आलोचनात्मक पुस्तक में तेलुगु स्वच्छन्दतावाद की अत्यन्त कटु आलोचना की। परन्तु उमकी आलोचना में सहानुभूति या सहृदयता का नितान्त अभाव न था। कृष्णशास्त्रीजी की भाँति अपनी आत्मपरक भावनाओं तथा अनुभूतियों को काव्य में अभिव्यक्ति देने वाले कवियों में नायनि सुब्बाराव (१८९९-....) वेदुल सत्यनारायण शास्त्री (१९०० -....) तथा शिवशंकर शास्त्री (१८९२ -....) प्रमुख

---

१. "प्राच्य पाश्चात्य नागरिकता सम्मेलनमु वलन मनवार क्रोत्तथारैनारु.... नव्य कवुलकु स्वेच्छप्राणमु। वीरु प्राणमैन गोल्पोवुदुरु कानि शृंखलमुल धरिम्परु। वीरिकि प्राणमु कन्न गानमु तीपु-संकेललो संगीतमा। कट्टुबाटुलो कवित्वमा?"
—श्री देवुल पल्लि कृष्ण शास्त्री—"एकान्त सेवा" की भूमिका-पृ० ४.

हैं। नायनि सुब्बाराव के दो काव्य-संग्रह **"सौभद्रुनि प्रणय यात्र"** तथा **"मातृ गीतालु"** भी कृष्णशास्त्री की रचनाओं के साथ ही प्रकाशित हो गए। उसकी कविता हृदय के भार से अधिक दबी हुई थी। उसमें हृदय की विह्वलता, भावना तथा भाषा एक दूसरे से लिपट कर एकाकार हो गयी हैं, जिसके फलस्वरूप हर एक पंक्ति अत्यन्त सरस बन पड़ी है। वेदुल सत्यनारायण शास्त्री ने अपने **दीपावि** काव्य-संग्रह में भावना की गहराई, शैली की मनोहारिता तथा वेदना की विह्वलता को एक सतुलित अभिव्यक्ति प्रदान की। शिवशंकर शास्त्रीजी के बहुचर्चित **"हृदयेश्वरि"** काव्य का प्रकाशन भी इसी समय हुआ। इसमें कवि की वैयक्तिक प्रणयानुभूति काव्य के अन्त तक प्रेयसि के प्रति भक्ति-भावना में परिणत हो गई है। इस प्रकार इन चार कवियों के काव्य में तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य ने अपने उन्नत लक्ष्यों को प्राप्त किया। परवर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों पर कृष्णशास्त्रीजी का प्रभाव बहुत वर्षों तक रहा। विश्वनाथ सत्यनारायणजी (१८९८ -····) के कृतित्व का आरम्भ भी सन् १९२० के पूर्व ही हो चुका था। उन्होंने अपनी काव्य-साधना के आरम्भिक काल में **"गिरिकुमारुनि प्रेम गीतालु"**, **"किन्नेर सानि पाटलु"**, **"कोकिलम्म पेल्लि"**, **"अनारकली"** के कुछ गीतों की रचना की। इन रचनाओं में कवि की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। वास्तव में सत्यनारायणजी एक सर्वोतमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यिक हैं। जर्मनी के महाकवि गेटे और जयशंकर प्रसादजी की भाँति स्वच्छन्दतावादी काव्य के साथ साहित्यिक जीवन का आरम्भ करते हुये भी अपनी स्वतन्त्र साधना के कारण वे एक महाकवि तथा महान साहित्यिक हो गये। उनकी प्रगाढ़ प्रतिभा को बाँधने के लिए स्वच्छन्दतावाद के क्षीण तार सर्वथा अशक्त रहे।

सन् १९३३ में तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने **"नव्यांध्र साहित्य परिषद्"** की स्थापना की और परिषद् की पत्रिका **"प्रतिभा"** में स्वच्छन्दतावादी रचनायें प्रकाशित होने लगीं। तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के प्रचार एवं प्रसार में योगदान देने वाली अन्य पत्र-पत्रिकाओं में **"साहिती-समिति"** की **"सखि"** विश्वनाथ सत्यनारायण से सम्पादित **"जयंति"** कोम्पेल्ल जनार्दनराव से सम्पादित **"उदयिनि"** पाटिवंड माधवकर्मा से सम्पादित **"वीणा"** मुद्दुकृष्ण से सम्पादित **"ज्वाला"** उल्लेखनीय है।

(घ) तेलुगु स्वच्छंदतावाद (भाव कवित्वमु) का ह्रासोन्मुख कालः (१९३४-१९४१)—कृष्णशास्त्रीजी की मित्र-मण्डली के कृतित्व के पश्चात् तेलुगु स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा में ह्रासोन्मुखता के चिन्ह स्पष्ट रूप से लक्षित होने लगे। स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख कवियों ने एक प्रकार से काव्य-सन्यास ग्रहण किया था। फिर भी कुछ नवागत उत्साही युवक कवियों ने इस काव्य-धारा को कुछ समय तक जीवित रखा। परन्तु यह निर्विवाद रूप से स्वच्छन्दतावाद का ह्रासोन्मुख काल रहा है। इस समय के कवियों में मल्लवरपु विश्वेश्वरराव, पिलका गणपति शास्त्री तथा

इन्द्रकटि हनुमशास्त्री उल्लेखनीय हैं। विश्वेश्वरराव की "ऐनाडु", "गड्डिपुवु", "सिंगारमु" आदि काव्य-कृतियों में भाषा एवं भाव का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। "कल्याण किंकिणि में" इसके आत्मपरक गीत संग्रहीत हैं। इन तीन कवियों के अतिरिक्त पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु, चावलि बंगारम्मा, तल्लप्रगड विश्वसुन्दरम्मा, "सौदामिनि" आदि कवि तथा कवयित्रियों ने अनेक भावप्रवण गीतों की सृष्टि की है, जो स्वयं तेलुगु स्वच्छन्दतावाद को गौरवान्वित करते हैं।

किसी भी आन्दोलन का, चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या साहित्यिक, यही नियम रहा है कि वह अधिक दिनों तक नहीं चलता। आन्दोलन का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि उसमें भावुकता तथा आवेग की मात्रा अधिक होती है। अतः उसका शमित हो जाना उसके स्वभाव में ही अंतर्निहित है। जब कोई साहित्यिक आन्दोलन परम्परा की शृंखलाओं को तोड़ देता है तो आगे चलकर स्वयं एक दूसरी परम्परा का निर्माण करता है। वास्तव में परम्परा तथा विद्रोह काल-सापेक्ष शब्द हैं और उनका आकलन भी विशेष प्रसंग में किया जाना चाहिये। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के आरम्भ की सामाजिक परिस्थितियाँ समाप्त हो चुकी थीं और कई वर्षों के प्रचलन के पश्चात् स्वच्छन्दतावादी काव्य में एक प्रकार की एकरसता आ गयी थी। साहित्य तथा काव्य के क्षेत्र में नवीनता की माँग होने लगी। ऐसी अवस्था में मानव-जीवन के कठिन यथार्थ ने पुनः एक बार भावनामय, कल्पनामय तथा आदर्शमय जीवन के प्रति विद्रोह किया। इसके परिणामस्वरूप सन् १९४२ तक तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में श्रीरंगम् श्रीनिवासराव (श्री श्री)(१९१०........) ने "अभ्युदय कवित्वमु" (प्रगतिवादी काव्य-धारा) का श्रीगणेश किया। इसके पश्चात् अनेक युवक कवियों ने उनके पथ का अनुसरण कर तेलुगु काव्य-क्षेत्र में भी प्रगतिवादी आन्दोलन को चलाया।

हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादों के विकास-क्रम की तुलना :—

हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के विकासक्रम में कुछ समानतायें तथा कुछ असमानतायें दृष्टिगोचर होती हैं। सर्वप्रथम उनकी समानताओं पर दृष्टिपात किया जाय।

(अ) हिन्दी तथा तेलुगु भाषाओं के विशाल भौगोलिक क्षेत्रों को दृष्टि में रखा जाय तो उन भाषाओं में स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के कार्य-क्षेत्र अपेक्षाकृत संकीर्ण रहे। इन दोनों साहित्यों की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के पनपने के लिये कोई एक विशिष्ट केन्द्र नगर (जैसे फ्रेंच स्वच्छन्दतावादी कलाकारों के लिये "पेरिस" तथा बंगला के साहित्यकों के लिये कलकत्ता) नहीं था। फिर भी सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में

काशी तथा प्रयाग इस काव्य-धारा के कवियों के मुख्य केन्द्र रहे तो आन्ध्र में समुद्र तट के भूभाग के जिलों तथा शहरों में इस काव्य-धारा का आन्दोलन चला जो रायलसीमा तथा तेलंगाना (हैदराबाद प्रान्त) से नितान्त पृथक है।

(आ) हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद केवल काव्य-साहित्य तक ही सीमित रहे।

(इ) हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं की पृष्ठभूमि के रूप में एक अनुवाद-युग रहा है, जिसमें अधिकांश अनुवाद अंग्रेजी काव्यों के हुये हैं। इस धारा के अंतर्गत इन अनुवादों से प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण-कर काव्य-सर्जना स्वतन्त्र रूप से हुई है।

(ई) समय की दृष्टि से भी हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य धाराओं का काल लगभग एक ही रहा है। दोनों साहित्यों में स्वच्छन्दतावाद का निखरा हुआ स्वरूप (छायावाद तथा "भावकवित्वमु") एक ही समय में प्रकट हुआ है। हिन्दी में वास्तविक स्वच्छन्दतावादी-युग (छायावाद) सन् १९१४ से १९३७ तक माना जाता है तो तेलुगु में स्वच्छन्दतावादी-युग (भावकवित्वमु) सन् १९१० से १९३८ तक। इन दोनों साहित्यों की अपेक्षा बंगला में इसी काव्य-धारा का एक अर्ध शताब्दी के पूर्व ही आरम्भ होना ध्यान देने योग्य है।

(उ) स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के साथ दोनों साहित्यों में दो काव्य-भाषा-विषयक आन्दोलन चल रहे थे। हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली का द्वन्द्व चल रहा था तो तेलुगु के काव्य-क्षेत्र में ग्रांथिक (परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा) तथा व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषायें अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास कर रही थीं।

(ऊ) दोनों स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारायें एक निश्चित काल में आरम्भ होकर, एक निश्चित समय तक उन्मेष को प्राप्त हुईं तथा एक निश्चित काल तक ह्रासोन्मुख होकर अस्तंगत हो गयीं। **आरम्भिक काल** में (सन् १९१० से १९२० तक) जयशंकर प्रसाद एवं रायप्रोलु सुब्बाराव, **उन्मेषकाल** में (सन् १९२० से १९३० तक) सुमित्रानन्दन पंत एवं देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री तथा **ह्रासोन्मुख काल** में बच्चन एवं विश्वेश्वरराव हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों के प्रतिनिधि कवि हैं।

(ऋ) हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों के प्रमुख कवि स्वयं उच्चकोटि के

समीक्षक एवं विचारक हैं। उन्होंने अपने समीक्षात्मक निबन्धों द्वारा काव्य तथा कला को समझने की एक नयी दृष्टि प्रदान की। इनके समीक्षात्मक निबन्धों से स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को अधिक शक्ति मिली। हिन्दी में प्रसाद, पंत एवं महादेवी तथा तेलुगु में रायप्रोलु सुब्बाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री तथा नोरि नरसिंह शास्त्री के समीक्षात्मक निबन्ध किसी भी भाषा के आलोचना-साहित्य के गौरव हैं।

समानताओं के विवेचन करने के पश्चात् हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के विकास-क्रम की असमानताओं पर विचार किया जाय।

(अ) हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद की भाँति न होकर, तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद ने एक महान् आन्दोलन का स्वरूप धारण किया। इसमें आन्दोलन का आवेश, उसकी तीव्रता एवं उसमें कवि-समूह का संघटित प्रयास आदि भली भाँति लक्षित होते हैं। उनकी कविताओं में स्वच्छन्दतावादी विशेषताओं के पाये जाने के कारण से ही हिन्दी के कवि इस काव्य-धारा में गृहीत हुये हैं, वरना उनको स्वतन्त्र रूप से एकान्त काव्य-साधना में लीन अन्तर्मुखी कलाकार कहना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा श्रीधर पाठक से आरम्भ होकर कई कवियों की कृतियों के माध्यम से अंतःसलिला की भाँति वहकर, शनैः-शनैः द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मक धरातल को चीरकर छायावाद के नाम से निकल पड़ी थी तो तेलुगु साहित्य में एक प्रकार से इसका प्रादुर्भाव एक आकस्मिक विस्फोट के रूप में हुआ था, जिसके फलस्वरूप इस में आन्दोलन का सम्पूर्ण ताप एवं वेग का होना अत्यन्त स्वाभाविक भी था।

(आ) हिन्दी की अपेक्षा तेलुगु में स्वच्छन्दतावादी कवियों की संख्या अत्यधिक है। संख्या की दृष्टि से हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के तथा तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद जर्मन स्वच्छन्दतावाद के अधिक समीप दीखते हैं। हिन्दी की काव्य-धारा में कवियों की प्रतिभा पर्वत के शिखरों की भाँति औन्नत्य को सूचित करती है तो तेलुगु की काव्य-धारा में कवियों की प्रतिभा खेतों की हरियाली की भाँति विस्तीर्णता को। औन्नत्य तथा गाढत्व हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद के गुण हैं तो **वैशाल्य**, वैविध्य, वेग तथा ताप तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद के।

(इ) तेलुगु-स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के उत्थान में **"साहिती समिति"** तथा **"नव्यान्ध्र साहित्य परिषद्"** आदि संस्थाओं ने विशेष योगदान दिया।

अधिकतर तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि इन संस्थाओं के सदस्य थे। वे सभी मिलकर संयुक्त रूप से काव्य-धारा की गतिविधि को वांछित दिशा में मोड़ लेते थे। हिन्दी में तो स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के विकास के लिए प्रयास करनेवाली कोई संस्था नहीं दीखती।

(ई) हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के विकास के साथ काव्य-भाषा-सम्बन्धी विवाद तो अवश्य चल रहे थे। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की परिधि से व्रजभाषा का पूर्ण रूप से बहिष्कार कर, खड़ीबोली के परिष्कृत रूप को अपनाया गया था तो तेलुगु की काव्य-धारा में ग्रांथिक (परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा) तथा व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषा-दोनों में काव्य-साहित्य का निर्माण हुआ। परन्तु यहाँ ध्यान देने का विषय यह है कि जहाँ व्रजभाषा तथा खड़ी बोली हिन्दी की दो नितान्त पृथक बोलियाँ हैं, वहाँ तेलुगु की ग्रांथिक तथा व्यावहारिक भाषायें एक दूसरे से सर्वथा भिन्न न होकर एक ही प्रचलित भाषा के परिनिष्ठित तथा दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त शैलियाँ मात्र हैं।

(उ) स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रचार के लिए तेलुगु के महान कवि देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने दस वर्षों तक आंध्र के कौने-कौने में भ्रमण कर हर एक सभा या गोष्ठी में काव्य का सस्वर पाठ किया था। फलतः आंध्र की जनता में स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रति प्रीति एवं रुचि जागृत हुई। हिन्दी में कुछ नगरों में आयोजित होने वाले कवि-सम्मेलनों तथा गोष्ठियों को छोड़कर स्वच्छन्दतावादी काव्य को जनता के बीच प्रचार करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया।

पंचम अध्याय

भाव पक्ष

परम्परावादी तथा स्वच्छन्दतावादी काव्यों की समीक्षा के लिए एक ही प्रकार के मानदण्ड सर्वथा उपयुक्त नहीं प्रतीत होते। इसका कारण यह है कि परम्परावाद एवं स्वच्छन्दतावाद की काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं तथा उनके दृष्टिकोणों में महान अन्तर है। परम्परावादी काव्य के मानदण्डों के अनुसार पहले काव्य का विवेचन होता आया है। परन्तु स्वच्छन्दतावाद ने उसके विरोध में अपनी मान्यताओं को खड़ा कर दिया। स्वच्छन्दतावाद की मान्यता है कि काव्य का विवेचन वाह्य नियमों के अनुसार नहीं, अपितु आन्तरिक नियमों के अनुसार होना चाहिये। विश्व के सभी स्वच्छन्दतावादी कवि विचारकों ने अपने काव्य के मूल्यांकन के लिये जो आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की है, उसी के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य का अध्ययन होना चाहिये। विश्व के महान् स्वच्छन्दतावादी विचारकों में गेटे, शिलर, शेलिंग, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, शैली, कीट्स, सुमित्रानन्दन पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी, तथा कृष्णशास्त्री आदि ने स्वच्छन्दतावाद के भाव-पक्ष के अध्ययन के लिए एक सुनिश्चित आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की है। भारतीय परम्परावादी आलोचना में रस-सिद्धान्त को प्रधानता दी जाती थी और किसी काव्य की श्रेष्ठता उसमें अभिव्यक्त रस पर निर्भर करती थी। प्राचीन परम्परावादी निर्वैयक्तिक काव्य के अध्ययन के लिए रस-सिद्धान्त अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है। परन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य आत्म प्रधान काव्य है जिसमें कवि की वैयक्तिक आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को प्रधानता मिलती है। स्वच्छन्दतावादी कवियों का लक्ष्य अपनी अनुभूतियों, भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों को दूसरों तक ऐसे ढंग से पहुँचाना है कि वे उन्हें यथावत ग्रहण कर सकें। अतः स्वच्छन्दतावादी कवि परम्परावादी या रीतिवादी की भाँति न पांडित्य प्रदर्शन ही करता है, न रस-अलंकार आदि के परम्पराबद्ध नियमों का ही पालन करता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि स्वच्छन्दतावादी काव्य में रस-अलंकार आदि का अभाव है। उसमें रस के चारों अवयवों--स्थायी भाव, आश्रय, आलम्बन और उद्दीपन--को प्रयत्नपूर्वक संयोजित नहीं किया गया। स्वच्छन्दतावाद की व्यक्तिवादी अभिव्यंजना में इसके लिए अधिक अवसर भी नहीं रहता। स्वच्छन्दतावादी कवि का लक्ष्य अपनी भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाना है। कवि इस कार्य में सफल हुआ तो किसी न किसी कोटि की रस-निष्पत्ति अवश्य होती है। परम्परावादी साहित्य-शास्त्र में कवि-

कर्म मर्यादित था और इसी कारण स्थायी भाव के प्रकाशन के लिए विभाव-पक्ष की स्पष्ट योजना परमावश्यक थी। स्थायीभाव सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित मनोविकार है। यही स्थायी भाव विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों द्वारा उद्वेलित किये जाने पर रस के रूप में व्यक्त हो जाता है। परम्परावादी काव्य में आश्रय के रूप में धीरोदात्त, धीर-ललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत नायकों की आवश्यकता होती थी; परन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्वयं कवि ही रति आदि स्थायी भावों का आश्रय बन जाता है। परम्परावादी काव्य में नायिका आलम्बन के रूप में रहती थी तो स्वच्छन्दतावादी काव्य में नायिका के अतिरिक्त प्रकृति और अन्य वस्तुयें भी आलम्बन के रूप में ग्रहीत हुई हैं। परम्परावादी काव्य में प्राकृतिक वातावरण मुख्यत: उद्दीपन के रूप में वर्णित हुआ है तो स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी प्रकृति उद्दीपन का कार्य सम्पन्न करने लगी है। परम्परावादी काव्य में संचारी भावों और अनुभावों की योजना भी आत्मानुभूति के आधार पर नहीं, अपितु ग्रन्ज-ज्ञान के आधार पर हुआ करती थी। परन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य में अनुभूति की तीव्रता के कारण अनुभावों की योजना स्वाभाविक रूप से होने लगी। रसानुभूति के चारों अवयवों का योग स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसलिए नहीं मिलता कि वह काव्य प्रगीतों एवं गीतों के माध्यम से प्रकट हुआ है, जहाँ इन सभी अवयवों का योग संभव नहीं। रस के चारों अवयवों के योग का विधान प्रवन्ध काव्य में (जो स्वभाव से वस्तुगत होता है) ही सफलतापूर्वक हो सकता है। आत्मानुभूति को व्यक्त करने वाले गीतों एवं प्रगीतों में इसके लिए पर्याप्त अवसर नहीं रहता। अत: स्वच्छन्दतावादी काव्य में रस के स्थान को भावना एवं कल्पना ने ले लिया है।[1] इस काव्य में पाठक कवि (आश्रय) की भावनाओं से तादात्म्य प्राप्त कर एक प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है जो स्वयं रस-दशा के समीप प्रतीत होता है। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य के भाव पक्ष में रस-विवेचन के स्थान को अनुभूति, भावना, कल्पना तथा सौन्दर्य-बोध ने ले लिया है। अत: हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद के भाव-पक्ष को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है—

१. आत्माभिव्यंजकता।
२. अनुभूति-पक्ष।
३. भावना-पक्ष।
४. विचार धारा।
५. प्रकृति-चित्रण।

---

1. 'Thus at last imaginations and emotion ·· ··Were recognised as the basis of literature.' (D. S. Sharma : Literary Criticism in Sanskrit and English. P. 5, & 6)

कल्पना पक्ष का सम्बन्ध बिम्ब विधान या मूर्त-विधान के साथ रहने के कारण उसका विवेचन कला पक्ष के अन्तर्गत किया जायगा ।

१. आत्माभिव्यंजकता :—

स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि की वैयक्तिकता का प्राधान्य रहता है । अतिशय संवेदनशील होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। वह अपनी हृदयस्थ भावनाओं तथा अनुभूतियों को व्यक्तित्व के स्पर्श से आलोकित कर देता है । उसके व्यक्तित्व के स्पर्श से जीवन और जगत के सभी पदार्थ सरस एवं आकर्षक बन जाते हैं ।

अन्य भाषाओं के स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाँति हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने काव्य को अपनी आत्माभिव्यंजना का माध्यम बनाया । इन कवियों को अपने व्यक्तित्व पर सम्पूर्ण विश्वास था और उन्होंने उसकी अभिव्यक्ति अपने काव्य में की । दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनी वैयक्तिक भावनाओं तथा अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया । उन्होंने जीवन और जगत के अनेक रूपों तथा सौन्दर्यमयी प्रतिमाओं के साथ तादात्म्य का अनुभव किया तो उन्हें उन्मुक्त एवं स्वतन्त्र रूप से आत्माभिव्यक्ति करने के लिये पर्याप्त अवसर मिला । उन्होंने दो प्रकार से आत्माभिव्यंजना की-(१) बाह्य वस्तु को अपनी भावना एवं कल्पना के रंग से रंग कर, (२) अपने ही सुख-दुःख, आशा-निराशा, संघर्ष तथा तत्व-चिन्तन को अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्यक्त करके ।

(क) बाह्य वस्तु को भावना एवं कल्पना से रंग देना :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने किसी वस्तु को भी उसके प्रकृत रूप में नहीं, अपितु उसे अपने वैयक्तिक संस्कारों, मनोविकारों तथा कल्पना के अनुसार ग्रहण किया । वस्तुओं को अपनी भावना एवं कल्पना के रंग में रँग कर उपस्थित करने से उन चित्रित वस्तुओं में कवियों के व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से झलकते हैं । प्रकृति और जीवन को हिन्दी तथा तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार देखा तथा उन्हें काव्य में उसी रूप में प्रस्तुत किया । दोनों भाषाओं के स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसके कई उदाहरण उपलब्ध होते हैं । उदाहरणार्थ सुमित्रानन्दन पंत बादल को कई रूपों में देख कर उसे अपनी भावना एवं कल्पना के रँग में रँग देते हैं-

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल-फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल,"[1]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "बादल" पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० ८५ ।

इस प्रकार पंत ने बादल के विभिन्न सौन्दर्यमयी बिम्बों को अपनी कल्पना एवं भावना के माध्यम से प्रकट किया। उपर्युक्त उद्धरण से कविवर पंत के कल्पनाशील व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वस्तुओं पर अपनी भावना एवं कल्पना का रंग चढ़ा कर अभिव्यक्त किया है। कविवर कृष्णशास्त्री अपनी प्रेयसी को तीनों लोकों के स्वामी के दिव्य रत्नों के समूह पर शासन करने वाले वज्रों का आभूपण मानते हैं और स्वयं कवि अपने को पाताल की सांकरी गलियों में फैलने में भय का अनुभव करने वाली अन्धकार की रेखा समझते हैं।[1] इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति तथा वस्तुओं को अपनी कल्पना एवं भावना के रंग में रँग कर देखा है, जिससे उनके दृष्टिकोण तथा व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

(ख) सुख-दुःख, आशा-निराशा एवं संघर्ष का स्पष्टीकरण :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशा, हास-अश्रु की अभिव्यक्ति कविता में की। इससे कवि के व्यक्तित्व का प्रकाशन होता है। अतः स्वच्छन्दतावादी कवि के जीवन का प्रभाव उसकी रचनाओं में प्राप्त हो जाता है। वह अपनी आत्मा को अधिकतर गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और वे गीत उसके व्यक्तित्व के आलोक में और भी सुन्दर प्रतीत होते हैं। हिन्दी के कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रा नन्दन पंत, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा तेलुगु के कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री नण्डूरि, सुब्बाराव, नायनि सुब्बाराव, बसवराजु अप्पाराव, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री आदि कवियों ने काव्य में अपने जीवन के हास और रुदन को खुल कर व्यक्त किया। इन कवियों का व्यक्तित्व उनके काव्य में समाहित होकर, काव्य का प्राण तत्व बन गया है। कविवर पंत मधुमास के प्रभात के समय इतना हर्ष-पुलकित हो जाते हैं कि उस आनन्द में नहीं समा सकने के कारण आत्म-विभोर होकर इस प्रकार उसे व्यक्त करते हैं :—

"आज नव मधु की प्रात
झलकती नभ पलकों में प्राण।
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान
झलकती, मेरी जीवन स्वप्न प्रभात।
तुम्हारी मुख छवि सी रुचिमान।"[2]

---

१. "त्रिजगतीपति कोट्टीर दिव्य रत्न
राजिनेलु वजाल तुरायि बीबु।
एनो पाताल लोकंपु टिकुसंदु
लन्दु दिगब्राक वेरचु गाढ़ांधरेखनु। —दे० कृष्णशास्त्री कुतुलु। पृ० ११७।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १५४।

हिन्दी के अन्य कवियों ने भी अपने जीवन में आशा के क्षणों को अभिव्यक्ति दी। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि वसवराजु अप्पाराव ने प्रकृति के हर एक क्षण में सौन्दर्य का दर्शन कर आनन्द का अनुभव किया। उसने कुछ क्षणों में जगत् को आनन्द का उद्गम मान लिया। वह इस प्रकार गाता है—

"आनन्द नहीं क्या इस जग में
आनन्द नहीं क्या ?
प्रकृति की सुषमा लखने में
निर्झर के इस मधुर गान में
कोकिल के "कू कू" निस्वन में
श्रवण-सुखद चिड़ियों के रव में
फूलों की अतुलित शोभा में
आनन्द नहीं क्या ?
इस जग में आनन्द नहीं क्या ?"[1]

कविवर अप्पाराव हर्षोल्लास में विभोर होकर जगत के सौन्दर्य की महिमा का गान करता है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने जीवन की पीड़ा तथा निराशा को अभिव्यंजना दी। उनकी निराशा एवं वेदना के अनेक कारण हो सकते है। प्रसादजी ने अपनी मर्म-वेदना को "आँसू" काव्य में साकार कर दिया। कवि रो-रोकर तथा सिसक-सिसक कर अपनी करुण कहानी सुनाता है। कविवर पंत भी "आँसू" और "ग्रंथि" में अपने वैयक्तिक जीवन की निराशा एवं वेदना को व्यक्त करते हैं। प्रसाद और पंत की वेदना प्रणय-वैकल्प-जन्य निराशा का परिणाम है। कविवर पंत अपनी प्रेमिका का किसी अन्य से परिचय होना देखकर मर्म-व्यथा का अनुभव इस प्रकार करते हैं—

---

१. "आनन्द में लेदा लोकमुन
आनंद में लेदा ?
प्रकृति यन्दमुल परिकिंचुटलो
इम्पगु नी सेलयेटि गानमुन
कूकू यनु नी कोइल पाटल
वीनुल विंदौ पिट्टल वासल
पूवुलु वाल्चु नपूर्वपु शोमल
आनन्द में लेदा, लोकमुन
आनंद में लेदा ?"—वसवराजु अप्पाराव-वसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ३२।

"देख रोता है चकोर इधर, यहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को
वह, मधुप विंध कर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय रो ।"[1]

निराला ने भी अपनी पुत्री सरोज के निधन पर अथाह वेदना का अनुभव किया । कवि अन्त में अपने जीवन को दुख की कथा ही कह देता है—

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज, जो नहीं कही ।"[2]

इसी प्रकार हिन्दी के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने जीवन की वेदना को काव्य में घनीभूत कर दिया । तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्ण शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुब्बाराव तथा वसवराजु अप्पाराव आदि कवियों ने अपनी वैयक्तिक दुखानुभूति एवं निराशा की भावना को सशक्त वाणी दी । कविवर कृष्ण शास्त्री अपनी प्रेयसी के वियोग के दुखपूर्ण क्षणों को इस प्रकार वाणी देते हैं—

"एक-एक गिरती हैं आँसू की बूंदे अविरल
रोता हूँ, बिना रोए मैं रह न सकूंगा ।"[3]

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इस तरह अपने जीवन की आशा-निराशा को काव्य में अंकित किया । इससे उनके व्यक्तित्व का प्रकाशन काव्य के द्वारा होता है। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य की मुख्य विशेषता आत्माभिव्यंजकता (व्यक्तित्व का प्रकाशन भी) है, जिसे हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में समुचित स्थान प्राप्त हुआ है ।

व्यक्तित्व का प्रकाशन स्वच्छन्दतावादी कवि की आत्माभिव्यक्ति का लक्ष्य है । परन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के कतिपय प्रमुख कवियों की रचनाओं में "अहं" की अभिव्यक्ति मिलती है । "अहं" स्वच्छन्दतावादी कवि के व्यक्तित्व का केन्द्र-बिन्दु है जो उसे अन्यों से भिन्न प्रमाणित करता है ।

---

१. सुमित्रानंदन पंत : "ग्रंथि" । पल्लविनी । तृतीय संस्करण पृ० ४४ ।
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" : "सरोज स्मृति" । अपरा । तृ० सं० पृ० १४८ ।
३. "ओवक टोंक्कटें कन्नीटि चुक्क लोलुक,
नेडुव लेक मेड्व लेक येड्चु चुंटि ।"
—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृ० ५७ ।

२. अहं की अभिव्यक्ति

शिशु अवस्था में अहं अत्यन्त सुषुप्तावस्था में रहता है। शिशु अपने 'अहं' का अनुभव नहीं करता। परन्तु विश्व के साथ सम्पर्क के बढ़ जाने के पश्चात् वह अपने पृथक् अस्तित्व का, अपने भिन्न व्यक्तित्व का अनुभव करने लगता है। सभी मनुष्यों के बीच वह अपनी पृथक सत्ता को प्रकट करना चाहता है। काव्य तथा कलाओं के माध्यम से वह अपने व्यक्तित्व ("अहं") को भी प्रकट करता है। वास्तव में "अहं" मनुष्य या कवि के व्यक्तित्व का केन्द्रीभूत तत्व है। कवि उसी को अभिव्यक्ति देते समय अत्यधिक निरंकुश एवं स्वतन्त्र बन जाता है। "अहं" के व्यक्तीकरण के समय उसमें अतिशय आत्मविश्वास रहता है। स्वच्छन्दतावादी कवि अपने वैयक्तिक 'अहं", को निम्नलिखित दो रूपों में प्रकट करता है—

(अ) प्रथम तो यह है कि कवि अपने अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के स्वरूप का प्रकाशन करता है। इस व्यक्तित्व का वैचित्र्य ही उसके काव्य में मौलिकता तथा नवीनता का समावेश करता है। इसमें तो अहं कवि के निरंकुश एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व का केन्द्रीभूत तत्व बन जाता है। वास्तव में कवि एक निरंकुश सत्ता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व-प्रकाशन में अहं का विस्तार न होते हुये भी कवि के अन्तराल के अदम्य आत्म-विश्वास का स्पष्टीकरण हो जाता है।

(आ) अहं के प्रकाशन का द्वितीय रूप यह है कि स्वच्छन्दतावादी कवि अतिशय संवेदनशीलता के कारण अपने अहं का विस्तार कर देता है और वह विश्व के हर एक अणु में अपने अहं को समाहार करना चाहता है। उस समय वह इतना भावप्रवण हो जाता है कि जीवन और जगत की हर एक वस्तु उसको आत्म-विस्मृति की अवस्था में डाल सकती है। उस समय वह अपने पृथक् अस्तित्व को भूल कर विश्व-हृदय के साथ समरस हो जाता है।

इस प्रकार व्यक्तिगत अहं के निरंकुश एवं स्वसंवेद्य—दोनों रूपों की उपलब्धि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रचुर मात्रा में हुई है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण, नायनि सुब्बाराव एवं वेदुल सत्यनारायण शास्त्री आदि की रचनाओं में आत्माभिव्यंजन के रूप में अहं का द्विमुखी प्रकाशन मिल जाता है। स्वच्छन्दतावादी अहं के दो रूप इस प्रकार हैं :—

(अ) अहं की निरंकुश अभिव्यक्ति में आत्म-विश्वास की मात्रा अत्यन्त अधिक रहती है। कविवर निराला में आत्म-विश्वास इतना अधिक है कि कवि निकट भविष्य में अपने अंत की कल्पना भी नहीं कर सकता--

अभी न होगा मेरा अंत।
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त--
कभी न होगा मेरा अंत।"[1]

कविवर दिनकर ने भी अपने ओजस्वी व्यक्तित्व को अहं के प्रकाशन के रूप में अनेक गम्भीर अप्रस्तुतों के माध्यम से व्यक्त किया है—

"सिन्धु क्या सुनूँ गर्जन तुम्हारा
स्वयं युग-धर्म की हुंकार हूँ मैं।"
"कठिन निर्घोष हूँ भीशण अशनि का
प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूँ मैं।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी इस प्रकार के अहं का प्रकाशन पाया जाता है। कविवर विश्वनाथ सत्यनारायण कहते हैं, तेलुगु प्रान्त में यदि मुझे आप नहीं जानते हैं तो सुनिये; मैं विश्वनाथ कुलांबुधि का चंद्रमा हूँ[3] कृष्ण-शास्त्री अपने व्यक्तित्व को दिनकर की भाँति विराट रूप में प्रकट करते हैं—

"स्वतंत्रता का अग्रपूत मैं
नभ-पथ-गामी विहग-राज मैं
मोहन विनील जलधर हूं मैं
झंझा प्रलय-प्रभंजन हूँ मैं।"[4]

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : ध्वनि। अपरा। तृ० सं०। पृ० १००।
२. रामधारी सिंह दिनकर : "परिचय"। हुंकार। पृ० ८६।
३. "नन्नु नेरुगरो। ई तेल्लनाट मीरु
विश्नाथ कुलांबोध विधुनि"—विश्वनाथ सत्यनारायण।
४. "ऐनु स्वेच्छाकुमारुड नेनु गगन
पथ विहार विहगम पतिनि नेनु
(पथ विहार विहंगम पतिनि नेनु)
मोहन विनील जलधर मूर्ति नेनु
प्रलय झंझा प्रभंजन स्वामि नेनु।—"नेनु"। श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कुतुलु।
पृ० १२।

कविवर वसवराजु अप्पाराव भी अपने अहं का प्रकाशन इस प्रकार करते हैं—

"रोक न सकता मुझको कोई
मेरे सम्मुख न टिकता कोई
गीत बन कर गूँजती जो कण्ठ से मेरे निकलती।"[1]

इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की यह प्रमुख विशेषता हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में समान रूप से पायी जाती है।

(आ) स्वच्छन्दतावादी कवि अपने अहं के निरंकुश स्वरूप पर इतना ऊब जाता है कि वह अहं को विश्व की किसी-न-किसी वस्तु में समाहार करना चाहता है। वह निरंकुश अहं के भार से दब जाता है तो वह उससे मुक्ति पाने के लिये दूसरी दिशा में बढ़ने लगता है। उस अवसर पर वह अतिशय संवेदनशील हो जाता है और प्रकृति एवं जीवन के प्रत्येक अणु से तादात्म्य प्राप्त करता है। एक अन्य विशेषता यह है कि एक ही कवि में अहं की निरंकुशता एवं अहं का समाहार भी प्रायः देखा जा सकता है। दिनकर प्रकृति की हर एक वस्तु के साथ तादात्म्य प्राप्त करते हुये कहते हैं—

"सलिल-कण हूँ कि पारावार हूँ मैं?
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं।"
"कली की पंखड़ी पर ओस-कण में
रंगीले स्वप्न का संसार हूँ मैं;
मुझे क्या, आज ही या कल झरूं मैं?
सुमन हूँ, एक लघु उपहार हूँ मैं।[2]

कविवर कृष्णशास्त्री भी अपने अहं को प्राकृतिक वस्तुओं में विलीन करते हैं। कवि कहता है—

"पात में पात बन, फूल में फूल बन
डाल में डाल बन, कोमल किसलय बन
छिप जाउँ मैं इस कानन में।"[3]

---

१. "नन्नें० व रांपलै रीवेला
नाघाटि कोपले रीवेला
नोट पलिकेदंत पाटगा मोगेनु—वसवराजु अप्पाराव। वसवराजु गीतालु। पृ० १।

२. रामधारी सिंह "दिनकर" : "परिचय"। "हुंकार" पृ० ८५।

३. आकुलो नाकुनै पूवुलो बूवुनै
कोम्मलो गोम्मनै नुनुलेत रेम्मनै
ई यडवि दागिपोना।"—श्री दे० कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ५।

अन्य हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी इस प्रकार की अभिव्यंजना की विशेषता पायी जाती है।

इस प्रकार यह भलीभाँति देखा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दातावादी कवियों ने आत्माभिव्यक्ति के साथ वैयक्तिक "अहं" को भी अपने काव्य में अभिव्यंजना दी।

३. अनुभूति-पक्ष :—

अनुभूति की तीव्रता स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्राणभूत तत्वों में-से है। कवि अपनी अनुभूति की गहराई एवं मार्मिकता को अन्यों तक काव्य के माध्यम से पहुँचाता है। गहरी अनुभूति कवि या मानव में एक प्रकार के विकार को जन्म देती है, जिसके प्रकाशन के लिये कवि अत्यन्त व्याकुल रहता है। महाकवि वर्ड्सवर्थ ने काव्य को तीव्रतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति माना है।[1] हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अनुभूति को अपने काव्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। अतः यहाँ उनके अनुभूति-पक्ष पर विचार करना परमावश्यक है।

स्वभाव एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से अनुभूति को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—(अ) सुखात्मक अनुभूति, (आ) दुखात्मक अनुभूति। अनुभूति के इन दोनों पक्षों पर हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी लेखनी चलायी है। यह स्वाभाविक इसलिये है कि मानव का अनुभूति-क्षेत्र सुख-दुख के पुलिनों के बीच सिमटा हुआ रहता है। मानव-हृदय सुख-दुख की अनुभूतियों से आन्दोलित हो उठता है, जिसकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावादी काव्य के अंतर्गत हुई है। सुखात्मक अनुभूति मानव की अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लेती है तो दुखात्मक अनुभूति प्रतिकूल परिस्थितियों में। मानव की सहज प्रवृत्ति सुख की ओर अग्रसर होना है। वह अपने मन की अनन्त अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं को पूर्ण करना चाहता है। परन्तु विश्व में मनुष्य को अनेक विरोधों का सामना करना पड़ता है। जब उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति संसार एवं वातावरण के विरोध के कारण नहीं होती तो मनुष्य निराशा एवं दुख का अनुभव करता है। क्रमशः हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की सुखात्मक अनुभूति एवं दुखात्मक अनुभूति का अध्ययन किया जाय।

(क) सुखात्मक अनुभूति :—

सुखात्मक अनुभूति को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है।

---

1. "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings."

—Wordsworth.

सामान्यतय सुखात्मक अनुभूति के दो मुख्य विभाग हैं—मिलन की अनुभूति और सौन्दर्यानुभूति ।

(१) मिलन की अनुभूति—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में मिलन की अनुभूति के स्थलों की कमी नहीं है । अनेक भावप्रवण कवियों ने अपनी प्रेयसि के साथ मिलन की सुखात्मक अनुभूति का वर्णन किया है । इन कवियों ने कहीं-कहीं नायक और नायिका के मिलन का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया। कविवर जयशंकर प्रसाद ने कामायनी की नायिका श्रद्धा का मनु के साथ मिलन का सांकेतिक वर्णन अत्यन्त सुचारू रूप में इस प्रकार किया है—

"गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदम्ब-सा था-भरा गदगद बोल ।"[१]

कविवर निराला ने भी नायक और नायिका के मिलन का पावन एवं मादक चित्र उपस्थित किया है । "राम की शक्ति पूजा" में राम के मानस-पटल पर अंकित एवं मिलन के दृश्य का कवि ने अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचा है । राम और सीता का प्रथम मिलन एक पुष्प-वाटिका में इस प्रकार हुआ है—

"………प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन-प्रिय संभाषण,—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,-
काँपते हुये किसलय,-झरते पराग-समुदय,-
गाते खग वन-जीवन-परिचय,-तरु मलय-वलय,-
ज्योति :—प्रभात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,--
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।"[२]

यहां निराला ने नायक और नायिका की मिलनानुभूति के अत्यन्त पावन एवं उज्ज्वल रूप पर प्रकाश डाला है । एक अन्य स्थान पर निराला ने प्रिय और प्रेमिका की मिलनानुभूति को अत्यन्त मादक एवं मांसल रूप में अंकित कर दिया है ।

जुही की कली तथा मलयानिल के मिलन-प्रसंग को उठाकर कवि ने स्त्री और पुरुष के मिलन की मार्मिक अनुभूति को इन पंक्तियों में साकार कर दिया है—

१. जयशंकर प्रसाद : वासना सर्ग । "कामायनी" । पृ० ७७-७८ ।
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : "राम की शक्ति पूजा" अपरा । तृ०सं० । पृ० ३५ ।

"नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक-क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूंदे रही--
किम्बा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये कौन कहे ?
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि सौंकें की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग।"[1]

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी भावी पत्नी की मिलनानुभूति का चित्रण अत्यन्त मनमोहक एवं भव्य रूप में किया है। वह नायक की शय्या के पास प्रथम मिलन के लिए चलती है तो उसकी दशा इस प्रकार चित्रांकित हुई है :—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात।
विकम्पित मृदु उर, पुलकित गात,
संशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण।
मधुरता में सी मरी अजान,
लाज की छुईमुई सी म्लान।"[2]

नायिका नायक (कवि) से मिलने जाती है और उन दोनों के मिलन की मधुरानुभूति का अंकन इस प्रकार किया गया है—

"सुमुखि, वह मधु क्षण ! वह मधु वार !
धरोगी कर में कर सुकुमार।

---

१. सूर्यकत त्रिपाठी "निराला" : जुही की कली। अपरा। तृ० सं०। पृ० ५।
२. सुमित्रानंदन पंत : भावी पत्नी के प्रति। पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० १६८।

निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव वार;
अधर-उर से उर-अधर, समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान ।"[1]

कहीं-कहीं पन्त ने मिलनानुभूति के अत्यन्त मांसल एवं मादक चित्र भी अंकित किये हैं । ऐसे अनुभूति-प्रधान चित्रों में से एक चित्र को यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा । कवि अपनी प्रेयसी से मिलने के क्षणों की याद दिलाता है--

"तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद ।"[2]

इसी प्रकार हिन्दी के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी मिलन की सुखात्मक अनुभूति के स्थल अनेक भरे पड़े हैं । ऐसे कवियों में महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर एवं हरिवंशराय बच्चन मुख्य हैं । मिलन के अत्यन्त मार्मिक चित्रों से उनका काव्य-लोक भरा हुआ है । दिनकर की "उर्वशी" एक तरह से उर्वशी और पुरुरवा के मिलन-प्रसंग पर आधारित एक महाकाव्यात्मक नाटक है ।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी मिलन के सुखात्मक एवं रोमांचक चित्रों का अंकन कर दिया है । कविवर नायनि सुब्बाराव ने अपनी प्रेयसी से मिलने के सुखमय क्षणों का यों चित्रण कर दिया है—

"देख उर-घड़ी मेरी कैसे चल रही है
यों कहकर मैंने प्रेयसि का कर
दबा-दबा कर लगा लिया है उर से ।
कर मृणाल हुआ कम्पायमान
छलका स्वेद-मधु कम्पित मुख कमल से

१. सुमित्रानन्दन पन्तः भावी पत्नी के प्रति । पल्लविनी । तृतीय सं० । पृ० १४६ ।
२. सुमित्रानन्दन पन्तः पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० २४४ ।

काजल लगे हुए दृग-कोरों में
बाँकी चितवन की चपलाएँ झट गईं उलझ ।"[1]

तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री ने भी अपने "हृदयेश्वरी" नामक काव्य में मिलन की सुखात्मक अनुभूति का अनेक स्थलों में वर्णन किया है। कवि एक स्थान पर वर्णन करता है कि उसकी प्रियतमा सन्नाटे में लज्जा के अवगुण्ठन में आकर कवि के गंडस्थल पर चुम्बन अंकित कर चली जाती है। उसी स्थान पर कवि दूसरे चित्र का इस प्रकार अंकन करते हैं–

"भास मुझे ऐसा होता है–
धीरे-धीरे लिपट पीठ से मेरे
बाँध मुझे कोमल कर-युग के आलिंगन में
प्रेयसि मुझ पर छा जाती है।"[2]

इन कवियों के अतिरिक्त वसवराजु अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव तथा दुव्वूरि रामि रेड्डी आदि कवियों में मिलन की मार्मिक अनुभूति का अंकन मिलता है।

संक्षेप में केवल यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मिलन की सुखात्मक अनुभूति को अपने काव्य में समुचित स्थान दिया है।

(२) **सौन्दर्यानुभूति :**– सौन्दर्य के प्रति आकर्षण होना मानव की सहज प्रवृत्ति है। सम्पूर्ण विश्व में वह सौन्दर्य का दर्शन कर आत्म-विभोर हो उठता है।

---

१. "गुंडे गडियार मेट्टु कोट्ट कौनुनो चूड्ड
मनुचु ब्रेयसि हस्तम्मु नन्मदीय
वक्षमुन गट्टिगा नोत्तिमपट्टिनाड
कर मृणालम्मु कंम्पिचे कम्पमान
वदन राजीवमुन स्वेद मधुवु सिंदे
कलिकि कादुकल् काकोन्न कन्नुगोनल
चिलिकि वाल्चूपु मेपपुलु चिक्कुवडिये।"
—नायनि सुब्बाराव : सौभद्रनि प्रणय यात्रा। पृ० ३८-३९।

२. "नाकु दो चुचुनुंडुनु नडुम--
मेल्ल मेल्लन नावीपु मीद व्रालि
कोमल कराल गाढोप गूहनंम्मु
चेसि प्रेयसि ननुग्रम्मि वैसिनट्लु
--तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० ११३।

विश्व में सौन्दर्य के होते हुए भी उसके अस्तित्व को अनुभव करने की शक्ति मनुष्य में होनी चाहिए। वही व्यक्ति या मनुष्य सौन्दर्य के पावन एवं मादक स्पर्शों के प्रति संवेदनशील हो सकता है। सौन्दर्यानुभूति सुखात्मक है। कविवर कीट्स ने सौन्दर्यमयी वस्तु को चिरन्तन आनन्द-प्रदायिनी मान लिया है।[1] सामान्य मानव से कवि तत्वतः अधिक सौन्दर्य-प्रेमी होता है और वह गृहीत सौन्दर्य को सशक्त एवं मूर्त भाषा में अभिव्यक्ति देता है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मुख्यतः नारी और प्रकृति में सौन्दर्य का साक्षात्कार किया है। अतः हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की सौन्दर्यानुभूति का अध्ययन इन दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(च) **नारी** :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि नारी-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये हैं। उन्होंने नारी के बाह्य एवं आभ्यन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन अनेक अवसरों पर किया है। मुख्य रूप से इन कवियों ने नारी-सौन्दर्य के इन दोनों पक्षों के अंकन में अत्यन्त जागरूकता का परिचय दिया।

नारी के बाह्य या शारीरिक सौन्दर्य को उन्होंने चित्रित किया है। उन्होंने नारी के पावन एवं उदात्त सौन्दर्य का साक्षात्कार कर असीम आनन्द का अनुभव किया है और उसे ही काव्य के माध्यम से प्रकाशित भी किया है। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, रामधारीसिंह दिनकर तथा बच्चन आदि हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के और रायप्रोलु सुब्बाराव, अब्बूरि रामकृष्णराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुब्बाराव, बसवराजु अप्पाराव तथा नण्डूरि सुब्बाराव आदि तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के कवियों ने नारी के बाह्य सौन्दर्य को एवं तज्जन्य सुख व आनन्द को व्यक्त किया है।

जयशंकर प्रसाद ने नारी-सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तरिक पक्षों का समाहार कर दिया। प्रसाद ने "आँसू" की नायिका के रूप-सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहारी-चित्र नयनों के समक्ष रख दिया है।

"बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से,
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से।
काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली,
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।"[2]

---

१. "A thing of beauty is a joy for ever".. Keats

२. जयशंकर प्रसाद : "आँसू" पृ० २१।

उपर्युक्त पंक्तियों में "आँसू" की नायिका के बाह्य रूप के वर्णन के साथ आन्तरिक सौन्दर्य का अंकन भी द्रष्टव्य है। कामायनी में श्रद्धा का सौन्दर्य भी रूपगत होते हुए भी आन्तरिक-सौन्दर्य-चेतना एवं प्रकाश से ओत-प्रोत है। यथा—

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लम्बी काया उन्मुक्त;
मधुपवन, क्रीड़ित ज्यों शिशु-साल, सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।"
"नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।
आह, वह मुख, पश्चिम, के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।
घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।"[1]

कविवर निराला ने भी नारी के बाह्य रूपगत सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका चित्रण किया है। सुमित्रानन्दन पन्त ने भी अनेक नारी-मूर्तियों के रूप-सौन्दर्य को अपने काव्य में बिखेर दिया है। ग्रन्थि की नायिका, आँसू की वालिका, भावी पत्नी, अप्सरा तथा ग्राम-युवती आदि नारी-मूर्तियों के रूपगत सौन्दर्य के नयनाभिराम चित्र उपस्थित किये गये हैं। ग्रन्थि की नायिका के रूप-सौन्दर्य को निहार कर कवि अनन्त आनन्द का अनुभव करने लगता है। कवि के ही शब्दों में—

"लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से—
(इन गढ़ों में रूप के आवर्त-से–
घूम फिर कर, नाव-से किस के नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौंदर्य के?)"[2]

ग्रन्थि की नायिका का उपर्युक्त रूप-सौन्दर्य कवि को इतना आकृष्ट कर लेता है कि उसे उन्होंने काव्य में साकार कर दिया है।

महादेवी भी नारी के रूपगत सौन्दर्य के प्रति चिर जागरूक रही हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में वह एक सद्यस्नाता रूपसि का सौन्दर्य अंकित करती हैं—

---

१. जयशंकर प्रसाद "श्रद्धा" सर्ग। कामायनी। पृ० ४२–४३।
२. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८–३९।

"रूपसि तेरा घन-केश-पाश ।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश-पाश ।
नभ गंगा की रजत धार में
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात ।
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास ।"[1]

इसी प्रकार हिन्दी के डा० रामकुमार वर्मा, रामधारीसिंह दिनकर तथा बच्चन आदि स्वच्छन्दतावाद के परिवेश में आने वाले कवियों के काव्य-जगत में नारी के रूपगत सौन्दर्य तथा उसकी मादक एवं भव्य अनुभूति के दृष्टांत उपलब्ध हो ही जाते हैं।

तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के कवियों ने भी नारी के रूप-सौन्दर्य का एवं तज्जन्य आनन्दानुभूति का वर्णन किया है। गुरजाड़ अप्पाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुब्बाराव तथा तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री आदि स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के प्रमुख कवियों ने नारी के रूप-दर्शन से आनन्द का अनुभव किया तथा नारी-सौन्दर्य का अंकन अपने काव्य में किया। गुरजाड़ अप्पाराव ने "लवणराजु कल" (लवणराजु का स्वप्न) नामक कविता में एक अछूत बालिका के रूप-सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"अर्ध खुले नयनों से
लहराती बिखरी अलकों से
अपनी निर्भय औ' गर्वीली
इठलाती चालों से—"[2]

वह उन्मद यौवन-भार-नत अछूत बाला राजा को अपनी ओर खींच लेती है। शिवशंकर शास्त्री अपनी प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसकी एक भंगिमा का नयनाभिराम चित्र यों प्रस्तुत करते हैं—

---

१. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १। छटा संस्करण। पृ० ५५।

२. "अरमोगिड्चिन कन्नुगवतो
चेदरि याडेडि मुंगुरुलतो
वेदुरु येरगनि विकमोप्पिन
बेडगु नडकलतो—"
—गुरजाड अप्पाराव। लवणराजु कल : "मुत्याल सरालु।" पृ० १५।

"अर्धोन्मीलित कर लोचन औ'
कमल-बदन लज्जा से नत कर
कोमल चंचल स्वर्ग-लता-सी
तुम चली सौध के भीतर ।।[1]

कविवर नायनि सुब्बाराव को भी उसकी प्रेयसि का रूप-सौन्दर्य मोह लेता है। कवि उसके सौन्दर्य-भार से दबकर आत्म-विभोर होकर यों वर्णन करते हैं—

"किसलय के पीछे छिपी हुई
कलिका की द्युतिमय आभा-सी
अस्फुट अधरों की ओट लिए
आँख मिचौनी करती मुसकान।
परिमल के उच्छ्वास और
निश्वास-पवन झोंकों से उद्वेलित
जलधि-तरंगों-सा उठ गिरकर
शोभित होता जो तेरा उर का स्पन्दन
कहे बिना ही कह जाता तुमको जलधि प्रणय का।"[2]

इसी प्रकार विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, वेदुल सत्य-नारायण शास्त्री, दुव्वूरि रामिरेड्डी, रायप्रोलु सुब्बाराव आदि तेलुगु के

---

१. "कन्नुलरमोड्चि आनन कमल मल्ल
रम्ममुगवाल्चि लज्जाभिराम गतिनि
ललित अंगम कांचन लतिक रीति
हर्म्य भागम्मु लोनिकि नरिगिनावु।"
—तल्लावज्झुल शिवशंकर शास्त्री। "हृदयेश्वरी" पृ० १०।

२. 'तलिरु टाकुल चाटुन गुलुकु मोल्ल
मोग्ग चिलिकेड तेलिकान्ति निग्गु करणि
विरिसि विरियनि पदेवुल वेनुक जेरि
मोलक चिरूनव्वु दागिलिमूत लाडु
परिमलोच्छ्वास निःश्वास पवन मुनुकु
कडलि तरगविधान निल्कडक लेचि
पडुजु सोगयिंचु नीयुरोवर्तनम्मु
प्रणय जलधि वीवनुचु जेप्पंकय चेप्पु।"
—नायनि सुब्बाराव : सौभद्रुनि प्रणय यात्रा। पृ० २६।

स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य-लोक में नारी का रूपगत सौन्दर्य और उसकी अनुभूति से निष्पन्न आनन्द का चित्रण मिलता है।

[अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के रूप-सौन्दर्य को देखकर अपरिमित आनन्द] का अनुभव किया और अपने भाव-प्रवण एवं कल्पनाशील प्रवृत्ति के कारण उसका अंकन भी अपने काव्य में किया है। दोनों भाषाओं के कवियों में अनेकों के वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म एवं विशद भी बन पड़े हैं। ये कवि नारी के रूप-सौन्दर्य की अनुभूति तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहते; अतः वे नारी के मानसिक या आंतरिक-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए हैं।

प्रसाद और पंत ने नारी के आन्तरिक सौन्दर्य के प्रति गहरी संवेदना प्रकट की है। प्रसाद ने आँसू की नायिका तथा श्रद्धा के वाह्य-सौन्दर्य के साथ आंतरिक सौन्दर्य का भी वर्णन प्रस्तुत किया है। पंत ने नारी के आंतरिक सौन्दर्य पर रीझकर उसका चित्रण यों किया है—

"सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन"[1]

"कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव,
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव।
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास।
चाँदनी का स्वभाव में मास
विचारों में बच्चों के साँस।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव, दुव्वूरि रामिरेड्डी आदि कवियों ने नारी के मानसिक या आंतरिक सौन्दर्य पर सम्यक् प्रकाश डाला है। गुरजाड़ अप्पाराव की **'पूर्णम्मा'** और **'कन्यका'**, रायप्रोलु सुब्बाराव की **'स्नेहलता देवी'** तथा दुव्वूरि रामिरेड्डी की **'नलजारम्मा'** ने अपने

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : उच्छ्वास। पल्लविनी। तृतीय संस्करण-पृ० ६३।
२. सुमित्रानंदन पंत : 'आँसू'। पल्लविनी। तृतीय संस्करण पृ० ७९।

प्राणों का भी उत्सर्ग कर त्याग एवं बलिदान की जो उज्ज्वल आदर्श की प्रतिमा खड़ी कर दी है, उससे ही भारतीय नारी के मानसिक-सौन्दर्य का परिचय अपने आप मिल जाता है। अंत में इतना ही कहना पर्याप्त है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि नारी के मानसिक-सौन्दर्य से भी पर्याप्त अभिभूत हुए हैं।

(२) **प्रकृति**—नारी और प्रकृति ही अनश्वर सौन्दर्य के स्रोत होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि नारी-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य पर भी मुग्ध हुये हैं। नारी और प्रकृति ने इन कवियों को आत्म-विभोर कर दिया और उनके सौन्दर्य के सम्पर्क में आकर उन्होंने अनन्त आनन्द एवं सुख का अनुभव किया है। उस अनुभूति आनन्द एवं सुख को इन्होंने प्रकृति के सौन्दर्यमयी बिम्बों के रूप में अंकित किया है। प्रकृति के दर्शन से प्राप्त आनन्दानुभूति का चित्रण हिन्दी और तेलुगु के प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों में मिलता है। उन्होंने प्रकृति में नारीत्व का आरोप किया है, उसके असंख्य चित्रों का अंकन किया है, उसमें मानवीय चेष्टाओं एवं क्रिया-व्यापारों का आरोप किया है तथा अपने व्यक्तित्व को भी उसीमें समाहार कर दिया है। प्रकृति और उसका सौन्दर्य स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्राण है। उन्होंने उसके साहचर्य का अनुभव किया और प्रकृति उनके व्यक्तित्व का एवं उनकी काव्य-चेतना का एक अविभाज्य अंग बन गयी। अतः यह अंश निर्विवाद है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर उसको अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के "प्रकृति-चित्रण" पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

(क) दुखात्मक अनुभूति

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी अदम्य दुखात्मक अनुभूति का प्रकाशन किया है। मानव-जीवन में दुखात्मक अनुभूति के अनेक कारण हो सकते हैं। स्वभावतः मानव विपरीत परिस्थितियों में मानसिक असुविधा एवं दुखानुभूति का अनुभव करता है। मानव की अभिलाषाओं एवं आशाओं की पूर्ति नहीं होती तो दुख एवं पीड़ा उसे ग्रसित कर लेती है। अतृप्त अभिलाषाएँ मानव-हृदय में क्षोभ, उद्वेग, असन्तोष, विषाद, निराशा आदि दुखात्मक अनुभूतियों को जन्म देती है। मनुष्य जब अपनी रागात्मक प्रवृत्तियों को जीवन में परितोष नहीं कर पाता तब दुख एवं निराशा का अनुभव करता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में दुःखानुभूति का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

१. रहस्यवादी दुखानुभूति।

२. प्रकृति चित्रण के माध्यम से दुख की अभिव्यक्ति।

३. प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति।

४. खैयामवादी दुखानुभुति ।

५. स्वतंत्र रूप से दुखानुभुति की अभिव्यक्ति ।

(च) रहस्यवादी दुखानुभुति :—अलौकिक परोक्ष सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है। रहस्यात्मक अनुभूति भारतीय अध्यात्म चिन्तन में कोई नवीन विषय नहीं। भारतीय अध्यात्म चिन्तन के मूलश्रोत उपनिषदों की रहस्यवादी उक्तियां ही हैं। ये रहस्यात्मक अनुभूतियाँ बुद्धि ग्राह्य नहीं हैं और उनका सम्बन्ध आन्तरिक अनुभूति से है। भारत में आधुनिक रहस्यवाद का जन्म रवीन्द्र की "गीताञ्जलि" (१९१३) से माना जाता है। उपनिषदों का अध्यातमवाद, वेदान्त का अद्वैतवाद, बौद्ध-दर्शन का दुःखवाद और सूफियों की प्रणयानुभूति की मादकता को ग्रहण कर लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक शैली में रचित काव्य को रहस्यवाद कहा गया है।

अध्यात्मवाद भौतिक समृद्धि के विरोधी होता है। इसी कारण रहस्यवादी कवि का जीवन और जगत के प्रति दुखवादी दृष्टिकोण को अपनाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त रहस्यवादी गीतों में वैयक्तिक निराशा, पीड़ा, विषाद आदि दुखात्मक अनुभूतियों का भी चित्रण मिलता है। आत्मा को प्रेयसी तथा परोक्ष सत्ता को प्रियतम मानकर आत्मा का प्रणय-निवेदन उसी प्रकार किया गया है, जिस प्रकार लौकिक प्रेयसी और प्रियतम के प्रणय में हुआ करता है। अतः वैयक्तिक प्रणय-निराशा तथा दुखानुभूति को रहस्यवादी गीतों में प्रमुख स्थान मिला है।

रहस्यवाद हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की एक प्रमुख प्रवृत्ति होने के कारण रहस्यवादी दुखानुभूति का चित्रण उसमें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। इसके विपरीत तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में न रहस्यवाद का कोई अस्तित्व है और न उसकी दुखानुभूति का। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। वैसे तो तेलुगु की काव्य-परम्परा में कबीर, जायसी जैसे रहस्यवादी कवियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था जिनसे तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण कर सकते थे। दूसरा कारण यह है कि तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर सूफियों का प्रेम-दर्शन, बौद्ध दर्शन का दुखवाद तथा रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव नहीं था, यदि हो तो भी अत्यन्त गौण रूप में। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, तथा तारा पांडेय के गीतों में रहस्यवादी दुखानुभूति के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। महादेवी वर्मा रहस्यवादी दुखानुभूति के अंकन में अन्य सभी कवियों को पीछे छोड़ देती हैं। निस्सन्देह महादेवी वर्मा हिन्दी रहस्यवाद की आलोक स्तम्भ हैं और उनके गीतों में दुखानुभूति एवं वेदना का स्वर इतना मर्मांतक है कि सारा विश्व उसके करुण उद्गारों में डूब जाता है। वह वास्तव में "नीर भरी दुख की बदली"[1] हैं।

---

१. महादेवी वर्मा : यामा। पृ० २२७।

(छ) प्रकृति-चित्रण के माध्यम से दुख की अभिव्यक्तिः—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण करके उस पर वैयक्तिक अनुभूतियों का आरोप किया है। वैयक्तिक दुखानुभूति के समय इन कवियों ने सागर को व्यथा से चीत्कार करते हुए सुना है तथा कवियों के कपोलों पर आँसुओं को देखा है। इन कवियों ने अपनी दुखात्मक अनुभूति की व्यंजना करने के लिए प्रकृति का उपयोग किया है।

प्रकृति·चित्रण के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी गहरी दुखात्मक अनुभूति की व्यंजना की है, जिसका अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(१) जीवन-संघर्ष से प्रकृति की ओर पलायन।
(२) प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति गहरी संवेदना।
(३) दुखानुभूति का प्रकृति पर आरोप।
(४) अभावमय दृश्यों के द्वारा दुखानुभूति की व्यंजना।
(५) दुखानुभूति की अवस्था में प्रकृति-निरीक्षण।

(१) जीवन-संघर्ष से प्रकृति की ओर पलायन :--मनुष्य जीवन-संघर्ष में अपने को पराजित पाता है तो उसका विश्वास सामाजिक न्याय से उठ जाता है। वह संसार के किसी एक स्थान में सान्त्वना पाना चाहता है। समाज की निष्ठुरता से आहत अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के कवि शैली का कथन है कि वह जीवन के काँटों में पड़ गया और रक्त की धारायें उसके शरीर से वह रही हैं।[1] कीट्स ने भी कटु विश्व के नियम से आहत होकर कहा है कि यह वही स्थान है जहाँ युवक पांडुर बन जाता है, तथा काया दुर्बल होने के पश्चात् उसकी मृत्यु होती है।[2] इसी प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि भी जीवन-संघर्ष से मुक्ति पाकर प्रकृति के रमणीय दृश्यों के बीच खो जाना चाहते हैं। सामाजिक-जीवन से विरक्त होकर रामनरेश त्रिपाठी का "पथिक" प्रकृति की गोद में विश्राम करने की कामना प्रकट करता है :—

"चारों ओर वहाँ पर विस्तृत केवल दुख ही दुख है।
दुख का है यह जाल, दीखता वहाँ क्षणिक जो सुख है।
माया है, मिथ्या, मृगतृष्णा, घोर प्रलोभन छल है
वह संसार विषाद, निराशा का बस क्रीड़ा स्थल है।

---

1. "I fall upon the thorns of life ! I bleed !"....Ode to the West Wind : P. B. Shelley.
2. "where the youth grows pale scepture thin and dies"··· Ode to Nightingale : John Keats.

"जाना नहीं चाहता हूँ मैं क्षण भर को भी जग में,
चलता रहूँ, यही इच्छा है, सदा प्रेम के मग में।
यह इच्छा है, नदी और नालों का वेश धरूँगा,
गाता हुआ गीत मस्ती से पर्वत से उतरूँगा।"[१]

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि सामाजिक धरातल को विषाक्त पाकर प्रकृति की ओर उन्मुख हो गये। जयशंकर प्रसाद भी विश्व के कोलाहल से बचने के लिए प्रकृति की गोद में विश्राम लेना चाहते हैं। उनकी यह मनोवृत्ति निम्नलिखित गीतांश में पायी जाती है—

"ले चल वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी–
निश्चल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।"[२]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रकृति की ओर सान्त्वना एवं आत्म-परितोष के लिये जाने वाले देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री हैं। कवि यह अनुभव करता है कि संसार उसे लोहे के पिंजर में बाँधना चाहता है और इसी कारण वह विहग बनकर वृक्षों की शाखाओं पर ही बैठना चाहता है।[3] कवि प्रकृति के अणु-अणु में विलीन होना चाहता है—

"पात में पात बन, फूल में फूल बन
डाल में डाल बन, कोमल किसलय बन
छिप जाऊँ मैं इस कानन में ?"[४]

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक (१९२० ई०) पृ० १४–१५।
२. जयशंकर प्रसाद "लहर" (१९३५ ई०) पृ० १०।
३. वेर्रिलोकम। हृदयंपु स्वेच्छ नेदुलु
"पंजरेवुन बंधिते ? पादपमुन
गुडियुन्दु मेल्लन्पुडु कौम्म मीद
अविमल प्रेम विहग दम्पतुल मगुचु।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कुतुलु। पृ० ५०।
४. "आकुलो नाकुनै पूवुलो वूपुनै
कोम्मलो गोम्मनै नुनुलेत रेम्मनै
ईयडवि दागिपोना।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ५।

इसी तरह की प्रवृत्ति कम या अधिक मात्रा में सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों में मिलती है।

(२) प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति गहरी संवेदना—कवि के मन की दुखानुभूति प्राकृतिक परिवेश में अपने को प्रकट करती है। दुखानुभूति के अवसर पर कवि अधिक संवेदनशील बन जाता है और वह प्रकृति के हरएक दृश्य को सहानुभूति से देखता है। स्वच्छन्दतावादी कवि का व्यथित हृदय एक मुरझाये हुये फूल को देखकर दुख का अनुभव करता है। महादेवी की संवेदनशीलता निम्नलिखित पंक्तियों में साकार हो उठी है —

"सो रहा अब तू धरा पर, शुष्क बिखराया हुआ
गन्ध कोमलता नहीं मुखमंजु मुरझाया हुआ।
\+ \+ \+
कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन।"[1]

बच्चन भी एक टूटते हुए तारे को देखकर दुखानुभूति का अनुभव करते हैं—

"देखो, टूट रहा है तारा।
हुआ न उडुगन में क्रन्दन भी,
गिरे न आँसू के दो कण भी,
किस के उर में आह उठेगी होगा जब लघु अन्त हमारा।"[2]

देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री एक मुरझाये हुये फूल के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हैं। फूल की करुण दशा देख कर कवि यों दुख का अनुभव करते हैं:—

"मुरझाया क्या छोटा फूल ?
अपनी मुग्धा को क्या उसने
त्यागी हैं सब आकाँक्षायें ?
अपनी सारी सुषमा, मृदुला
मिट्टी में क्या खोयी उसने।"[3]

---

१. महादेवी वर्मा : "मुर्झाया फूल" (१९२३ जनवरी) नीहार, पृ० ४४।

२. हरिवंश राय बच्चन : निशा-निमन्त्रण, (१९३७-३८) गीत संख्या ३२, पृ० ५६।

३. "चिन्निपूवे वाडेना
तन कन्ने वलपुल वाडेना
तन चिन्ने लन्नियु वन्नेलन्नियु
मन्नुलो गोलपोयेना ?—श्रीदेवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु - पृ० ४१।

कृष्णशास्त्री रजनी के अंचल में छिपे नक्षत्रों को विषादपूर्ण द्युतियाँ टपकाते हुये देखते हैं—

"काजल-सी साड़ी से कर शृंगार
पाँखें धारण कर आती है रजनी
जिसके तिमिराँचल के झोंके से
उडु-मणि जो बिखर गयी है,
वही विषादमयी द्युतियाँ टपकाती है।"[१]

कृष्णशास्त्री फूल को दुर्भर विषाद में तुहिनाश्रु विन्दुओं को ढुलकाते हुते पाते हैं।[२] तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी यह प्रवृत्ति कहीं-कहीं अत्यन्त गौण रूप में ही प्राप्त होती है।

(३) दुखानुभूति का प्रकृति पर आरोप—स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी दुखानुभूति का प्रकृति पर आरोप किया है। सुमित्रानन्दन पन्त निर्झरिणी के कलकल नाद को सुनकर दुखानुभूति का यों आरोप करते हैं–

"अलि! यह क्या केवल दिखलावा,
मूक-व्यथा का मुखर-भुलाव?
अथवा जीवन का बहलाव?
सजल आँसुओं की अंचल।"[3]

निर्झरिणी के कल-कल नाद में "मूक व्यथा" को पाना तथा उसके प्रवाह को 'आँसुओं की अंचल' के रूप में देखना कवि की दुखानुभूति की मानसिक अवस्था के अनुकूल पड़ते हैं। दुखानुभूति स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख विशेषता होने के कारण ये कवि प्रकृति को भी दुखी, व्यथित एवं आनन्दहीन रूप में देखते हैं। बच्चन को अम्बुधि और अम्बर में भी विकलता दिखाई पड़ती है–

---

१. "रेक्कलं दाल्चि परतेंचु रे लताँगि
काल काटुक चीर सिंगार मोदव
चीकटि चेरंगु विसरुन जेदरि योक्क
युडुमणि विशादपूरित श्रुनुलु राल्चु :–देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु-पृ० ६१।
२. "जलजल राल्चु दुर्भरविषादभुनं
दुहिनाश्रु बिन्दुवुलं--देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु पृ० १६।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : "निर्झरी" (१९२२ ई०) पल्लव, पृ० ९०।

"लहर सागर का नहीं शृंगार,
उसकी विकलता है;
अनिल अम्बर का नहीं खिलवार
उसकी विकलता है।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में अधिकतर कृष्णशास्त्री में इस प्रकार की दुखानुभूति का दर्शन होता है। कवि जलधर को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे जलधर ! तुम कभी-कभी वड़-बड़ ध्वनियों से अपने जीवन-भार को हटाने के लिये शायद किसी से अपने दुख की करुण कहानी सुना रहे हो–

"जलधर ! जीवन के सजल-भार
कभी हटाने, अन्यों से निज
करुण-कथा कहते हो शायद
कुछ अस्फुट मर्मर ध्वनियों में।"[2]

कृष्णशास्त्री के काव्य में ऐसे उदाहरण विरले नहीं हैं।

(४) अभावमय दृश्यों के द्वारा दुखानुभूति की व्यंजना—स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने वैयक्तिक जीवन की निराशा एवं दुखानुभूति की व्यंजना के लिए प्रकृति के शून्य, अभावमय तथा ह्रासोन्मुख दृश्यों का सजीव चित्र खींचा है। सुमित्रानन्दन पन्त ने अपनी "परिवर्तन" कविता में जैसे असंख्य प्राकृतिक दृश्यों का सजीव चित्रण कर दिया है जिससे कवि की आन्तरिक दुःखानुभूति का प्रकाशन होता है—

"अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उड़गन।"[3]

---

१. हरिवंश राय बच्चन : आकुल अन्तर (१९४०-४२ ई०) गीत संख्या १। पृ० १।

२. "प्रावृदम्बोधर स्वामि, जीवनंपु
भारमु तोलंगि पोव नेव्वारि केनि
कोरि नीसोदलबु जेप्पि कोन्दु वेमो
गोखुगु कोनुचुन्दवय्या, योक्कोक्क वेल।"-दे० कृष्णशास्त्री कुतुलु। पृ० ५७।

३. सुमित्रानन्दन पन्त : "परिवर्तन" (१९२७ ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ११९।

शिवमंगल सिंह "सुमन" अपने जीवन की दुखानुभूति की अभिव्यक्ति पतझड़ के उदासीन वातावरण के माध्यम से करते हैं--

"अब वह न सौरभ बात में,
अब वह न लाली पात में,
अवशेष यदि कुछ तो निशा के आँसुओं का हार ही
लो आ गया पतझार भी।"[1]

कविवर नरेन्द्र शर्मा अपने निराशमयी जीवन की दुखानुभूति की व्यंजना करने के लिए अपने को "मरघट के पीपल तरु" के रूप में अंकित करते हैं।[2]

इस प्रकार की दुखानुभूति तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में अधिकतर कृष्णशास्त्री में मिलती है। कविवर कृष्णशास्त्री के लिए भाद्रपद मास के अमावस की विद्युत विहीन रात्रि ही प्राण है।[3] इसके पश्चात् कवि प्रकृति के कुछ दृष्टान्तों से अपने दुख-दलित व्यक्तित्व की व्यंजना यों करते हैं--

"रात्रि-गर्भ में तम-छाया-सी
तमस्-हृदय में उलूक-रव-सी
....
निज विषाद में छिपा रहा मैं।"[4]

---

१. शिवमंगल सिंह "सुमन": "लो आ गया पतझड़", हिल्लोल (१९३७ ई) पृ० ६५।

२. "मैंने उठती लपटें देखीं
देखी बुझती जीवन-ज्वाला,
देखे मैंने नयन उमड़ते
औ' सूखी दृग-जल की माला;
सब नश्वर, मैं ही शाश्वत हूं,
मैं मरघट का पीपल तरु हूं :- नरेन्द्र शर्मा : प्रवासी के गीत। पृ० ५८।

३. "नाकु प्राणमे मेरपुले लेक युन्न
भाद्रपदंमासमुन नमावास्य रात्रि"--श्री दे० कृष्णशास्त्री कुतुलु पृ० ११०।

४. "रेयि कडुपुन चीकटि चाय बोले
तमसु टेडद दिवांध गीतमु विधान
....
नाविषादम्मुलो दागिनाड नेने"। श्री दे० कृष्णशास्त्री कुतुलु। पृ० ११०।

(५) दुखानुभूति की अवस्था में प्रकृति निरीक्षण :—दुखात्मक अनुभूति के समय कवि की मानसिक अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। दूखानुभूति के समय कवियों ने प्रकृति के अभावमय व्यापारों पर ही दृष्टिपात किया है। रात्रि की नीरवता, अन्धकार और निर्जनता में कवि अपने जीवन की शून्यता, निराशा तथा एकाकीपन का साम्य पाकर चीत्कार कर उठता है। इस प्रकार दुखानुभूति की मानसिक अवस्था के अनुकुल ही प्राकृतिक क्रिया-कलापों का निरीक्षण करता है। हिन्दी के सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में इस प्रकार की दुखानुभूति का चित्रण मिलता है।

जयशंकर प्रसाद के "कामायनी" काव्य में मनु श्रद्धा से विरक्त होकर सारस्वत प्रदेश जाने के पूर्व एक रात यों सोचने लगता है—

"जीवन निशीथ के अन्धकार।
तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम सा दुर्निवार
जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी सी उठती पुकार
× × × ×
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार[1]।"

उपर्युक्त पंक्तियों में मनु के मानव की दुखात्मक अनुभूति का चित्रण मिलता है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत दुखानुभूति की अवस्था में प्रकृति के अंगों को दुखानुभूति की लपेट में ले लेते हैं—

"देख रोता है चकोर इधर, वहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को,
वह, मधुप बिंध कर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय, रो[2]।"

कवयित्री महादेवी वर्मा अपनी दुखानुभूति की अभिव्यक्ति करने के लिए प्राकृतिक उपकरणों का उपयोग करती है। वे कहती हैं—

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

---

१. जयशंकर प्रसाद : "इडा सर्ग", "कामायनी"। पृ० १३०।
२. सुमित्रानन्दन पन्त : "ग्रन्थि", पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४४।

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली[1] ।"

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में इस प्रकार की दुखानुभूति कृष्णशास्त्री में विशेष रूप से मिलती है । कवि कभी अपने को एक वियोगिनी के हृदय में वेदना की रेखा मानते हैं,[2] और कभी वह जीवन में आशाओं के उठते देखकर उसी प्रकार कांप उठता है जिस प्रकार उदयाद्रि से चारों ओर फैलते हुए प्रकाश को देखकर उलूक घबरा उठता है ।[3]

अन्त में निष्कर्ष यह निकलता है कि उपर्युक्त सभी स्थलों पर प्रकृति-चित्रण का अपना कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है । वह केवल स्वच्छन्दतावादी कवियों की दुखानुभूति को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम मात्र है ।

(ग) प्रणय-वैफल्य जन्य दुखानुभूति

स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है । संयोग-पक्ष की अपेक्षा वियोग-पक्ष अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है । दुखानुभूति की तीव्रता वियोग-पक्ष में उतनी मार्मिकता के साथ व्यंजित नहीं की जा सकती जितनी प्रणय की असफलता तथा असफलताजन्य निराशा के प्रसंग में ।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति के अध्ययन करने के पूर्व उनकी प्रणय-निराशा के मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है । मूलतः अपनी प्रकृति के अनुसार स्वच्छन्दतावादी कविता यौवन की कविता है और उसके स्रष्टा युवक कवि । संभव है कि अत्यन्त भाव-प्रवण एवं कल्पनाशील होने के कारण युवक कवियों के प्रणय-वैफल्य ने काव्य में दुखानुभूति का स्वरूप धारण किया । यह भी सम्भव है कि जिस दुखानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है उसका संबंध कवि के वैयक्तिक जीवन से कुछ भी न हो । प्राचीनकाल से कवियों ने अपने काव्य को अधिक संवेदनशील बनाने के लिए

---

१. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि । भाग १ । गीत संख्या ६१ । पृ० ८६ ।

२. "ऐ नोक वियोगशालिनी हृदय राग
वेदना रेख,………… " श्री दे० कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० १०६ ।

३. "बड़ बड़ बडंकि पोदु जीवनपु गोनल
नेन्नडे नासकल तल मेल्तेनेनि
उभयसंध्याचलमुल नेदी वेलुंगु,
कलुग कलवरपोबु घूकम्मु बोले" ।—श्री दे० कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृ० ११० ।

दुखात्मक अनुभूति को अधिक मात्रा में अभिव्यक्ति दी। परन्तु हिन्दी और तेलुगु के अधिकाँश स्वच्छन्दतावादी कवियों के वैयक्तिक जीवन में प्रेम-वैफल्य के दृष्टान्त स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। युवक स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखात्मक अनुभूति के आधार को निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित दो पहलुओं पर दृष्टि-पात करना आवश्यक है।

(अ) युवकों की मानसिक अवस्था।

(आ) युवकों के मन में दुखानुभूति को उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ।

(अ) युवकों की मानसिक अवस्था: युवावस्था में कोमलता एवं भावुकता के आधिक्य के कारण प्रकृति एवं नारी के सौन्दर्य की ओर युवक आकर्षित हो जाते हैं। सौन्दर्य की आराधना और आत्म-बलिदान की भावना उनमें अधिकाँश पायी जाती है। यदि उनकी उक्त कोमल वृत्तियाँ आहत हो जाती हैं तो वे अनन्त पीड़ा का अनुभव करने लगते हैं। उनका मानस विक्षुब्ध हो उठता है और प्रेम के क्षेत्र में हारने वाला युवक संसार की ओर से एक प्रकार विरक्त हो जाता है। स्वभाव में कल्पनाशील एवं भाव-प्रवण होने के कारण युवक प्रणय के क्षेत्र में हृदय का पूर्ण समर्पण चाहता है जो उसे वास्तविक जीवन में मिलना कठिन है। अतः प्रणय-व्यापार की असफलता उसकी दुखानुभूति को सौ गुना बढ़ा देती है और वह काव्य में दुखानुभूति की मार्मिक व्यंजना करने लगता है। एक असफल प्रेमी बड़ी सरलता से कवि बन जाता है।[1] महाकवि शेक्सपियर ने प्रेमी और कवि को एक ही परिधि में रख दिया है।[2]

(आ) युवकों के मन में दुखानुभूति को उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ:—स्वच्छन्दतावाद के अधिकांश कवि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। ये कवि प्रवृत्ति से स्वच्छन्द होने के कारण मर्यादावादी अधिकारियों के अधीन रहना

---

१. "वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

—सुमित्रानन्दन पन्त : 'आँसू' (१९२१ ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७३।

२. "The poet, the lunatic and the lover are all of imagination compact." —Shakespeare–Midsummer, Night's dream.

नहीं चाहते थे। इसके अतिरिक्त स्वच्छन्दतावादी युवक कवि प्रणय-व्यापार में सामाजिक बन्धनों एवं रूढ़ियों को स्वीकार करना नहीं चाहता था। वह युवक और युवती के स्वच्छन्द प्रणय का समर्थक था। भारत की सामाजिक व्यवस्था युवती और युवकों के स्वच्छन्द प्रणय को सहन नहीं कर सकती थी। ऐसी दशा में युवकों के प्रणय-व्यापार में असफलता की ही अधिक सम्भावना थी।

नवयुवक अपने प्रणय-व्यापार में जाति, कुल का कोई बन्धन स्वीकार करना नहीं चाहता था, जबकि भारत का रूढ़िवादी समाज किसी भी परिस्थिति में स्वच्छन्द प्रणय को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। समाज की इन परिस्थितियों ने युवक को उदासीन, दुखवादी एवं व्यक्तिवादी बना दिया।

भारत में विश्वविद्यालय के वातावरण में युवक और युवतियों के पारस्परिक सम्पर्क के कारण प्रणय-सम्बन्ध भी यदि हो जाते थे तो समाज उनका कोई सम्मान नहीं करता था। युवक और युवती की इच्छाओं के विरुद्ध उनका विवाह अन्य दूसरे के साथ हो जाता था। हताश प्रेमियों के पास दुख एवं विषाद को झेलने के अतिरिक्त अन्य और कोई चारा नहीं था। कुछ युवक एवं युवतियों का विषाद इतना बढ़ जाता है कि वे उसके भार को वहन भी नहीं कर सकते और इसी कारण मृत्यु-कामना भी उनमें जगने की अधिक सम्भावनायें थी।

प्रणय-विफलता सर्वथा विवाह के पूर्व ही नहीं मिलती, प्रत्युत् उसका अनुभव दाम्पत्य जीवन में भी सम्भव था। भारतीय समाज की वैवाहिक प्रथा में दाम्पत्य-जीवन की असफलता की ही अधिक सम्भावनायें हैं। सामाजिक बन्धनों तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण योग्य कन्या का योग्य वर से विवाह नहीं होता था या योग्य वर का योग्य कन्या से। अतः युवकों को अभीष्ट जीवन-साथिन मिलना भी कठिन हो जाता था जिसके फलस्वरूप प्रणय-वैफल्य की अधिक सम्भावनायें रह जाती थीं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का आधार अतृप्त इच्छायें व अभिलाषायें तथा दमित आकाँक्षायें ही हैं।

(ग) हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति:—उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति पर विचार किया जाय।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का विशेष रूप में अंकन किया है। जयशंकर प्रसाद के "आँसू", सुमित्रानन्दन पंत के **"ग्रंथि"**, **"आँसू"**, **"उच्छ्वास"**, महादेवी के **"नीहार"**, नरेन्द्र शर्मा के **"प्रवासी के गीत"**, बच्चन के **"एकान्त संगीत"**, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के **"कृष्ण पत्रमु"**,

"प्रवासमु", "उर्वशी", तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री के "हृदयेश्वरी", नायनि सुब्बाराव के "सोमद्वनि प्रणय यात्रा", वेदुल सत्यनारायण के "दीपावली", तथा विश्वनाथन सत्यनारायण के "गिरिकुमारनि प्रेम गीतालु", तथा "वरलक्ष्मी त्रिशति", आदि काव्यों में उन कवियों की वियोगजन्य या प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का साँगोपांग वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त स्वच्छन्दतावादी काव्यों में प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का चित्रण प्रथम पुरुष की शैली में किया गया है। दुख-गीतों या प्रणय-गीतों का नायक स्वयं कवि ही है। प्राय: जैसा देखा जाता है कि कवि का किसी लज्जाशीला सुन्दरी के साथ परिचय हो जाता है और नयनों की भाषा में हृदयों का आदान-प्रदान चलता है। उसके पश्चात् कवि प्रणय-व्यापार में वंचित होकर पीड़ा का शिकार बन जाता है। कुछ कवियों ने प्रणय-वंचना तक की व्यंजना नहीं की।

जयशंकर प्रसाद "आँसू" में अतीत कालीन प्रणय की स्मृतियों में डूब जाते हैं। कवि अतीत के वैभव पर आंसू बहाने लगता है। वे कहते हैं—

"जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।"[1]

कवि ने आँसू में अपनी प्रेयसी के प्रति अनन्य अनुराग प्रकट किया है। उसकी वियोगजन्य दुखानुभूति के भार से कवि दब जाता है। परन्तु कवि कहीं-कहीं प्रणय-वंचना की व्यंजना भी करता है—

"छलना थी तब भी मेरा
उस पर विश्वास घना था।"[2]

प्रणय-वंचित होते हुए भी कवि उस पर गहरा विश्वास रखता था। प्रसाद की उपर्युक्त पंक्तियाँ शेक्सपियर की उसी प्रकार की पंक्तियों से मेल रखती हैं।[3]

सुमित्रानन्दन पन्त ने 'ग्रन्थि', 'आँसू' और 'उच्छ्वास' में अपनी प्रणय-विफलता तथा तज्जन्य दुखानुभूति की मार्मिक व्यंजना की है। कवि अपनी प्राण-प्रिया का विवाह किसी अन्य के साथ होते देखकर क्रन्दन करने लगते हैं—

---

१. जयशंकर प्रसाद : "आँसू"। एकादश संस्करण : पृ० १४।
२. जयशंकर प्रसाद : "आँसू"। पंचम संस्करण : पृ० २४।
३. "I doth believe her though I know she lies"—Shakespeare.

"हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"[1]

कवि प्रेम-विफलता के पश्चात् आत्म-अकिंचनता का अनुभव करता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसे और कोई काम्य वस्तु इस संसार में नहीं है। वह रो-रोकर अपने हृदय के भार को हल्का करना चाहता है। वह अपने हृदय को सम्बोधित कर कह उठता है—

"पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी।"[2]

कवि आखिर यह अनुभव करता है कि अपनी प्रेयसी के स्थान को सम्पूर्ण विश्व का वैभव भी भर नहीं सकता—

"त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को।"[3]

कविवर बच्चन ने अपनी प्रणय-निराशा का कारण प्रणय—वंचना ही कहा है। कवि जिस सुन्दरी की आराधना कर रहा था, जिसके समक्ष अपने को उसने समर्पित किया था, उसीने कवि को ठुकरा दिया तो कवि दुखानुभूति में डूब कर यों लिखता है—

"मेरे पूजन-आराधन को,
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को,
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा।
तब रोक न पाया मैं आँसू।"[4]

इसी प्रकार हिन्दी के अनन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वियोगजन्य तथा प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का चित्रण किया है।

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : ग्रन्थि (१९२० ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४२।
२. वही। पृ० ४३।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : 'आँसू' (१९२१ ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७९।
४. हरिवंशराय बच्चन : एकान्त संगीत (१९३८-३९ ई०) गीत संख्या ३७, पृ० ५३।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रथमतः कृष्णशास्त्री में उपर्युक्त दुखानुभूति की अभिव्यक्ति सम्यक् मात्रा में मिलती है। कवि कहता है कि जीवन में निराश होते हुए भी प्राणों के निकल जाने के पश्चात् भी अपनी प्रेयसी को वह छोड़ नहीं सकता। वह अपनी प्रिया की छाया की भांति रहकर उसके सम्पूर्ण क्लेश हरते हुए उसे सुख पहुँचायेगा।

"उलझ-उलझ कर जीवन-निराश के हाथों में
प्राणों के जाने पर भी, छोड़ नहीं पाता मैं तुझको
छाया बनकर मैं तेरा ही अनुसरण करूँगा
हर सारे संताप और दुख, तुझे सदा मैं सुखी रखूँगा।"[1]

कविवर नायनि सुब्बाराव ने भी प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति का चित्रण किया है। कवि कहता है कि उसके मामा ने अपनी बहिन से कहा था कि वे अपनी बालिका वत्सला को विवाह में कवि के हाथों में सौंप देंगे। परन्तु अज्ञात कारण से कवि के मामा ने अपनी बालिका के मनोरथ और अपने वायदे के विरुद्ध कवि के साथ वत्सला का विवाह नहीं किया। उस अवसर पर कवि अपनी निराशा को यों व्यक्त करता है—

"आस-छुरी से सत्यांकुर के
कट, नामरहित होने के कारण
शायद देख न पाता क्या वह
हमारे मन बांधने वाले
प्रणय-बन्धन का कट, मिल जाना।"[2]

बसवराजु अप्पाराव ने भी अपनी प्रणय-वैफल्य-जन्य तथा प्रणय-वंचना-जन्य दुखानुभूति की व्यंजना की है। निम्नलिखित दोनों छन्दों में कवि ने प्रणय-वंचना तथा दुखानुभूति को व्यक्त किया है—

---

१. "जीवितंपु निराशचे जिक्कि चिक्कि
प्राणमे पोयिननु निन्नु वायलेनु।
चायनै पोयि वेन्वेंट सागुचुंडु,
नोवेत हरिन्तु सुखमेल्ल नीकै युंतु।" —दे० कृष्णशास्त्री कृतुलु : पृ० ३९।

२. "आसयनु कत्तिकोत सत्यांकुरंबु
मुक्कलै पेरु लेक पोवुटकु नेमि
कांच डेमो मामनब्रुल गट्टिवेंचु
प्रणय वन्धम्मु नरकुल्लु पड्डुट यकट।
—नायनि सुब्बाराव : सौभद्रुनि प्रणय यात्रा। पृ० १०।

"रीझ रहा मैं समझ तुम्हें जब
निज प्राणों से बढ़कर प्रिय तब
घन में चपला के खेल सदृश
मुस्कानों से मुझे रिझाकर
छल गयी मुझे क्यों प्राण-सखी ?[1]

इस प्रकार हिंदी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक प्रणय, निराशा एवं प्रणय-वैफल्य-जन्य दुखानुभूति को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। इस प्रसंग में तो अत्याधिक समानतायें उनके बीच पायी जाती हैं।

(घ) खैयामवादी दुखानुभूति :—

खैयामवादी दुखानुभूति हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के अन्तिम चरण में उपलब्ध होने वाले कवियों में अधिक मिलती है। ऐसी दुखानुभूति एवं निराशा की अभिव्यक्ति देने वाले कवियों में बच्चन प्रमुख हैं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में इस प्रकार की दुखाभिव्यक्ति नहीं मिलती। यह तो दूसरा विषय है कि कृष्णशास्त्री, रायप्रोलु सुब्बाराव तथा दुव्वूरि रामिरेड्डी आदि तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख कवियों ने खैयाम की रुबाइयों का तेलुगु अनुवाद तो प्रस्तुत किया। वैसे तो इस प्रकार का अनुवाद पन्त ने भी हिन्दी में प्रस्तुत किया। केवल अनुवाद के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि उपर्युक्त कवि खैयाम के अनुयायी हैं या खैयाम की दुखानुभूति को उन्होंने अपनाया है। अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि हिंदी के बच्चन की खैयामवादी दुखानुभूति तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के किसी कवि में प्राप्त नहीं होती।

(ङ) स्वतन्त्र रूप से दुखानुभूति की अभिव्यक्ति :—

स्वच्छन्दतावादी काव्य में दुखानुभूति की अभिव्यक्ति स्वतन्त्र रूप से भी पायी जाती है। इस प्रकार की दुखानुभूति का कारण अन्य कोई भी हो सकता है जिसका विवेचन उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत नहीं किया गया है। स्वतन्त्र रूप से दुखानुभूति की अभिव्यक्ति को दो शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है :—(अ) दार्शनिक दुखानुभूति, (आ) वैयक्तिक दुखानुभूति।

---

१. "मेरुपु दीगे मोगिलु तोड मेलमाडु
नट्लु चिरुनव्वुलन्नन्नु नलर जेसि
प्राणमुल कन्न नीवे ना प्राणमनुचु
मुरियु चुंडग नन्निन्त मोसगिते।"
—बसवराजु अप्पाराव : बसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ७४।

(१) दार्शनिक दुखानुभूति :—दार्शनिक दुखानुभूति में जीवन और जगत की असारता, अनित्यता, क्षणिकता आदि का चित्रण हुआ है जिसका सम्बन्ध रहस्यवाद से नहीं है। प्राचीन भारतीय दर्शन जीवन और जगत की अनित्यता पर बल देकर मौक्ष की कामना करता था। परन्तु स्वच्छन्दतावादी कवि जीवन और जगत की परिवर्तनशीलता एवं क्षणभंगुरता पर आंसू बहाने लगता है। वह सृष्टि के इस कठोर नियम से घबरा उठता है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त अपनी "परिवर्तन" नामक कविता में जीवन और जगत की अनित्यता को देखकर अनन्त दुःख का अनुभव करते हैं :—

"हाय ! सब मिथ्या-बात
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी-साँस
वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती-जीवन है भार।
आज पावस-नद के उद्‌गार
काल के बनते चिह्न-कराल;
प्रात का सोने का संसार
जला देती सन्ध्या की ज्वाल।"[१]

सुमित्रानन्दन पन्त की भाँति दिनकर भी जीवन और जगत को दुखमय मानते हैं। उनके अनुसार जीवन की हर एक श्वास मृत्यु को निकट बुलाती है। अतः कवि ने संसार को "विनश्वरता का एक चिरन्तन राग" एवं जीवन को "क्षणभंगुरता का इतिहास" माना है—

"हँसते हो तो हँसो, अश्रुमय है जीवन का हास,
यहाँ श्वास की गति में गाता झूम-झूम कर नाश
क्या है विश्व ? विनश्वरता का एक चिरन्तन राग,
हँसो, हँसो जीवन की क्षण भंगुरता के इतिहास।"[२]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में दार्शनिक दुखानुभूति का सर्वथा अभाव है। वैसे तो दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव इन कवियों पर नगण्य है।

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "परिवर्तन" (अप्रेल १९२४) पल्लव : पृ० ११६।
२. रामधारीसिंह दिनकर : "समाधि के दीप" से—रेणुका। पृ० ७०—७१।

(२) वैयक्तिक दुखानुभूति :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक दुखानुभूति को स्वतन्त्र रूप में प्रकट किया है। प्रणय-निराशा के अतिरिक्त और अनेक कारण उनकी वैयक्तिक दुखानुभुति के पीछे हो सकते हैं जिनका विवेचन पीछे नहीं हुआ है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में सामान्य रूप से व्यथा, वेदना, पीड़ा और रुदन आदि दुखात्मक अनुभूतियों की व्यंजना होती रही है। वैयक्तिक दुखानुभूति का विवेचन निम्नलिखित चार शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) पश्चाताप और विषाद्।

(२) जीवन में उदासीनता और जड़ता।

(३) दुखवादी दर्शन का प्रभाव।

(४) आत्माश्रयी करुणा और मृत्यु-कामना।

(क) पश्चाताप और विषाद् :--हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने परिस्थितियों की विवशता के कारण पश्चाताप और विपाद को अभिव्यक्ति दी। निराला ने अपनी "राम की शक्ति पूजा" में राम के मुँह से जो कुछ कहलवाया था, वह राम की अपेक्षा स्वयं निराला का, जीवन-संघर्ष में हार कर, क्षण भर के लिए पश्चाताप और विषाद को वाणी देना ही है। यथा—

"धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ?"[१]

पश्चात्ताप एवं विपाद के रूप में दुखानुभूति की अभिव्यक्ति सुमित्रानन्दन पन्त और बच्चन में भी पायी जाती है। दुखानुभूति एवं विपाद की ओर सहज झुकाव होने के कारण बच्चन लिखते हैं—

'मैं जीवन में कुछ कर न सका
जग में अंधियारा छाया था
मैं ज्वाला लेकर आया था
मैंने जलकर दी आयु बिता
पर जगती का तम हर न सका
मैं जीवन में कुछ कर न सका।"[२]

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : "राम की शक्ति पूजा" (१९३६ ई०) अपरा। तृ० सं०। पृ० ४४।

२. हरिवंशराय बच्चन : "एकान्त संगीत" (१९२८-३० ई०) गीत संख्या २३, पृ० ३७।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि पश्चात्ताप, विषाद एवं निराशा को प्रकट करते हुआ दिखाई पड़ता है।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री में ही पश्चाताप और विषाद अत्यन्त घनीभूत हो गए हैं और कवि अपने काव्य-भर में दुखानुभूति को व्यक्त करते हुए प्रतीत होता है। कवि निम्नांकित पंक्तियों में विषादपूर्ण छवियाँ यों बिखेरता है—

"मुझे न उगादियाँ है,[१] न उपायें
हेमन्त के अनन्त तम का निशीथ हूँ मैं।
मुझे काल का कभी नहीं है एक रूप
मेरे शोक-सा, मेरे जीवन-सा, मुझ-सा।"[२]

तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों में ऐसी दुखानुभूति प्रायः देखने को अधिक नहीं मिलती है।

(ख) जीवन में उदासीनता और जड़ता :—मानव-जीवन में कभी ऐसा निराशपूर्ण वातावरण छा जाता है कि उसमें कोई आशा का तत्व शेष नहीं रह जाता। उस समय निराशा अत्यन्त उग्र रूप धारण भी कर लेती है अथवा जीवन का परिस्थितियाँ मानव को नीरस एवं गतिहीन बना देती हैं। उस समय हृदय में उठने वाली दुखानुभूति के भार से मानव स्वयं घबरा उठता है। कविवर निराला अपनी अकेली बेटी सरोज की अकाल मृत्यु पर आँसू बहाता है और अन्त में ऐसी उद्गारें प्रकट करता है जिसे पढ़कर पाठक भी द्रवित हो उठता है। कवि अपने जीवन को एक दुखपूर्ण गाथा कहता है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज, जो नहीं कही।"[3]

---

१. "उगादि"—आन्ध्र प्रान्त के नव वर्ष के आरम्भ पर मनाया जाने वाला त्यौहार।

२. "नाकुगादुह लेवु ना कुपल्सुलु लेवु
नेनु हेमन्त कृष्णानन्त शर्वरिनि।
नाकुकाल म्मोकरूने कादु रुपु ना
शोकम्मु बलेने, ना ब्रतुकुवले, नावलेने।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु—पृ० १०१।

३. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" : "सरोज स्मृति" (१९३५ ई०), अपरा। तृतीय संस्करण। पृ० १४८।

निराला के जीवन के अन्तिम वर्षों में उन पर निराशा इतनी अधिक छा गई है कि कवि एक तरह से ऊब गया है। वह अपने अतीतकालीन वैभव का स्मरण कर यों विह्वल हो उठता है—

"स्नेह-निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा।
मैं अलक्षित हूँ, यही कवि कह गया है।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि शिवशंकर शास्त्री पुण्यमास की पूर्णिमा की रात अपनी दिवंगत पत्नी की याद करके विह्वल हो उठता है—

"अनिवार्य रूप से आती हैं आगे भी पूर्णिम की रातें
यथारीति से प्रमुदित होकर सारा अगजग शोभा पाती
साकार मूर्ति वह स्वच्छ मोद की जिसके मर मिट जाने से
शीतल किरणें ज्वालाओं-सी, हाय, हृदय मेरा दहती है।"[2]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कहीं-कहीं उदासीनता और जड़ता का भी परिचय दिया है।

(ग) दुखवादी दर्शन का प्रभाव :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कभी-कभी दुखानुभूति का कोई कारण भी दिखाई नहीं पड़ता। उनके लिए दुखानुभूति एक मधुर साधना और दुख उनके लिए एक चिरन्तन साथी बन गया है। जैसे कवियों में महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त रामकुमार वर्मा, हरिवंशराय बच्चन तथा देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री अत्यन्त प्रमुख हैं।

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा। तृतीय संस्करण। पृ० १३५।

२. "वंच्चुचुनु‌ड्डु मुंदु ननिवार्यं विधंबुन पूर्णिमा निशल्,
मुच्चटमीर लोकमु प्रमोदमुनोन्दु यथांविधाम्बुगन्,
अच्चपुमोदसारमगु नाभे गतिंचुटचेत चन्द्रिकल्
चिच्चुल माड्कि ना हृदयसीम दहिंचुचु नुंडुने कदो।"
—शिवशंकर शास्त्री : 'पुण्य पूर्णिमा'। वैतालिकुल। पृ० २२७।

सुमित्रानन्दन पन्त और कृष्णशास्त्री तो कभी-कभी दुखानुभूति को सुखदायिनी मानते हैं।

"आज में सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में;"[1]

कृष्णशास्त्री भी दुखानुभूति को सुखदायिनी मानते हैं—वे कहते हैं—

"मेरे जलते उर में छिपकर कितने ही कल्पों से
मर्म वेदना का सुख, जो है मुझे प्रीतिकर प्राणों से,"[2]

महादेवी भी दुख एवं पीड़ा की साधना में तल्लीन रहती हैं। कसक, पीड़ा, तथा दुख एवं वेदना के आधिक्य ने मानों दुख को ही उनका साध्य बना डाला हो। वे कहती हैं—

"तुम को पीड़ा में ढूंढ़ा
तुम में ढूंढूँगी पीड़ा।"[3]

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल"[4] "झरते नित लोचन मेरे हों"[5] "मेरा सजल मुख देख लेते यह करुण मुख देख लेते।"[6] "मैं नीर भरी दुख की बदली"[7] आदि उद्गार महादेवी को दुखवादी प्रमाणित करते हैं। महादेवी के जीवन में दुखानुभूति ने एक साधना का रूप धारण कर लिया है। ठीक उसी प्रकार कृष्णशास्त्री की दुखानुभूति विभिन्न रूप धारण करती है। दुखानुभूति की गहनता एवं उसकी विराटता की दृष्टि से महादेवी और कृष्णशास्त्री में अत्यधिक समानता पायी जाती है। दोनों दुखवादी हैं। दुख उनके लिए अत्यन्त परिचित जीवन-साथी है। ऐसा लगता है कि दोनों का काव्य दुख से ऐसा लिपट गया है कि उनको पृथक करना सुलभ नहीं। महादेवी की भाँति कृष्णशास्त्री भी अनन्त विरह एवं अनन्त दुखानुभूति के कवि हैं। कविवर कृष्णशास्त्री अपना परिचय देते हुए कहते हैं—

---

१. सुमित्रानन्दन पन्तः "ग्रंथि" पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ५३।

२. "इन्निकापल्लु कालु नायेद्र नडंगि
नाकु प्रागमे यगु वेदना सुखम्मु"—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ११८।

३. महादेवी वर्मा : यामा। पृ० ८४।

४. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १। गीत संख्या : ३६। पृ० ५८।

५. वही। गीत संख्या ४२। पृ० ६५।

६. वही। गीत संख्या ५८। पृ० ८५।

७. वही। गीत संख्या ६१। पृ० ८६।

"निश्वासों के ताल-वृंत्त औ'
आँसू की लड़ियाँ हैं मुझ में,
आनन्द मुझे देने वाली
दुख की निरुपम निधियाँ भी हैं।"[1]

इस प्रकार कृष्णशास्त्री में दुखानुभूति ने एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व पा लिया है।

(ट) आत्माश्रयी करुणा और मृत्यु-कामना:—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के आत्माश्रयी करुणा (Self pity) और मृत्यु-कामना आदि दुखात्मक अनुभूति के अन्य रूपों की भी अभिव्यक्ति पायी जाती है। इस तरह की प्रवृत्ति सुमित्रानन्दन पन्त, नरेन्द्र शर्मा तथा हरिवंशराय बच्चन और कृष्णशास्त्री में पायी जाती है। कविवर पंत और कृष्णशास्त्री अपने दुखी जीवन से स्वयं द्रवित हो उठते हैं और करुणार्द्र उद्गार उनने मुँह से निकलते हैं:—

आह, यह किस का अंधेरा भाग्य है?
प्रलय छाया-सा, अनन्त विषाद-सा।
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों सा यह अभय है घूमता?
हृदय! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है?
धूम ही है शेष अब जिस में रहा।"[2]

कृष्णशास्त्री अपने करुणार्द्र उद्गारों के साथ मृत्यु-कामना करते हैं:—

"मर रहा हूँ, मैं यहां, मेरे लिए
सजल होती नहीं कोई आँख भी"[3]

---

१. "नाकु निश्वास ताल वृन्तालु कलवु,
नाकु गन्नीटि सरुल दोन्तरलु कलवु,
नाकमूल्य सपूर्वमानन्द मोसगु
निरुपम नितान्त दुःखंपुनिधुलु कलवु—"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ५८।

२. सुमित्रानन्दन पंत : 'ग्रन्थि' (१९२० ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ५५।

३. "एं तु मरबिंचु चुन्नानु; इट्टु नशिंचु
ना कोरकु चेम्मगिल नयनम्मु लेदु,
——श्रीदेवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० १११।

आगे चलकर कवि स्वयं अपनी मृत्यु-शैय्या बिछाते हैं और मृत्यु के समय अपने ऊपर करुणा दिखाने लगते हैं:—

"बिछा दिया मैंने मृत्यु-तत्व ।
अपने को दी स्वयं विदाई ।
मैंने अपने ऊपर पड़कर
पीड़ा लेकर उर में, रोया"[1]

कृष्णशास्त्री कहते हैं कि वह जीवित मृत्यु बनकर प्रवास के अंधकार की नीरव समाधि में कुढ़कर जमीन में गढ़ जाता है ।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में बच्चन में आत्माश्रयी करुणा तथा मृत्यु-कामना दिखाई पड़ती है । कवि के अनेक गीत उनकी मृत्यु-कामना को व्यक्त करते हैं:—

"मेरे उर पर पत्थर धर दो ।
जीवन की नौका का प्रियधन ।
लुटा हुआ मणि-मुक्ता-कंचन
तो न मिलेगा, किसी वस्तु से इन खाली जगहों को भर दो ।
मेरे उर पर पत्थर धर दो । '[2]

इसके अतिरिक्त कविवर बच्चन दुखानुभूति के भार से संत्रस्त होकर मरना ही अपने लिए श्रेयस्कर समझता है–

"आओ सो जायें, मर जायें ।"[3]

अथवा

"जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अंगारे ।।[4]

---

१. "ना मरण शय्य परचु कोन्नानु नेने ।
नेने नाकु वीड्कोलुपुविन्पिचिनानु ।
नेने नापयि वालिना, नेने जालि
नेद नेद गर्दिचिनानु, रोदिंचिनानु
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृ० १११ ।

२. हरिवंशराय बच्चन : एकान्त संगीत (१६३८-३६ ई०) गीत सं० २, पृ० १८ ।

३. हरिवंशराय बच्चनः निशा-निमन्त्रण (१६३७-३८ ई०) गीत सं० २३, पृ० ४७।

४. हरिवंशराय बच्चन : एकान्त संगीत (१६३८-३६) गीत सं० ७, पृ० २३ ।

मृत्यु-कामना कृष्णशास्त्री और बच्चन में अधिकतर पायी जाती है। ऐसा लगता है कि ये दोनों कवि जीवित होकर ही अपनी मृत्यु को देखना चाहते हैं। यह मृत्यु-कामना आत्माश्रयी करुणानुभूति या दुखानुभूति का और एक रूपान्तर मात्र है।

उपसंहारः—

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में अनुभूति-पक्ष को अत्यन्त प्रमुख स्थान दिया है। उनके काव्य में सुखात्मक अनुभूति से कहीं अधिक दुखात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है। दुख की ओर अग्रसर होना वास्तव में स्वच्छन्दतावाद की मूलभूत प्रवृत्तियों में से एक अत्यन्त प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसका विवेचन यहाँ किया गया है। दुखानुभूति में संवेदनशीलता अधिक रहने के कारण कवि संपूर्ण विश्व को अपनी रागात्मक वृत्ति में डुबो देता है। यह और एक कारण है, जिससे स्वच्छन्दतावाद में दुखानुभूति को इतना प्राधान्य मिला है।

४. भावना की तीव्रताः—

भावना की तीव्रता स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषता है। भावना अनुभूति तथा विचार का मध्य-बिन्दु है जहाँ अनुभूति की तीव्रता एवं विचारों की शुष्कता अपने आप समाप्त हो जाती है। राग-तत्व की प्रधानता होने के कारण भावना में तीव्रता अपने आप आ जाती है, परन्तु उसमें विचारों की सजगता भी बनी रहती है। भावना के आधिक्य के ही कारण तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को **"भाव कवित्वमु"** (भावात्मक कविता) के नाम से पुकारते हैं। हिन्दी में भी इस काव्य-धारा की मुख्य विशेषता यह रही है कि उसने इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध भावना का विद्रोह खड़ा कर दिया है। अध्ययन की सुविधा के लिए भावना-पक्ष का निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है—

१. नारी भावना।
२. प्रेम-भावना।
२. विस्मय की भावना।
४. विद्रोह की भावना।
५. देश और संस्कृति के साथ मानव का भावात्मक सम्बन्ध।

(१) नारी भावना :—

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दनावादी काव्य में नारी को अत्यन्त महान स्थान प्राप्त हुआ है। अधिकतर स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के आदर्श स्वरूप की कल्पना की है। उन्होंने नारी में अनेक उदात्त गुणों का समावेश कर उसे एक देवी

प्रतिमा के रूप में देखा है। प्रत्येक कवि ने अपने मनोनुकूल नारी की कल्पना की है और उन नारी-मूर्तियों में भी प्रायः समानतायें मिल जाती हैं। इन कवियों ने उसके रूपगत तथा मानसिक सौन्दर्य का अंकन भी विस्तार पूर्वक किया है। स्वच्छन्दतावादी कवियों की नारी-भावना का अध्ययन अधोलिखित विभागों के अन्तर्गत करना अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है:--

(अ) नारी के प्रति स्वच्छन्दतावादी कवियों का दृष्टिकोण।

(आ) नारी का रूप-सौन्दर्य।

(इ) नारी का मानसिक या आंतरिक सौन्दर्य।

(ई) स्वच्छन्दतावादी काव्य में उर्वशी (आदर्श नारी) की रूप-कल्पना।

(अ) नारी के प्रति स्वच्छन्दतावादी कवियों का दृष्टिकोण :--हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी को सहानुभूति के साथ देखा है। उनके काव्य में वह अत्यन्त उदात्त रूप में प्रकट हुई है। इन कवियों के लिए नारी देवी थी, माँ थी, सहचरी थी, प्राण थी।[1] उन्होंने नारी के प्रति गौरव एवं श्रद्धा भी दिखाया। उसमें अनन्त सौन्दर्य के साथ पावनता भी कवियों ने भर दी है। उन्होंने आदर्श नारी की रूप-कल्पना कर उसे दिव्य अनुभूतियों की प्रतिमा वना दिया है। इन कवियों के काव्य में नारी अपने कोमल तथा लज्जाशील व्यक्तित्व का प्रकाशन करती है। कविवर प्रसाद के अनुसार वह लज्जा और कोमलता की साकार मूर्ति है। उनकी नारी पुरुष के आश्रय में जीवन व्यीत करना चाहती है। प्रसाद के कामायनी महाकाव्य में नारी अपने स्वरूप का परिचय इस प्रकार देती है—

"यह आज समझ तो पायी हूं
मैं दुर्बलता में नारी हूं;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सब से हारी हूं।
सर्वस्व समर्पण करने की,
विश्वास-महा तरु-छाया में--
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों
ममता जगती है माया में?"[2]

---

१. "देवि। माँ। सहचरि। प्राण" "नारी रूप" : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी। तृ० संस्करण। पृ० ८१।

२. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ११४।

प्रसाद की नारी अपना सब कुछ पुरुष को समर्पित करना चाहती है और उसमें भी त्याग की भावना निहित है। वह अपने समर्पण के प्रतिफल के रूप में कुछ भी लेना नहीं चाहती—

"इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।"[1]

प्रसाद के अनुसार नारी पुरुष को अपने स्नेह की शीतल धारा में डुबो देती है। वह श्रद्धा-स्वरूपिणी है। वह विश्वास रूपी-रजत नग के पदतल में मानव-जीवन के सुन्दर समतल पर पीयूष धारा की भाँति बहा करती है—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पग तल में—
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।"[2]

प्रसाद के अनुसार नारी-हृदय दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा अगाध विश्वास आदि का स्वच्छ भण्डार है और वह पुरुष को उन्हें अनायास दे डालती है—

"दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय-रत्ननिधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।"[3]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रसाद की नारी एक आदर्शमयी गृहिणी है जो सभी स्त्रियोचित गुणों से ओतप्रोत है। प्रसाद के काव्य में नारी स्वरूप ने अनन्त ऊँचाइयों को छू लिया है।

कविवर पन्त की नारी-भावना आदर्शवादी है। कवि नारी के पावन तथा उदात्त स्वरूप पर रीझते हुए दिखाई पड़ते हैं। पन्त नारी को शक्ति एवं सौन्दर्य के साथ अनन्त ऐश्वर्यों का श्रोत मानते हैं। वे कहते हैं—

१. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ११५।

२. वही—पृ० ११६।

३. वही—"श्रद्धा सर्ग"। पृ० ५१।

"तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान
तुम्हारी पावनता, अभिमान
शक्ति, पूजन सम्मान;
अकेली सुन्दरता कल्याणि।
सकल ऐश्वर्यों की संधान।"[1]

पन्त की "भावी पत्नी" तथा "अप्सरा" आदि की सृष्टि आदर्श नारी-मूर्तियों के रूप में हुई हैं। फिर भी कहना ही पड़ता है कि पन्त की नारी प्रतिमायें उसके कल्पना-प्रसूत हैं। कविवर निराला नारी को शक्ति-प्रदायिनी मानते हैं। "राम की शक्ति पूजा", "तुलसी दास" आदि कविताओं में कवि की यही नारी-भावना व्यक्त हुई है।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की नारी-भावना भी उनके नवीन दृष्टिकोण की परिचायिका है। नारी के प्रति इन कवियों में भी अत्यन्त उदारता की भावना रही। कविवर गुरजाड अप्पाराव की नारी-भावना विशाल थी। उनके काव्य में अधिकतर समाज की कुरीतियों से आहत कारुण्यमयी नारी-मूर्तियों का चित्रण मिलता है। उनके "लवणराजु कल" की अछूत वालिका, "कन्यका" की कन्यका तथा "पूर्णम्मा" की पूर्णम्मा एक आदर्श नारी की विभिन्न प्रतिमाओं का साक्षात्कार कराती है। प्रथमत: अछूत वालिका अपने शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्य से राजा लवणराजु के मन को आकृष्ट कर लेती है और वह उसकी आदर्श गृहिणी वन जाती है। कन्यका अधिकार के दर्प से अन्धे होने वाले राजा की वासना पूर्ण इच्छाओं को ठुकराकर अपनी मान-रक्षा के लिये आत्म-वलिदान कर लेती है। दहेज प्रथा की कुरीति के कारण पूर्णम्मा का पिता जव अपनी पुत्री का विवाह एक वृद्ध से करने के लिए तैयार हो जाता है तो वह ग्राम के वाहर दुर्गा-मन्दिर के पास के सरोवर में कूद कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर डालती है। कविवर गुरजाड़ अप्पाराव में सामाजिक कुरीतियों से शोषित नारियों के प्रति अनन्य सहानुभूति पायी जाती है। कवि उनके आत्म-वलिदान का अंकन कर उन्हें नारी-आदर्श के सर्वोच्च शिखरों पर प्रतिष्ठित करते हैं। रायप्रोलु सुब्बाराव तथा दूव्वूरि रामिरेड्डी की नारी-भावना में साम्य दिखाई पड़ता है। रायप्रोलु सुब्बाराव की स्नेहलता देवी दहेज-प्रथा से दुखग्रस्त माता-पिता के दुख को दूर करने के लिए अग्नि-प्रवेश कर आत्म-हत्या कर लेती है तो रामिरेड्डी की नलजारम्मा भी अपने पति के साथ आत्म-वलिदान कर देती है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इन दोनों कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव की भाँति नारियों के प्रति तथा उनकी त्यागशीलता के प्रति अपार श्रद्धा है। शिवशंकर

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "नारी रूप"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ८१।

शास्त्री तथा विश्वनाथ सत्यनारायण के लिए नारी हृदयेश्वरी है, देवी है। वह इन कवियों की आराध्य देवी है। ये कवि नारी के परम उपासक हैं। परन्तु इनके प्रणय को अलौकिक नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इनकी नारी एक ओर तो प्रेमिका है तो दूसरी ओर देवी है। कविवर कृष्णशास्त्री की नारी-भावना अत्यन्त उत्कृष्ट एवं उदात्त है। इस आदर्शवादी कवि ने नारी को एक आदर्श प्रेयसी के रूप में अंकित किया है। वह विश्व-मानव की चिरन्तन प्रेयसी है। वेदुल सत्यनारायण शास्त्री तथा नायनि सुब्बाराव की नारी प्रेयसी है और उसे इन कवियों ने प्रणयिनी के रूप में अंकित किया है। नण्डूरि सुब्बाराव की "ऍंकि" ऐक ग्रामीण प्रेमिका के रूप में अपना दर्शन देती है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की नारी-भावना में पर्याप्त साम्य और अन्तर भी है। हिन्दी के कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव, रामि रेड्डी तथा रायप्रोलु सुब्बाराव आदि कवियों को सामाजिक नारी का स्वरूप उपलब्ध नहीं होता। जहाँ तेलुगु के इन तीन कवियों की नारी-भावना को उनके सामाजिक आदर्शवाद ने प्रभावित किया है तो हिन्दी के कवियों की नारी भावना को उनके काल्पनिक आदर्शवाद ने प्रभावित किया। परन्तु कृष्णशास्त्री, नायनि सुब्बाराव, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री की नारी-भावना हिन्दी कवियों की नारी-भावना से अधिक साम्य रखती है।

(२) **नारी का रूप सौन्दर्य** :—अनुभूति-पक्ष का विवेचन करते समय नारी-सौन्दर्य-जन्य सुखात्मक अनुभूति पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है और नारी के बाह्य या रूपगत सौन्दर्य तथा मानसिक सौन्दर्य पर भी विचार किया गया है। यहाँ पर नारी के रूप-सौन्दर्य के विविध पक्षों पर विचार करना अपेक्षित है। नारी के रूप-सौन्दर्य को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) स्थूल रुप से नारी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन।

(ख) सात्विक अलंकारों के कारण नारी के रूप-सौन्दर्य का उत्कर्ष।

(क) **स्थूल रूप से नारी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन** :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य की मूलभूत प्रेरणा तथा उसकी संचालक शक्ति नारी ही है। उन्होंने उसके सौन्दर्य के सभी पक्षों का प्रत्यक्षीकरण कराया है। उन्होंने नारी-सौन्दर्य के अंकन में व्यक्तिपरक तथा वस्तुपरक-दोनों दृष्टिकोणों को अपनाया है। इन कवियों ने नारी की आकृति, रंग, रेखा, कान्ति, मसृणता तथा कोमलता आदि का वर्णन किया है। आकृति में लम्बाई-चौड़ाई के साथ अंगों के गठन पर इन्होंने अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। कविवर प्रसाद ने श्रद्धा और इड़ा का समग्र रूप-चित्रण इस प्रकार अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है—

"नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम—बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मंडल उन को भेद दिखाई देता हो छविधाम।"
"घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।"[1]

श्रद्धा गौर वर्ण की एक लम्बी युवती है। यौवन की आभा उसके शरीर को दीपित कर रही है। उसके दीप्तिमान मुख को लम्बे घुंघराले बाल ढँकना चाहते हैं। साथ ही प्रसाद ने उसके शरीर की सुकुमारता की ओर भी इंगित किया है। प्रसाद जी ने इड़ा के सौन्दर्य-वर्णन में उसके नख-शिख तक सम्पूर्ण चित्र इस प्रकार उतार दिया है—

'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वल तम शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिस में भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल।"[2]

प्रसाद जी का यह नारी-चित्र बाह्याकृति की समग्रता को लिये हुये है। नारी के विविध अंगों के सौष्ठव पर कवि की दृष्टि यहाँ रही है। प्रसाद की इड़ा भारतीय सनातन नारी न होकर वह आधुनिका है। अंगों के सौष्ठव के साथ प्रसाद ने नारी के विविध अंगों की सुकुमारता तथा कोमलता का वर्णन किया है—

"कुसुम कानन-अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।"[3]

श्रद्धा का शरीर पराग-परमाणुओं से रचा हुआ है और उसका आधार मधु है। कविवर पंत ने भी नारी के रूपगत सौन्दर्य का उज्ज्वल वर्णन प्रस्तुत किया है। "ग्रंथि" की नायिका का रूप-सौन्दर्य हर एक को मंत्रमुग्ध कर देता है—

---

१. जयशंकर प्रसाद : श्रद्धा सर्ग। कामायनी पृ० ४६-४७।
२. जयशंकर प्रसाद : इडा सर्ग। कामायनी पृ० १६८।
३. जयशंकर प्रसाद : श्रद्धा सर्ग। कामायनी पृ० ४८।

"बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच ;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में ।"[१]

नायिका के चन्द्रवदन पर अलकों का वाल रजनी की भाँति डोलना तथा उसके लज्जारुण कपोलों पर सौन्दर्य की बाढ़ का छलकना आदि नारी के रूप-सौन्दर्य को कवि आँखों के समक्ष अंकित कर देते हैं। कविवर निराला ने भी शक्ति प्रदायिनी नारी के बाह्य सौन्दर्य का इस प्रकार वर्णन किया है—

"बिखरी छूटीं शफरी-अलकें
निष्पात नयन-नीरज-पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता;
निःसंवल केवल ध्यान-मग्न,
जागी योगिनी अरूप-लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरूपमिता।"[२]

निराला की नारी की ओजस्विता अपने आप इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है। नायिका की मूर्ति स्वयं आँखों के समक्ष थिरक उठी है। महादेवी एक सद्यस्नाता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

"रूपसि तेरा घन-केश-पाश।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश-पाश।
नभगंगा की रजतधार में
धो आयी क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात।
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास।"[३]

लहराते हुए केश-पाश के साथ दिखाई पड़ने वाली रूपसी सद्यस्नाता का चित्र अपना सौन्दर्य-विभव लिये हुए है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के रूप-सौन्दर्य का सांगोपांग वर्णन किया है।

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रंथि" पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८।
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : "तुलसीदास" अपरा। तृ० सं०। पृ० १६३।
३. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १। गीत-संख्या ३४। पृ० ५५।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नारी के रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है। गुरजाड़ अप्पाराव ने "लवणराजु कल" में अछूत युवती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

"अधखुले नयनों से
लहराती बिखरी अलकों से
अपनी निर्भय औ' गर्वीली
इठलाती चालों से—"[1]

उन्मद यौवन-भार-नत इस बाला के सौन्दर्य में माधुर्य के साथ प्रगल्भता भी दिखाई पड़ती है। कविवर नायनि सुब्बाराव ने अपनी प्रेयसि के रूप-सौन्दर्य में कान्ति, कोमलता तथा सुगन्ध का भी समावेश किया है—

"किसलय के पीछे छिपी हुई
कलिका की द्युतिमय आभा-सी
अस्फुट अधरों की ओट लिए
आँख मिचौनी करती मुसकान।
परिमल के उच्छ्वास और
निश्वास-पवन के झोंकों से उद्वेलित
जलधि-तरंगों-सा उठ गिर कर
शोभित होता जो तेरा उर का स्पन्दन
कहे बिना ही कह जाता तुमको जलधि प्रणय का।"[2]

---

१. " अरमोगिड्चन कन्नुगवतो
वेदरि याडेडि मुंगुरुलतो
वेदुरु येरगनि बिक मोप्पिन
वेडगु नडकलतो—"
—गुरजाड़ अप्पाराव : लवणराजु कल। मुत्याल सरालु। पृ० १५।

२. " तलिरु टाकुल चाटुन गुलुकु मोलल
मोग्ग चिलिकेडु तेलिकान्ति निगगु करणि
विरिसि विरियनि पेदवुल वेनुक जेरि
मोलक चिरुनव्वु दागिलिमूत लाडु
परिमलोच्छ्वास निश्वास पवनमुनकु
कडलि तरग विधान निल्कडग लेचि
पडुचु सोगयिचु.......नी युरोवर्तनम्मु
प्रणय जलधि नीवनुचु जेप्पकय चेप्पु।"
—नायनि सुब्बाराव। सौभद्रुनि प्रणय यात्रा। पृ० २६।

इस तरह तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नारी के रूप-सौन्दर्य का विशद वर्णन किया है। परन्तु नारी के निश्चल रूप-सौन्दर्य के अंकन में हिन्दी कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि अत्यन्त विकसित जान पड़ती है। नारी के निश्चल रूप-सौन्दर्य का उन्होंने रुककर चित्रण किया है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने ऊपर पड़े हुए नारी के रूप सौन्दर्य के प्रभाव को अधिकतर स्पष्ट किया है।

(घ) सात्विक अलंकारों के कारण नारी के रूप-सौन्दर्य का उत्कर्षः—भारतीय आचार्यों ने यौवना नायिका में अट्ठाईस सात्विक अलंकार माने हैं, जिनसे नारी का सौन्दर्य-वर्धन होता है। इनमें भाव, हाव तथा हेला—ये तीनों अंगजालंकार कहलाते हैं। कान्ति, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य तथा धैर्य—ये सात इनमें उपयान्तज हैं। इनके अतिरिक्त अठारह अन्य अलंकार हैं। ये सब रागोदय के कारण नारी के वाह्य शरीर एवं हृदय में होने वाले परिवर्तन को सूचित करते हैं। ये सात्विक अलंकार नारी-सौन्दर्य में गति तथा आकर्षण उत्पन्न करते हैं।

उपर्युक्त सात्विक अलंकारों में अंगज कहलाने वाले भाव, हाव तथा हेला रागोदय के कारण नारी में क्रमशः दीखने वाले विकार हैं। नायिका के मन में प्रथमतः उत्पन्न होने वाले काम विकार को "भाव" कहते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नायिका (नारी) में भाव के स्फुरण का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है। प्रसादजी ने "कामायनी" में श्रद्धा के यौवन विकास को अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है—

"क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आँखें खोली थीं॥[1]

यौवन के आगमन से नायिका के शरीर में मादक सौन्दर्य व्याप्त हो गया है। उसमें बाल्य-चंचलता दूर होकर गाम्भीर्य आ गया है। कवि पंत ने "ग्रन्थि" की नायिका की यौवन-जन्य चंचलता एवं नयनों की व्याकुलता को यों व्यक्त किया है—

"कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।"[2]

निराला तथा महादेवी की कविता में भी नारी में भावोदय के दृष्टांत आसानी से प्राप्त होते हैं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में रायप्रोलु सुब्बाराव, गुरजाड़

---

१. जयशंकर प्रसाद :काम सर्ग। कामायनी पृ० ६२।
२. सुमित्रानन्दन पन्त। ग्रन्थि। पृ० १०।

अप्पाराव, नायनि सुब्बाराव, शिवशंकर शास्त्री आदि कवियों ने नारी में यौवन के प्रथम स्फुरण का वर्णन किया है। नायनि सुब्बाराव ने नायिका की यौवन-जन्य-चंचलता का चित्रण इस प्रकार किया है—

"किसलय के पीछे छिपी हुई
कलिका की द्युतिमय आभा-सी
अस्फुट अधरों की ओट लिए
आँख-मिचौनी करती मुसकान।"[1]

शिवशंकर शास्त्री नायिका के आनन पर दीप्ति तथा तरल नयनों की उत्कंठा-पूर्ण दृष्टि का उल्लेख कर उसमें रागोदय के स्फुरण की ओर इंगित करते हैं—

"आनन पर द्योतित प्रभा दीप्ति
नयनों की इच्छा भरी दृष्टि
मुझ पर तेरे नवल राग को
बिना कहे ही बता रही हैं।"[2]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी (नायिका) में रागोदय एवं तज्जन्य सौन्दर्य का अंकन किया है। यह वर्णन सात्विक अलंकारों में भाव के अंतर्गत आते हैं।

हाव तथा हेला भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। हाव तथा हेला नारी के सौन्दर्य को द्विगुणीकृत कर, उसके आकर्षण को बढ़ाते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी में हाव तथा हेला का भी वर्णन किया है। कविवर पंत ने नायिका में तारुण्य उसी समय माना है जब वह प्रिय के मन को हाव-भावों से मोह लेती है—

---

१. "तलिरू टाकुल चाटुन गुलुकु मोल्ल
मोग्ग चिलिकेडु तेलिकाँति निग्गुकरणि
विरिसि विरियनि पेदयुल वेनुक जेरि
मोलक तिरेनव्वु दागिलि मूत लाडु।"
—नायनि सुब्बाराव : "सौभद्रुनि। प्रणय यात्रा। पृ० २६।

२. "नीकु नामीदि नवनयोन्मेषरक्ति
जेप्पकये चेप्पुचुंडे नोस्निग्ध दृष्टि
आननम्मुन विद्योतमान दीप्ति
तरल नयनोच्चलत्समुत्कन्ठ दृष्टि।"
—शिवशंकर शास्त्री "हृदयेश्वरी"। पृ० ४३।

"मंद चलकर, रुक अचानक, अधखुले
चपल पलकों से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाया हो नहीं जिस ने कभी
तरुणता का गर्व क्या उसने किया ?"[1]

पंत ने "ग्रन्थि" की नायिका में हाव तथा हेला का साक्षात्कार कराया है। कवि नायिका के पलकों का उठकर गिरने की चेष्टा में ही प्रेम-भावना को देखते हैं—

"एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानों प्रणय सम्बन्ध था।"[2]

रागोदय के होने के पश्चात् उस भाव-स्फुरण को व्यक्त करने वाले हाव तथा वेला भी प्रसाद के काव्य में अवश्य पाये जाते हैं। कामायनी के वासना सर्ग से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"भूल कर जिस दृश्य को मैं बना आज अचेत;
वही, कुछ सव्रीड़, सस्मित कर रहा संकेत।"[3]

सव्रीड़, किन्तु सस्मित संकेत करने वाली नायिका के हाव-भावों का सौन्दर्य चित्ताकर्षक है।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नायिका के हाव तथा हेला आदि सात्विक अलंकारों का चित्रण किया है। वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुब्बाराव, शिवशंकर शास्त्री आदि कवियों के काव्य में नारी के हाव-भावों की मात्रा अधिक है। नायनि सुब्बाराव ने नायिका के एक सोन जुही की कली को चुनकर वेणी में रखना तथा मीठी मुस्कानों से निमंत्रण देना आदि हाव तथा हेला के अन्तर्गत ही आते हैं—

"सोन जुही की कली एक चुनकर अमित प्रेम से
प्राण प्रिया ने जब रख ली अपने वेणी-बन्धन में

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "ग्रन्थि"। (१९२० ई०) । वीणा-ग्रन्थि। पृ० ११७।
२. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रन्थि" (१९२० ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८।
३. जयशंकर प्रसाद : "वासना सर्ग", "कामायनी"। पृ० ८९।

बचनों में औ' चितवन में जो आमन्त्रण नहीं रहा
वही झलकता सजनी की मधुमय मुस्कानों में।"[1]

शिवशंकर शास्त्री ने भी प्रेमाकुल नायिका की शीतल दृष्टियों को हाव-भावों के रूप में अंकित किया है—

"विमल मनोरम कोमल तरलित
शीतल तेरी भव्य-दृष्टियाँ
मेरे आनन पर उतरी हैं
स्निग्ध-चाँदनी की चिड़ियों-सी।"[2]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नायिका के हाव-भाव तथा हेला का वर्णन कर उनके रूप सौन्दर्य को चार चाँद लगा दिये हैं।

उपर्युक्त सात्विक अलंकारों में अन्त्यज कहलाने वाले शोभा, कान्ति, दीप्ति, औदार्य, माधुर्य और प्रगल्भता—ये सात अलंकार हैं। इनमें शोभा, कान्ति तथा दीप्ति का हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वर्णन किया है। सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने गौर वर्ण की नायिका (नारी) के शरीर से निकलने वाली आभा तथा उज्ज्वलता का वर्णन किया है। प्रसाद ने श्रद्धा के वर्णन में उसकी मुख-कान्ति को मेघों के नील आवरण से प्रकट होने वाला अरुण रवि-मण्डल कहा है। प्रसाद ने "आँसू" की नायिका की शोभा का अंकन यों किया है—

"चंचला स्नान कर आये
चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी वैसी।"[3]

---

१. "अगलपु क्रेम नोक मल्लेमोग्ग कोसि
चेलिय कबेरीभरम्मुन जेरिविनन्त
पलुकु चूपुल रादगु स्वागतम्यु
बेलदि मुसिमुसि नगवुलो बेल्लि विरिसे।"
—श्री नायनि सुब्बाराब : सौभद्रुनि प्रणय यात्रा। पृ० ३८।

२. "कोमल मनोज्ञ विमल दृक्कोण तरल
दिव्यशीतल भवदीय दृष्टु लयल
पिक्कटिल्लि मदानन बिम्बमुपयि
चेलुवुगा याले वेन्नेल पुलुगु लट्लु।"
—शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० १२।

३. जयशंकर प्रसाद : "आँसू"। पृ० २४।

शिवशंकर शास्त्री ने हृदयेश्वरी की नायिका की शोभा, दीप्ति तथा कान्ति का चित्रण किया है--

"धवल, वस्त्र का परिधान पहनकर
देह-लता में स्वर्ण-कान्ति भर कर
जब तुम आती हो मंथर गति से
तो लगती हो केवल लक्ष्मी-समान।"[१]

इस प्रकार नायिका में दीखने वाली शोभा, कान्ति तथा दीप्ति आदि सात्विक अलंकार दर्शक की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने वाले हैं। प्रगल्भता तथा औदार्य भी स्वच्छन्दतावादी कवियों की नायिकाओं में पाये जाते हैं। परन्तु माधुर्य का इन कवियों ने अत्याधिक वर्णन किया। माधुर्य के साथ लज्जा का भी समावेश कर नारी के रूप-सौन्दर्य को और भी आकर्षक बना दिया है। नारी में माधुर्य ही ऐसा गुण है जो पुरुष की वासना को उद्दीप्त करता है। कामायनी का मनु श्रद्धा में इसी माधुर्य का दर्शन कर यों कह उठता है—

"उसी में विश्राम माया का अचल आवास;
अरे यह सुख नींद कैसी, हो रहा हिमहास।
वासना की मधुर छाया! स्वास्थ्य बल विश्राम!
हृदय की सौन्दर्य प्रतिमा! कौन तुम छवि धाम!"[२]

इसी माधुर्य के कारण पुरुष के लिए नारी "सौन्दर्य-प्रतिमा" बन जाती है। तेलुगु के कवियों में शिवशंकर शास्त्री ने माधुर्य का अधिक वर्णन किया है। वह "हृदयेश्वरी" की नायिका को संबोधित कर कह उठता है।

"मधुर भाव हैं मेरे मन में
मधुरिम से मधुमय मधुर मूर्ति।
मधुर निशा में तम मधुरिम पर
मुग्ध हुआ मैं पूर्ण रूप से।"[३]

---

१. "धवल कौशेय परिधान धारिणी वयि
देहलत हेम दीधिति देजरिल्ल
वल्गु गमनम्मुतो वीवु यच्चु नपुडु
केवलमु लक्ष्मि वनियेडु भाव मोदये।"
—शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० १६।

२. जयशंकर प्रसाद : वासना सर्ग। "कामायनी"। पृ० ८७।

३. "मधुर भावावली लसन्मतिनि नेनु,
मधुरिमसु कन्न मधुरमौ मधुरमूर्ति,
मधुर यामिनि वेल नी मधुरिममुन
पूर्णमुग मुग्धभावमु पोंदिनाड।"
—शिवशंकर शास्त्री : "विभ्रमसु"। हृदयेश्वरी। पृ० १७।

उपर्युक्त अयत्नज अलंकारों के अतिरिक्त विलास, विभ्रम, विच्छित्ति आदि स्वभावज अलंकारों का भी हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के सौन्दर्य-वर्धन के लिये उपयोग किया है।

(ट) नारी का आन्तरिक सौन्दर्य :—वाह्य सौन्दर्य के साथ आंतरिक सौन्दर्य के मिश्रण से नारी-सौन्दर्य में पूर्णता आ जाती है। वास्तव में आन्तरिक सौन्दर्य के अभाव में वाह्य-सौन्दर्य एकांगी हो जाता है। यह आंतरिक सौन्दर्य नारी का चारित्रिक या मानसिक सौन्दर्य है जिसके आधार उसके मन में भाव तथा उसकी चेष्टायें हैं। नारी में चेतना या सजीवता के कारण स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उसमें सौन्दर्य को माना ही है। साथ ही उसके लावण्य की तरलता को, विविध भागों के उन्मेष तथा उनकी अनुभूति के कारण निखरने वाले उसके रूप का भी अंकन किया है। उल्लास, सजीवता एवं स्फूर्ति आदि चेतना के विभिन्न पहलुओं को इन कवियों ने नारी में देखा है जो उसके आंतरिक सौन्दर्य का वर्धन करते हैं। उल्लास तथा स्फूर्ति को दिखाने के लिये हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी की उपमा उषा के साथ दी है। जयशंकर प्रसाद ने श्रद्धा के प्रथम परिचय में ही उसे "उषा की पहली रेखा कान्त" कहा है। प्रसाद ने उसकी दिव्य छवि का अंकन किया है, जो उसके आन्तरिक सौन्दर्य की वाह्याकृति है—

"दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि लगी खेलने रंग-रली,
नवल हेम-लेखा सी मेरे हृदय निकष पर खिंची भली।
अरुणाचल मन मन्दिर की वह मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा;
लगी सिखाने स्नेहमयी सी सुन्दरता की मृदु महिमा।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नारी में उल्लास तथा स्फूर्ति का संचार किया है। कविवर कृष्णशास्त्री ने उर्वशी को उषा काल की ओस विन्दुओं की लड़ी कहकर उसके आंतरिक प्रकाश एवं स्निग्धता को प्रकट किया है।[2] इड़ा के वर्णन में प्रसाद जी ने चेतना के सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहारी ढंग से चित्रण किया है। वे उसे उल्लास-भरी मूर्ति कहकर उसके मानसिक या आन्तरिक सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं—

"इड़ा अग्नि-ज्वाला-सी आगे जलती है उल्लास भरी
मनु का पथ आलोकित करती विपद-नदी में बनी तरी।"[3]

इड़ा चेतना की साकार मूर्ति होने के कारण सौमनस्य चारों ओर बिखेर देती है—

---

१. जयशंकर प्रसाद : निर्वेद सर्ग। कामायनी। पृ० २२२।
२. "नीबु तोलि प्रोड्डु नुनुमंचु तीव सोनवु"—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ११८।
३. जयशंकर प्रसाद : स्वप्न सर्ग। कामायनी। पृ० १८१।

"सौमनस्य बिखराती शीतल, जड़ता का कुछ भास नहीं।"[१]

कविवर अब्बूरि रामकृष्ण राव ने भी नारी की स्निग्धता तथा चेतनता का अंकन किया है—

"अन्धकार के मार्गों में विकसित मधुमय ज्योत्स्ना-सी
सुधा-सरोवर में तीव्र व्यथाकुल जन के स्नान सदृश
मेरे उर-स्थिति दिव्य राज्ञि। तुम धर कर स्यामाकृति
तन-विकास भर मेरे मन में, हो मुझ पर करुणाकल।"[२]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के आंतरिक सौन्दर्य के एक पहलू के रूप में उसकी चेतनता, स्निग्धता, उल्लास आदि का चित्रण किया है।

हमने जैसे पहले ही कहा था, नारी का आंतरिक सौन्दर्य विशेषतः उसकी प्रकृति तथा चेष्टाओं पर आधारित रहता है। सात्विक अलंकारों के कारण नारी का आंतरिक सौन्दर्य भी निखर उठता है। नारी के सात्विक स्वभाव को वे स्वयं व्यक्त करते हैं जिन पर विचार रूप-सौन्दर्य के अन्तर्गत हो चुका है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के आंतरिक सौन्दर्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रित किया है। प्रसाद और पन्त की नायिकाएँ लज्जाशील हैं, निराला की नायिकाएँ शक्ति एवं प्रेरणा के स्रोत हैं तो महादेवी की नायिकायें अधिकतर विरहिणियाँ हैं। गुरजाड़ अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव तथा दुव्वूरि रामिरेड्डी की नायिकाएँ (नारी पात्र) आत्मोत्सर्ग करनेवाली त्याग की अमर मूर्तियाँ हैं तो कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री तथा नायनि सुब्बाराव की नायिकायें प्रेयसियां हैं, प्रणय की साकार मूर्तियाँ हैं। बसवराजु अप्पाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण तथा नण्डूरि सुब्बाराव की नायिकायें प्रेमिकायें हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रसाद और पंत की नायिकाओं में प्रेमिका का स्वरूप नहीं है या कृष्णशास्त्री, तथा नायनि सुब्बाराव आदि कवियों की नायिकाओं में लज्जा का अभाव है। यह तो निर्विवाद अंश है कि सामान्य रूप से हर एक कवि ने अपनी नायिका की रूप-कल्पना में एक विशेष आकृति एवं प्रकृति से काम लिया है।

---

१. जयशंकर प्रसाद : स्वप्न सर्ग। कामायनी पृ०। १८१।
२. "चीकटि दारुलन्दु विकसिंचिन वेन्नेल योले, तीव्रबा
धाकुलु लेनबारलु सुधा सरसिन् गोनु स्नानमट्लु श्यामाकृति
दाल्चि नादु हृदयम्मुन निल्चिन दिव्य राज्ञि,
नाकै करुणिंचि नीतनु विकासमु निंपुमु ना मनस्मुनन्—"
—अब्बूरि रामकृष्णराव : "वैतालिकुलु"। पृ० ७३।

कविवर पन्त ने संकोच-शीला तथा सरल स्वभाव की किशोरी के आंतरिक सौन्दर्य का अंकन इस प्रकार किया है—

"कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय वर्ताव;
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव।"[1]

पंत की भाँति कृष्णशास्त्री भी एक सरल स्वभाव की अनाथ बालिका के मानसिक सौन्दर्य को इस प्रकार चित्रित करते हैं—

"यह है नवल सान्ध्य की मनोहारिणी, कुसुम-कामिनी
जगा रही है मेरे जीवन में
विचित्र इच्छाओं की मधुर वेदना को।
स्वप्न देखती रहती वह नित
उसके तन की कोमल सुन्दरता एक नयन-से खिलकर
चकित दृष्टियों से अपने को निहारती है।"[2]

कृष्णशास्त्री की यह नायिका अपने सौन्दर्य पर स्वयं रीझने वाली है। लज्जा नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को और भी बढ़ाती है। लज्जा स्त्रियों का आभूषण माना गया है। लज्जा का सम्बन्ध नारी की भावानुभूति के साथ ही है। लज्जा के रूप में भाव का मूर्तीकरण हो जाता है और उस समय सौन्दर्य-सृष्टि में सहायक होता है। लज्जा के अस्तित्व के कारण नारी-सौन्दर्य को एक व्यापक परिधि मिल गयी है। हिन्दी और तेलुगु के अधिकांश कवियों ने नारी में लज्जा की व्यंजना की है। परन्तु लज्जा के सभी पक्षों पर प्रसाद जी ने पूर्ण प्रकाश डाला है। नारी में दीखने वाली इस विशेष भावना को कवि ने एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखकर काव्य के परिवेश में व्यक्त कियाँ है। प्रसाद जी ने नारी में लज्जा की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "आँसू"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७८—७९।

२. "आमे नव सान्ध्य समय मल्ली मनोज्ञ
कुसुम कामिनि; ऐदो बित कोर्के तीय
दनपु वेदन ना जीवितमुन रेपु।
आमे स्वप्नालु कनुप्पु ; डामे भेनि
तलिरु लावण्य मोक्ष नेत्रमुग विरिसि
वेरगु चूपुल तनुदाने यरसि कोनुनु।"
—कृष्णशास्त्रीः श्रीं देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० १२७।

"गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गंदगद बोल।"[1]

नारी में प्रथम बार दीखने वाली लज्जा का अत्यन्त स्वाभाविक रूप है। लज्जा के कारण ही नारी में शालीनता आती है और वह रति की प्रतिकृति है—

"मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।"
"चंचक किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।"[2]

प्रसाद जी के अनुसार लज्जा नारी ने नवीन सौन्दर्य का उन्मीलन करती है। वह नारी-सौन्दर्य की रक्षा करने के साथ उस की वृद्धि भी करती है। लज्जा नारी के लिये एक आवरण होते हुये भी उस का अलंकार भी है।

"वरदान सदृश हो डाल रही नीली किरनों से बुना हुआ;
यह अंचल कितना हलका-सा कितने सौरभ से सना हुआ।"[3]

लज्जा के कारण नारी के हृदय में परवशता आ जाती है जो नारी की चेष्टाओं को प्रभावित करती है। इस परवशता के कारण नारी में एक विशेष सौन्दर्य आ जाता है। लज्जा नारी में किशोर चंचलता के स्थान पर यौवन-गंभीरता भर देती है—

"स्मिति बन जाती तरल हँसी नयनों में भर कर बाँक पना;
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बनता जाता है सपना।
+ + +
छूने में हिचक, देखने में पलकें आखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं।"[4]

---

१. जयशंकर प्रसाद : वासना सर्ग। "कामायनी"। पृ० ९४।
२. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ९८।
३. वही। पृ० ९८।
४. वही। पृ० ९८-९९।

इस गांभीर्य के पीछे नारी का मानसिक परिवर्तन भी वर्तमान है। कविवर पंत ने भी नारी में लज्जा को विशेष महत्व दिया है। पंत की नायिकाओं में "ग्रंथि" की नायिका तथा 'भावी पत्नी' लज्जा के परिधान में ही अपने को प्रकट करती है। "ग्रंथि" की नायिका का लज्जाशील सौन्दर्य अत्यन्त मनोमुग्धकारी है—

"एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,"
"लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से।"[1]

पंत की भावी पत्नी भी लज्जा के वसनों में लिपटी हुई है। वह "मृदुमिल सरसी में सुकुमार अधोमुख अरुण सरोज समान" अपने लज्जारुण मुख को झुकाती है। प्रथम मिलन के पहले नायिका में व्यक्त होने वाले सभी हाव-भावों के साथ पंत ने लज्जा का भी समावेश किया है--

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात।
विकंपित मृदु उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जड़ित पद, नमित पलक दृग पात
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
मधुरता में सी भरी अजान;
लाज की छुई मुई सी म्लान,"

निराला, महादेवी तथा अन्य हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में नारी में लज्जा का चित्रण अवश्य मिलता है, किन्तु अधिक मात्रा में नहीं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में लज्जा का इतना भव्य चित्रण नहीं मिलता। फिर भी नारी के लज्जा की भावना को कुछ कवियों ने महत्व अवश्य दिया है। शिवशंकर शास्त्री में लज्जाशील नारी-सौन्दर्य का वर्णन कहीं-कहीं मिल जाता है।

---

१. सुमित्रानन्दन पंतः "ग्रंथि" (१९२० ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ३८।
२. सुमित्रानन्दन पंत : भावी पत्नी के प्रति (१९२७ ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० १४८।
३. वही। पृ० १४८।

शिवशंकर शास्त्री की "हृदयेश्वरी" की नायिका में लज्जा पायी जाती है—

अर्धोन्मीलित कर लोचन औ,
कमल-वदन लज्जा से नत कर
कोमल चंचल स्वर्ण-लता-सी
तुम चली सौध के भीतर।"[१]

कविवर कृष्णशास्त्री की नायिका भी लज्जाशीला है। कवि उसकी लज्जा की ओट में छिपने वाले प्रेम का उल्लेख इस प्रकार करता है—

"उस के यौवन के प्रांगण में
डगमग होकर छिप जाता है
प्रेम उसी की लज्जा की ओट लिये।"[२]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के आंतरिक सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये लज्जा का वर्णन किया है।

नारी के आंतरिक सौन्दर्य को उन्मीलित करने वाले दया, माया, ममता, माधुर्य, विश्वास आदि गुणों का दोनों भाषाओं के कवियों ने चित्रण किया है। इन गुणों के कारण नारी का कोमल व्यक्तित्व आकर्षक होकर खिल उठता है।

तेलुगु के कुछ अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की नायिकाओं की भाँति हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की नायिकाओं में कौटुम्बिक या सामाजिक हित के लिये आत्म-निदान करना कहीं नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु कृष्णशास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, शिवशंकर शास्त्री तथा नायनि सुब्बाराव आदि कवियों के नारी-सौन्दर्य की कल्पना हिन्दी के कवियों के नारी-सौन्दर्य की कल्पना से अधिक साम्य रखती है।

---

१. "कन्नुलरमोड्चि जानन कमल मल्ल
रम्यमुगवाल्चि लज्जाभिराम गतिनि
ललित जंगम कांचन लतिक रीति
हर्म्य भागम्मु लोनिकि नरिगि नावु।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० १०।

२. "आमे प्रायंपु वाकिलुलंदु बलपु
तडबडि यडंगु सिग्गु दों तरलतेरल।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० १२७।

(६) स्वच्छन्दतावादी काव्य में उर्वशी (आदर्श प्रेयसी) की रूप-कल्पना :— हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी सौन्दर्य-दृष्टि तथा भावुकता के अनुसार अनेक नारी-मूर्तियों का सजीव चित्रण अवश्य प्रस्तुत किया है। ऐसी आदर्श नारी-मूर्तियों में प्रसाद की श्रद्धा तथा इडा, पन्त की "ग्रन्थि" की नायिका, भावी पत्नी तथा अप्सरा, नण्डूरि सुब्बाराव की एंकि, विश्वनाथ सत्यनारायण की किन्नेरसानि, गुरजाड़ अप्पाराव की कन्यका, पूर्णम्मा, दुव्वूरि रामिरेड्डी की नलजारम्मा आदि अत्यन्त प्रमुख हैं। परन्तु हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री और रामधारीसिंह दिनकर ने उर्वशी के रूप में आदर्श प्रेयसी की कल्पना की है। इन दोनों कवियों की उर्वशी की रूप-कल्पना के विवेचन के पूर्व भारतीय साहित्य में उर्वशी-सम्बन्धी भावना का संक्षिप्त परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है।

उर्वशी और पुरुरवा की कथा का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद एवं उसके पश्चात् शतपथ ब्राह्मण और उसके आधार पर पुराणों में मिलता है। यूनानियों के ईरास-साइकी की भाँति तथा स्कांडिनीवियनों के ऐरिजा-ओडोर की भाँति हमारे वेदों के उर्वशी-पुरुरवा भी प्रेयसी-प्रिय हैं। रामायण, महाभारत, हरिवंश तथा [विष्णु-पुराण आदि काव्यों में उर्वशी की कथा का उल्लेख होने पर भी उसका कोई विशेष महत्व नहीं है। संस्कृत साहित्य में उर्वशी-कथा को प्रमुखता देने वाले कवि कालिदास हैं। कालिदास के विक्रमोर्वशीय में चित्रित उर्वशी अधिकतर नर्तकी की भाँति दिखाई पड़ती है। किन्तु चतुर्थ अंक में विक्रम का विरह-चित्रण अत्यन्त उदात्त रूप में हुआ है। अरविन्द की उर्वशी मानव को कर्तव्य से पराङ्मुख करने वाली सौन्दर्यमूर्ति है। उर्वशी के सौन्दर्य-मोह में पड़कर विक्रम का कर्तव्यच्युत होना स्वयं अरविन्द को भी इष्ट नहीं था। उसी कारण उन्होंने उर्वशी की, मनुष्य में वासना की वह्नि को उद्दीप्त करने वाली आज्य के रूप में कल्पना की।

इस प्रकार वासना की मूर्ति के रूप में दीखने वाली उर्वशी को विलक्षण रूप-रेखा प्रदान करनें वाले कवि हैं रवीन्द्र। उर्वशी के जन्म के सम्बन्ध में दो गाथायें प्रचलित हैं। एक गाथा के अनुसार वह देव-दानवों से मन्थित क्षीर-सागर से अन्य अप्सराओं के साथ जनमी है और दूसरी गाथा के अनुसार वह विष्णु के "उरू" से उत्पन्न हुई है। इन दोनों में-से रवीन्द्र ने प्रथम गाथा को ग्रहण किया है। एक हाथ में विष-कलश और दूसरे हाथ में अमृत-कलश लेकर क्षीरसागर-तरंगों पर खड़ी होने वाली चिर यौवनमयी के रूप में, वृत्तहीन पुष्प के रूप में उन्होंने उर्वशी की कल्पना की है। रवीन्द्र की उर्वशी-विषयक कल्पना पर ऋग्वेद तथा कालिदास के प्रभाव के अतिरिक्त यूनान की पुराण-गाथाओं का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से पाया जाता है। सागर-तरंगों पर खड़ी होनेवाली उर्वशी का रूप यूनानी देवी अफ्रडैट (Aphrodite) का स्मरण दिलाता है। यह देवी भी फेन से जनमी है। एक हाथ में अमृत-कलश और

और दूसरे में विष-कलश लिए हुए उर्वशी की रावीन्द्रक कल्पना पर अंग्रेजी कवि स्विन वर्न की "ओड आन अफ्रडैटी" नामक कविता का प्रभाव लक्षित होता है। स्विन वर्न की "ओड आन अफ्रडैटी" में अफ्रडैटी को सागर से उद्भूत निर्मूल कलिका से कटु पुष्प में परिणत होने वाली नारी के रूप में देखा है।[1] स्विनबर्न की जल-देवी (Perilous goddess) भी समुद्र से ही जन्म लेती है। उसके एक हाथ में अमृत कलश (Ambrosia) और दूसरे हाथ में विष-कलश शोभित होते हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के उर्वशी-पुरुरवा के संवाद का प्रभाव भी रवीन्द्र पर लक्षित होता है। पुराण गाथाओं की उर्वशी ऋषियों को पदभ्रष्ट किया करती थी। कालिदास की उर्वशी अवस्था-भेद के अनुसार वधू, पत्नी तथा माता के रूप में दिखाई पड़ती है। परन्तु रवीन्द्र के अनुसार वह न माता है, न कन्या है और न वधू है। वह केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति आदर्शमयी नारी है।[2] कवि के अनुसार वह उषा की भाँति अनवगुंठिता है।[3] रवीन्द्र की उर्वशी स्वर्ग और पृथ्वी को अपने सौन्दर्य से संधान करने वाली स्वर्ण-सेतु है। इस प्रकार रवीन्द्र ने उर्वशी को अलौकिक सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में देखा है।

रवीन्द के पश्चात् उर्वशी को विशिष्ट स्थान प्रदान करने वाले कवि हैं देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री तथा रामधारीसिंह दिनकर। परन्तु समय की दृष्टि से शास्त्री और दिनकर के उर्वशी-सम्बन्धी काव्यों में पर्याप्त अन्तर है। कृष्ण शास्त्री की "ऊर्वशी" सन् १९२५ की रचना है तो दिनकर की उर्वशी सन् १९६१ की रचना है। शास्त्री की उर्वशी-भावना पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से है तो दिनकर की उर्वशी पर रवीन्द्र के साथ कालिदास आदि कवियों का भी प्रभाव देखने को मिलता है। कृष्णशास्त्री तथा दिनकर की उर्वशी-भावना में पर्याप्त समानता मिलती है। शास्त्री और दिनकर की उर्वशी एक आदर्शमयी[4] नारी होने के साथ वह प्रेयसी भी है। दोनों कवियों ने उसे प्रेम और अलौकिक सौन्दर्य की साकार मूर्ति के रूप में चित्रित किया है। इन कवियों की उर्वशी विश्व-सौन्दर्य की उज्ज्वल भावना की रूप-सृष्टि मात्र है। युग-युगों से मानव के मनोमन्दिरों में निवास करने वाली एक गन्धर्वानुभूति है।

---

१. "A bitter flower from the bud
Sprung from the sea without roots."....Swin Burne.

२. "न हो माता, न हो कन्या, न हो वधू, सुन्दरी रूपसि,
हे नन्दनवासिनी उर्वशि।"—रवीन्द्र।

३. उषार उदय सम अनवगुण्ठिता तुमी अकुंठिता।"—रवीन्द्र।

४. "ओक चक्कनि स्त्री येलावुन्दो दान्नि लोकं रंम अंटुंवि। स्त्री येला उन्डालो दान्नि कवि उर्वशि अन्टाड्डु।"—कृष्णशास्त्री। रेडियो भाषण। प्रजामित्र, जैले १०, १९३८।

दोनों कवियों ने उर्वशी के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है। शास्त्रीजी अनेक उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से उर्वशी का सौन्दर्य-दर्शन कराने के साथ-साथ अनन्त आह्लाद का अनुभव करने लगते हैं। कवि उसे त्रिभुवन स्वामी के दिव्य रत्न-भण्डार पर शासन करने वाली वज्र-जड़ित हार मानते हैं। उर्वशी के सौन्दर्य को अनेक रूपों के माध्यम से व्यक्त करते हैं—

"तुम प्रथम उषा के ओस-कणों की लतिका हो,
तुम वर्षा और शरद के बीच
उगनेवाली सान्ध्य-कुमारी हो।"[1]

आगे चलकर कवि उर्वशी को करुणामयी के रूप में भी चित्रित करते हैं। दिनकर की उर्वशी दिगन्त व्यापिनी सौन्दर्य-राशि है। कवि के ही शब्दों में—

"एक मूर्ति में सिमट गयीं किस भाँति सिद्धियां सारी ?
कब था ज्ञात मुझे, इतनी सुन्दर होती है नारी?
लाल-लाल वे चरण कमल-से, कुंकुम-से, जावक-से,
तन की रक्तिमा कान्ति शुद्ध, ज्यों धुली हुई पावक से।

दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है;
वह सौन्दर्य कला जिसका सपना देखा करती है।
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की;
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।"

दिनकर की उर्वशी "स्वर्ग लोक की सुधा" "नन्दन वन को आभा" है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर की उर्वशी-सम्बन्धी रूप-कल्पना कृष्णशास्त्री की अपेक्षा अत्यन्त स्पष्ट एवं मांसल है।

कृष्णशास्त्री तथा दिनकर ने उर्वशी को विश्व-मानव की चिरन्तन प्रेयसी के रूप में देखा है। इन कवियों की उर्वशी मुनियों को तपभ्रष्ट करने वाली विलासिनी अप्सरा नहीं है। वह मानव को अनन्त आकर्षण से मुग्ध करने वाली है। कृष्णशास्त्री की उर्वशी की निम्नांकित उक्ति उसके विश्व-प्रेयसी के स्वरूप पर प्रकाश डालती है—

---

१. "नीबु तोलिप्रोद्दु नुनुमन्चु तीव सोनवु
नीवु वर्षा शरत्तुल निबिड संग
ममुन ओडमिन सन्ध्या कुमारि।"
—कृष्णशास्त्री : उर्वशि। श्री देवुल पल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ११८।

२. रामधारीसिंह दिनकर : प्रथम अंक। उर्वशी। पृ० २४।

"प्रथम वियोगिनी हूं मैं
प्रथम प्रेयसी हूं मैं।"[१]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णशास्त्री की उर्वशी चिरन्तन प्रेयसी है। दिनकर की उर्वशी सुर, नर, किन्नर या गन्धर्व कुल में जन्म लेने वाली युवती नहीं है। वह केवल अप्सरा है जो विश्व-मानव के अतृप्त कामना-समुद्र से उदित होने वाली है। वह स्वयं कहती है—

"मैं नाम-गोत्र से रहित पुष्प
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द-शिखा
इतिवृत्तहीन,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग;
सुर-नर-किन्नर-गन्धर्व नहीं,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्व नर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्‌भूत।"[२]

दिनकर की उर्वशी देश और काल के बन्धनों को स्वीकार नहीं करती। चिरयौवन सुषमादीप्त चिरन्तन नारी है। वह विश्व-प्रेयसी है। उर्वशी अपना परिचय यों देती है—

"मैं देश-काल से परे चिरन्तन नारी हूं।
मैं आत्मतन्त्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा,
रूपसी अगर मैं चिर-युवती सुकुमारी हूँ।
सरिता, समुद्र, गिरि, वन मेरे व्यवधान नहीं।
मैं भूत, भविष्यत् वर्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त;
मैं विश्वप्रिया।"[३]

कृष्णशास्त्री और दिनकर की उर्वशी-भावना में पर्याप्त साम्य के होते हुए भी दोनों की मूर्तियाँ एक-सी नहीं हैं। कृष्णशास्त्री की उर्वशी पर रावीन्द्रिक प्रभाव होने के कारण वह कहती है कि हालाहल का अनल तथा अमृत का शीतल रस

---

१. तोलि वियोगिनि नेने।
तोलि प्रेयसिनि नेने !" कृष्णशास्त्रि कुतुलु। "उर्वशी"। पृ० १२१।
२. रामधारीसिंह दिनकर : तृतीय अंक। उर्वशी। पृ० १५।
३. वही। पृ० ९९–१००।

के साथ जनम हैं और वे उसी के आजन्म सहचर हैं।[1] इस प्रकार कृष्णशास्त्री की उर्वशी-भावना पर परम्परा का प्रभाव किंचित् मात्रा में देखा जा सकता है। दिनकर ने भी कथावस्तु तथा कुछ घटनाओं को परम्परा से अवश्य ग्रहण किया है। किन्तु दिनकर ने अपनी उर्वशी-भावना को नये साँचे में ढाल दिया है। दिनकर की उर्वशी स्वयं कहती है कि वह अवचेत प्राण की प्रभा मात्र है सिन्धु की सुता नहीं—

"मैं मनोदेश की वायु व्यग्र, व्याकुल चंचल;
अवचेत प्राण की प्रभा, चेतना के जल में
मैं रूप-रंग-रस-गंध-पूर्ण साकार कमल !
मैं नहीं सिन्धु की सुता;
तलातल-अतल-वितल पाताल छोड़,
नीले समुद्र को फोड़ शुभ्र, झलमिल फेनांकुश में प्रदीप्त
नाचती उर्मियों के सिर पर
मैं नहीं महातल से निकली।"[2]

अतः उर्वशी के जन्म के सम्बन्ध में कृष्णशास्त्री तथा दिनकर की धारणाएँ पृथक है। कृष्णशास्त्री की उर्वशी विश्व-नर की चिरन्तन प्रेयसी होने के साथ-साथ वह स्वयं कवि की प्रेयसी भी है। कालिदास तथा रवीन्द्र की भाँति शास्त्री इस सौन्दर्य की मूर्ति के प्रति तटस्थ नहीं रह सके। उर्वशी कहती है कि वह सदा कवि की प्रेमिका ही है। वह नीचे दी गयी उर्वशी की उक्ति से स्पष्ट हो जाता है—

"चिरन्तन काल से मैं हूं तुम्हारी।"[3]

कवि उसके विरह में रात और दिन तड़पता रहता है। उसका अलौकिक प्रेम पाने के लिए संतप्त हो उठता है। यही दशा उर्वशी के प्रेम में पड़े हुए दिनकर के पुरुरवा की भी है। वह उर्वशी के विरह में तड़प उठता है। इस तरह कृष्णशास्त्री तथा दिनकर की उर्वशी-भावना में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। वह विश्व-प्रेयसी होने के साथ कृष्णशास्त्री तथा पुरुरवा की प्रेयसी भी है। इस प्रकार आदर्श

---

1. "हालहलानलमे अमृत शीतल रसमे
तोड़ु बुद्दुलु चाकु। तोड़ु नीडलु नाकु॥
—कृष्णशास्त्री : उर्वशी : देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० १२१।
2. रामधारी सिंह दिनकर : उर्वशी। तृतीय अंक। पृ० ९४–९५।
3. आनादि कीनादि केनु नीदांननै !"
— कृष्णशास्त्री : उर्वशी। श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० १२१।

नारी तथा आदर्श प्रेयसी की स्वच्छन्दतावादी भावना ने उर्वशी में एक चिरन्तन सौन्दर्य-मण्डित रूप पा लिया है।

(ख) प्रेम-भावना :—

स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रमुख तत्वों में प्रेम-भावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मानव-जीवन में रागात्मिका-वृत्ति का प्राधान्य रहता है। उन रागात्मिका-वृत्तियों में भी रति का अपना पृथक एवं महत्वपूर्ण स्थान है। इस के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं जैसे दाम्पत्य रति, सख्य रति, दास्य रति और वात्सल्य रति। परन्तु यहाँ दाम्पत्य रति भावना के ही अत्यन्त उदात्तीकृत रूप का ही, जिसे प्रेम-भावना कहा जा सकता है, विवेचन मुख्य है। वास्तव में प्रेम और रति में भिन्नता है। दोनों स्त्री और पुरुष के बीच के रागात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। परन्तु रति अधिक मांसल तथा शारीरिक है तो प्रेम अधिकतर वायवीय तथा मानसिक है। अनन्यता तथा आकर्षण प्रेम के मुख्य तत्व हैं। स्त्री-पुरुषों के बीच का यह आकर्षण प्रेम के अन्तर्गत अत्यन्त उदात्त रूप ग्रहण कर वह पाशविक धरातल से मानव को ऊपर उठाता है। एकाग्रता तथा अनन्यता प्रेम का सहज गुण है। प्रेम के इस गुण पर प्रकाश डालते हुए शेक्सपियर कहते हैं कि वह प्रेम नहीं है जो परिस्थितियों के अनुरूप बदलता है। स्वच्छ प्रेम घण्टों एवं सप्ताहों में परिवर्तित नहीं होता अपितु वह युगान्त तक अपने स्वरूप को बनाए रखता है।[1] हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उदात्त प्रेम-भावना की व्यंजना अपने सम्पूर्ण काव्य में की है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी प्रेम-भावना को दो मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त किया जा सकता है—(१) लौकिक प्रेम भावना, (२) आध्यात्मिक प्रेम भावना। इन दोनों प्रेम भावनाओं का अध्ययन हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य को दृष्टि में रखकर किया जायगा।

(च) लौकिक प्रेम-भावना :—प्रेम-भावना के लौकिक तथा आध्यात्मिक पक्ष विश्व के प्रायः सभी काव्य-साहित्यों में मिलते हैं। लौकिक प्रेम-भावना में प्रिय और प्रेमिका के बीच आकर्षण बना रहता है और यह प्रेम भौतिक विश्व के अंतर्गत ही

---

1. "..............................Love is not love
Which alters when it alteration finds
Love alters not with his brief hours and weeks
But bears it out even to the edge of doom."
—Shakespeare: Sonnets. Shakespeare's Complete Works. P. 1057.

घटित होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में अधिकतर प्रेम का आश्रय स्वयं कवि ही होता है और काव्य की नायिका उसके प्रेम का आलम्बन। विश्व के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाँति हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रेम-भावना वैयक्तिक धरातल पर ही चली। परन्तु इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य विषय यह है कि इन कवियों की लौकिक प्रेम-भावना ने अत्यन्त उदात्त स्वरूप ग्रहण किया। कुछ स्वच्छन्दतावादी कवियों में लौकिक प्रेम-भावना आदर्शवादी (Platonic) हो गयी। इस प्रकार की उदात्त एवं आदर्शवादी प्रेम-भावना हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद के पूर्व की कविता में भी मिल जाती है। द्विवेदी युग के "मिलन", "पथिक", "प्रिय प्रवास" तथा तेलुगु के "एकान्त सेवा", "मुसलम्म मरणमु" आदि काव्यों में उदात्त प्रेम की प्रतिष्ठा की गयी है। स्वच्छन्दतावादी-युग में प्रसाद का "प्रेम-पथिक", पंत की "ग्रंथि", गुरजाड़ अप्पाराव का "लवणराजु कल" तथा रायप्रोलु सुब्बाराव का "तृणकंकणमु" आदि ऐसे कथा-काव्य हैं, जहाँ प्रेम-भावना की उदात्तता एवं त्यागशीलता दिखाई पड़ती है। इनमें अप्पाराव के "लवणराजु कल" को छोड़कर अन्य तीन कथा-काव्यों में कथानक के साथ प्रेम का स्वरूप भी एक ही प्रकार का है। प्रसाद के प्रेम-पथिक तथा सुब्बाराव के "तृण कंकणमु" में तो प्रिय और प्रेमिका के बीच प्रेम-भावना बाल्य-दशा से ही क्रमशः बढ़ती है तो पंत की "ग्रंथि" में प्रिय और प्रेमिका का आकस्मिक मिलन एक नाव-दुर्घटना के कारण होता है। इन तीनों काव्यों में प्रिय और प्रेमिका एक दूसरे के प्रति अनन्य आकर्षण का अनुभव करते हैं। प्रिय और प्रेमिका प्रेम की पुनीत भावना को एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं। "ग्रंथि" की प्रेमिका अपनी मोहक मुद्रा से ही अनुराग यों व्यक्त करती है। कवि के शब्दों में—

"एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानों प्रणय संबंध था।"[1]

इन काव्यों में एक दूसरे के प्रति अनुरक्त प्रिय-प्रेमिका का विवाह नहीं हो पाता। इसके अनेक सामाजिक तथा आर्थिक कारण हो सकते हैं, जिनका उल्लेख इन काव्यों में नहीं मिलता। इन काव्यों के नायक या प्रेमी अपनी प्रेयसियों का अन्यों के साथ विवाह होना देखकर असीम दुख का अनुभव करते हैं। प्रेमियों के शाश्वत काल तक बिछुड़ने के इस दृश्य को पंत ने अत्यन्त मार्मिकता के साथ इस प्रकार व्यक्त किया है—

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रंथि"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८।

"हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"[1]

यद्यपि "ग्रन्थि" के नायक की भाँति शेष दो काव्यों के नायक रोदन अधिक नहीं करते, फिर भी दुख की मार्मिक अनुभूति उन में भी पायी जाती है। रायप्रोलु सुब्बाराव के "तृण कंकणमु" का नायक अपनी प्रेयसी के निश्वासों तथा आँसुओं के द्वारा उसके प्रेम की विह्वलता एवं एकनिष्ठता का परिचय पाता है। वह कह उठता है—

"पर्याप्त मुझे सखि! निश्वासों के सजल बाष्प-कण।
कोई आशा और नहीं, दिव्य प्रणय की मूर्ति मुझे।"[2]

प्रसाद के प्रेम-पथिक का प्रेमी नायक अपनी प्रियतमा की मूर्ति को हृदय में रखकर एकान्त कानन में दिन बिताता है। अंत में एक योगिनी के वेश में उसकी प्रेयसी वन में आकर नायक से मिल जाती है। दोनों प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के प्रति आकर्षण को बनाये रखते हुये भी विश्व प्रेम के महासागर के दो लघु कण बन जाते हैं। सुब्बाराव के "तृण कंकणमु" का नायक अपनी प्रेमिका से उसके विवाह के पश्चात् मिलता है और अपने प्रेम के उपहार स्वरूप एक तृण से बने हुये कंकण को दे डालता है। हिन्दी और तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी प्रेम-भावना को प्रगीतों एवं गीतों के माध्यम से प्रकट किया। सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, नार्यनि सुब्बाराव, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, तल्लावज्झुल शिवशंकर शास्त्री आदि कवियों के गीतों तथा प्रगीतों में प्रेम का आदर्शवादी स्वरूप अधिक स्पष्ट हुआ। इन सभी कवियों ने अपने काव्य में प्रेम के वियोग-पक्ष पर अधिक प्रकाश डाला। पंत और कृष्णशास्त्री ने अपनी पवित्र एवं उदात्त प्रेम-भावना को विरह की ज्वालाओं में गलाकर व्यक्त किया। इन दोनों कवियों ने अपनी प्रेयसी की रूप कल्पना कर, उसके प्रति अपनी अपार ममता को प्रकट किया। वास्तव में पंत और कृष्णशास्त्री की प्रेयसी आदर्श नारी की प्रतिमा है, जिसे इन कवियों ने अपनी कल्पना द्वारा एक निर्दिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। परन्तु वह नारी-मूर्ति भौतिक नहीं, वह अपनी पावनता एवं सुन्दरता से भरी हुई एक

---

१. वही। पृ० ४२।
२. "सखिय निश्वास बाष्पमुल चालु नाकु
लेदु वेरोक यास प्रणयवल्लीम तल्लि।"
——रायप्रोलु सुब्बाराव : तृणकंकणमु।

अशरीरी एवं अतीन्द्रिय प्रतिमा है। ये दोनों कवि उसके रूप का तथा उसके आंतरिक सौन्दर्य का वर्णन करते है। उस आदर्श प्रेयसी के प्रति अपनी अमलिन एवं उदात्त प्रेम-भावना को अभियक्त करते हैं। उसके साक्षात्कार से कवि अपरिमित आनन्द का अनुभव करते हैं। उस काल्पनिक प्रेयसी के विरह में ये कवि अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। उसके विरह में आँसू बहाते हैं और उसके साक्षात्कार से असीम आनन्द का अनुभव करते हैं। ये कवि अपने अधीन में न रहकर उस प्रेममयी नारी प्रतिमा के सौन्दर्याकर्षण से परिचालित होते हैं।[1] यही आदर्श प्रेम (Platonic Love) कहा जाता है। आदर्श प्रेम का पावनतम रूप है, जहाँ प्रेमी एवं प्रेमिका के बीच कोई भौतिक या शारीरिक सम्बन्ध नहीं रहता और एक दूसरे के प्रति अनन्य आकर्षण का अनुभव करते हैं। वास्तव में आदर्श प्रेम अभौतिक है, परन्तु उसमें भौतिक सम्बन्ध का अभाव नहीं, अपितु भौतिक सम्बन्ध का उदात्तीकृत रूप उसमें मिलता है।[2] इस प्रकार पंत और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के काव्य में आदर्श एवं उदात्त प्रेम का चित्रण हुआ है। पंत की "भावी पत्नी", "अप्सरा" तथा शास्त्री की "उर्वशी" उनकी आदर्श नारी-प्रतिमायें मात्र हैं, जिन के प्रति उनका अनन्त अनुराग है। कुछ अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ पंत में भी प्रेम का सर्वव्यापी रूप मिल जाता है। अन्य कवियों में प्रेम का विश्वजनीन स्वरूप नायनि सुब्बाराव में भी पाया जाता है। पंत के अनुसार प्रेम विश्व के प्रत्येक अणु में छाया हुआ है—

"अनिल सा लोक लोक में,
हर्ष में, और शोक में,
कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस सा सब के उर में।"[१]

नायनि सुब्बाराव ने भी प्रेम को विश्व के संचालक शक्ति के रूप में अंकित किया है :—

---

1. " the lover is taken by his love out of himself; he is in the grip of a power than himself and that power····is divine. All love springs ultimately from the same source, it is the aspiration towards the highest beauty."——(J. Ferguson: Moral Values in the Ancient World. P. 92.)
2. "Plato's love is essentially non-physical····It is not an absence of physical attachment, but its sublimation."——(J. Ferguson: Moral Values in the Ancient World. P. 89.)

३. सुमित्रानन्दन पन्त : "उच्छ्वास"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ६७।

"सूर्य चन्द्र औं ताराएं
पृथ्वी, नभ औं सभी भुवन
प्रेम-सूत्र में गुथे हुए
स्रष्टा के उर के मोती हैं ।"[1]

इस प्रकार कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रेम को एक सर्वव्यापी व्यक्तित्व प्रदान किया है ।

कुछ अन्य हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लौकिक प्रेम-भावना को अत्यन्त उदात्त एवं पवित्र धरातल पर अंकित किया है । हरिवशंराय बच्चन तथा नरेन्द्र शर्मा अपने गीतों में लौकिक प्रेम-भावना को व्यक्त करते हैं । इन दोनों का प्रेम अपनी प्रिया के वियोग में और भी घनीभूत हो जाता है । प्रिया का रूप दोनों कवियों के मानस में छा जाता है और कवि उसकी उपासना में लीन हो जाता है । नायनि सुब्बाराव अपनी "सौभद्रनि प्रणय यात्रा" में अपने को प्रेम की उपासना में निरत यात्री के रूप में चित्रित करता है । वह पावन प्रेम-भावना को अपनी प्रेयसि को सम्बोधित कर व्यक्त करता है । अन्त में वह अपनी प्रेयसी को इष्टदेवी के रूप में स्वीकार करता है । शिवशंकर शास्त्री "हृदयेश्वरी" में अपनी प्रेयसी को आराध्य देवी मानकर उसकी आराधना के गीत गाता है । वह उस सुन्दरी के सौन्दर्य की ओर आकर्षित होकर, उसे जीवन का सब कुछ मानने लगता है । कवि उसकी चेष्टाओं तथा भावनाओं का अंकन अनेक भाव-गीतों में करता है । कवि की प्रेयसी हृदयेश्वरी बन जाती है । कवि के लिए वह देवी है और वह उसकी आराधना में प्रवृत्त हो जाता है । नण्डूरि सुब्बाराव अपने "एंकि पाटलु" में एंकि और नायुडु बाव की नैसर्गिक एवं उदात्त प्रेम-भावना का सुन्दर चित्रण करता है । विश्वनाथ सत्यनारायण "किन्नेरसानि पाटलु" में एक पहाड़ी सरिता को प्रिय से बिछुड़ने वाली नायिका के रूप में कल्पना कर, उसके प्रेम-विह्वल हृदय के उद्‌गारों को प्रकट करते हैं । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लौकिक प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति की है । यहाँ ध्यान देने का विषय यह है कि आदर्श प्रेम हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्राप्त होता है । परन्तु नारी (प्रेयसी) की आराधना करने की प्रवृत्ति तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों में ही अधिकतर पायी जाती है । इसका मूल कारण उन कवियों की मनोवृत्ति के साथ-साथ सूफी-दर्शन तथा इटली के महाकवि दाँते आदि का प्रभाव भी हो सकता है !

---

१. "चन्द्रसूर्युलु तारकासमुदयम्मु
पुडमिपुनु नाकमुनु तक्कुभुवनभुलुनु
प्रेमसूत्रम्मुनं गूच्चि विश्वकर्त
गेलमुनंदाल्चु मुत्यालु गाबें तलप ।"
—नायनि सुब्बाराव : सौभद्रनि प्रणय यात्रा । पृ० १५ ।

(छ) आध्यात्मिक प्रेम-भावना :—अलौकिक प्रेम की परम्परा भारतीय काव्य में प्राचीन काल से आ रही है। परन्तु आधुनिक काल में यह आध्यात्मिक प्रेम-भावना अनेक अन्य कोमल भावनाओं से अनुरंजित होकर प्रकट हुई है। कवियों की आध्यात्मिक प्रेम-भावना का आलम्बन दो रूपों में प्रकट होता है। एक आलम्बन भक्तोचित साकार मूर्ति है तो दूसरा आलम्बन है निराकार निर्गुण ब्रह्म। पहले प्रकार के आलम्बन के प्रति कवि का पूज्य भाव-मिश्रित प्रेम रहता है तो दूसरे आलम्बन के प्रति रहस्योन्मुख प्रेम-भावना रहती है। विश्व के अधिकतर स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में रहस्योन्मुख प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में केवल हिन्दी कवियों में ही रहस्योन्मुख प्रेमभावना (आध्यात्मिक प्रेम भावना का एक स्वरूप) का चित्रण मिलता है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अलौकिक प्रेम-भावना का सर्वत्र अभाव दीखता है। केवल कुछ कवियों ने भक्ति एवं आराधना के गीत अवश्य लिखे हैं। परन्तु इनको प्रणय-भावना के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा तथा डा० रामकुमार वर्मा में रहस्योन्मुख प्रेम-भावना मिलती है। रामकुमार वर्मा कहते हैं कि प्रिय उससे विरक्त हो गया है और उसकी व्याकुल प्रार्थनाओं पर भी प्रिय ने ध्यान नहीं दिया —

"मैं असीम, ससीम सुख से, सींच कर संसार सारा।
साँस की विरुदावली से गा रहा हूँ यश तुम्हारा
पर तुम्हें अब कौन स्वर, स्वरकार ! मेरे पास लाये ?
भूल कर भी तुम न आये ?"[1]

महादेवी अपने अलौकिक रहस्यमय प्रिय से एकाकार होकर कहती हैं कि उसे अपने प्रिय तथा अपने में कोई भेद नहीं प्रतीत होता—

"तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?"[2]

इस तरह की आध्यात्मिक प्रेम-भावना का अभाव तेलुगु स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषता है।

(ग) विस्मय की भावना :—

स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषता उसकी विस्मय-भावना है। स्वच्छन्दतावादी कवि जगत् को एक शिशु या आदिम मनुष्य के दृष्टिकोण से देखता है। उसे विश्व के सभी कार्य-व्यापार तथा दृश्य आश्चर्य में डाल देते हैं। कवि में उनके विषय में

---

१. रामकुमार वर्मा : आधुनिक कवि—३। द्वितीय संस्करण। पृ० १३।
२. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—१। छठा संस्करण। पृ० ५६।

ज्ञान प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा रहती है। कवि में प्रकृति एवं जीवन के रहस्यों को जानने की उत्सुकता तथा जिज्ञासा बनी रहती है। वह सृष्टि के रहस्यों को देखकर विस्मित हो जाता है और विश्व की प्रत्येक वस्तु को आश्चर्य की भावना में डुबोकर देखता है।[1] यह कोई आवश्यक नहीं कि वस्तु में कुछ असाधारणता हो, किन्तु कवि उस वस्तु के रूप-विधान में विस्मय-भावना को भी समाविष्ट कर देता है। यह आश्चर्य या विस्मय की भावना स्वच्छन्दतावादी कवि की सौन्दर्यानुभूति पर निर्भर करती है।

हिन्दी और तेलुगु के कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों में यह विस्मय की भावना मिलती है। यह भावना विशेष रूप से सुमित्रानन्दन पन्त तथा देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री में पायी जाती है। पन्त छाया को देखकर विस्मय के साथ इस प्रकार प्रश्न करते हैं—

"कौन कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना, भू पतिता सी ?
धूलि धूसरित, मुक्त-कुन्तला
जिस के चरणों की दासी ?"[2]

कभी-कभी पन्त विहग-बालिका से पूछ उठते हैं कि तुमने प्रथम रश्मि का आना कैसे पहचाना और मीठा गान कहाँ से पा लिया ?

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ?
तूने कैसे पहचाना ?
कहो, कहाँ हे बाल विहंगिनि
पाया तू ने यह गाना ?"[3]

---

1. 'It seems certain that if romanticism is based in an atmosphere of wonder, this is not only because the imagination, for so long repressed now fully indulges itself and at once seeks its satisfaction in the wonderful. All that romantic writers imagine and feel is accompanied by a shade of wonder, because they see those emotions and those images rise within themselves with a surprising spontaneousness,"......... (Louis Cazamain : A History of English Literature. P. 999.)
२. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १७।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : प्रथम रश्मि। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० २१।

इसी प्रकार कृष्णशास्त्री भी विस्मय के साथ पूछ उठते हैं—

"पुष्प-वल्लरी सौरभ क्यों बिखेरती है ?
छिटका देता क्यों चाँद चाँदनी को ?
बहता क्यों सलिल ? वायु क्यों झोंके भरती है?"[1]

इन दोनों स्वच्छन्दतावाद के कवियों में शिशु-सुलभ विस्मय की भावना पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

(घ) विद्रोह की भावना :--

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में विद्रोह की भावना अपने चरम विकास को प्राप्त हुई है। इन कवियों ने सामाजिक एवं साहित्यिक रुढ़ियों का विरोध किया। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों तथा जड़ नियमों के विरुद्ध क्रान्ति मचा दी। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने समाज की प्राचीन रुढ़ियों एवं अंध-विश्वासों का विरोध किया है। पंत की वाणी में यह विद्रोह का स्वर अत्यन्त स्पष्ट रूप से मुखर हुआ है। कवि कोकिल से पावक कण बरसाने का अनुरोध करता है—

"गा, कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन।
पावक पग धर आयें नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव, देवुलपल्लि कृष्ण-शास्त्री ने सामाजिक बन्धनों एवं रुढ़ियों का विरोध किया। गुरजाड़ अप्पाराव ने वृद्ध-विवाह, दहेज-प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों का खण्डन "पूर्णम्मा" नामक कविता में किया। देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने क्रूर तथा कुटिल दास्यश्रृंखलाओं को समाप्त करने के लिये स्वच्छन्द गीतों का सृजन किया।[3]

---

१. "सौरभमु लेल चिम्मु पुष्प ब्रजंबु ?
चंद्रिकल नेल वेदजल्लु जंदमाम ?
एलं सलिलंबु पारु ? गाडेपल विसरु ?"
——श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ३२।

२. सुमित्रानन्दन पंत : "गा कोकिल" । पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० २२८।

३. क्रौर्य कौटिल्य कल्पित कठिन दास्य
श्रृंखलंमुलु तमंतने चेदरि पोव
गगनतलमु मार्मोगग गंठ मेत्ति
जगमुनिंड स्वेच्छागान झरुल निंतु।
---श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री। देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ७।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राचीन काव्य रुढ़ियों का विरोध किया। उनका विद्रोह अधिकतर भावना, कल्पना, विचार धारा के साथ काव्य-रूप, छन्द आदि क्षेत्रों में प्रकट हुआ। उन्होंने इतिवृत्तात्मक एवं नीरस काव्य से ऊबकर सरस एवं उत्कृष्ट कविता का सृजन किया। उन्होंने स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह का प्रतिनिधित्व किया। काव्य के क्षेत्र में हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अनेक परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों के कारण ही स्वच्छन्दतावाद ने दोनों साहित्यों में एक सुनिश्चित स्वरूप ग्रहण कर लिया।

(ङ) भक्ति-भावना : –

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्यों में भक्ति-भावना की झलक कहीं-कहीं मिल जाती है। आध्यात्मिक प्रेम-भावना के अंतर्गत भगवान के प्रति भक्त के प्रणय-निवेदन पर विचार किया गया है। हिन्दी और तेलुगु के कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों में भगवान के प्रति भक्ति भावना का दर्शन होता है। यह भक्ति-भावना दास्य भावना से ओतप्रोत है। कुछ अन्य कवियों ने भगवान तथा अपने बीच जीव-ब्रह्म का सम्बन्ध माना है। कविवर निराला अपने को भगवान का एक अमिट अंश मानकर भगवान से अपना सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित कर लेते हैं—

"तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजनी भाषा;
तुम नन्दन-वन-घन-विटप और मैं सुख-शीतल-तल शाखा,
"तुम प्राण और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्दन ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री, बसवराजु अप्पाराव एवं चावलि बंगारम्मा के काव्य में भगवान के प्रति भक्ति-भावना की झलक मिलती है। कविवर कृष्णशास्त्री भगवान को सम्बोधित कर कहते हैं कि तुम मेरे हृदय के आराध्य प्रभु हो। मैं तुम्हारी पद-रज की सम्पत्ति पाने की इच्छा से एक दीन भिक्षुक की भाँति कानन तथा वीथियों में घूम रहा हूँ। हे प्रभु ! मैं भेंट के रूप में तुम्हें क्या दे सकूंगा ?[2] बसवराजु अप्पाराव ने भी पर्याप्त मात्रा में भक्ति परक गीत लिखे हैं।

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : "तुम और मैं"। अपरा तृतीय संस्करण। पृ० ५८।

२. हृदय पति वीवु। भवदीय पद सरोज
मृतु रजोलेश दिव्य संपदतु वलचि
वीथिवीथुल वाडल विपिनमुलु
भिक्षुकुनि वोले दिरुगाडु पेद नोयि।
कान्कगा ने मोसंग्गा गलनु नीकु ?"—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ७०।

कवि भगवान के यहाँ आत्म-निवेदन करते हुये दिखाई पड़ता है। अपने जीवन की आशा-निराशा में भगवान को सम्बोधित कर कवि व्यक्त करता है। कभी-कभी अत्यन्त दैन्य के भार से दबकर भगवान की शरण में जाता है। कभी कवि की हृदयस्थ नारी को सम्बोधित कर अत्यन्त दीनता के स्वर में प्रणय-भावना को अभिव्यक्त करती है।[1] इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में कहीं-कहीं भक्ति-भावना की झलक मिलती है।

(ट) देश एवं संस्कृति के साथ कवियों का भावात्मक सम्बन्ध :--

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में अपने देश एवं उसकी संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग दिखाई पड़ता है। अपने देश के भौगोलिक वातावरण तथा वहाँ की जनता पर कवियों का मुग्ध हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक भी लगता है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी मातृभूमि के प्रति असीम प्रेम को व्यक्त किया है। कविवर निराला अपनी जन्मभूमि भारत का एक उज्ज्वल चित्र इस प्रकार अंकित करते हैं--

"भारति, जय विजय करे
कनक-शस्य-कमल घरे।
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे।[2]

प्रसाद जी ने अपने देश का गुणगान इस प्रकार किया है--

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस-गर्भ-विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल-कुंकम तारा।"[3]

कविवर पंत ने भारत माता के अत्यन्त दैन्य चित्र को प्रस्तुत किया है। कवि

---

१. "दासिगा नुंट कैन तगना प्राणेश, देव ?
पादम्मुलु नोच्चिनंत पनट्टुटं कैनतु दगना ?"
--बसवराजु अप्पाराव : बसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ११४।

२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला: भारती वन्दना। अपरा तृ० सं०। पृ० १।

३. जयशंकर प्रसाद :

भारती के दुखमय एवं असहाय स्वरूप पर अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करते हुये, प्रकाश डालते हैं—

"भारत माता ग्रामवासिनी ।
खेतों में फैला के श्यामल
धूल भरा मैला-सा आंचल,
गंगा यमुना में आँसू-जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी ।"[१]

इन कवियों के अतिरिक्त रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी "हिमालय" कविता में मातृभूमि के प्रति अपना रागात्मक सम्बन्ध व्यक्त किया ।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव तथा रायप्रोलु सुब्बाराव ने अपने देश के प्रति अपार प्रेम को व्यक्त किया है । अप्पाराव जी भारत-वासियों को सम्बोधित कर कहते हैं कि तुम अपने देश को प्यार करो । व्यर्थ वचन त्यागकर देश-हित के कार्यों में प्रवृत्त हो जाओ ।

"देश अपना प्यार कर लो
अच्छाई नित बढ़ाओ तुम
व्यर्थ बातें बन्द करके
भलाई की कामना कर"

"है देश का अभिमान मुझ में"
कहकर न मारो डींग कितने !
कर भलाई एक कोई
आम जनता को दिखाओ ।"[२]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : 'भारत माता' । आधुनिक कवि—२ । सातवाँ संस्करण । पृ० ८५ ।

२. देशमुनु प्रेमिंचुमन्ना
मंचि अन्नदि पेंचु मन्ना ।
वोट्टिमाटलु कट्टि पेट्टोय
गट्टि मेल तलपेट्ट वोय ।
देशाभिमानम् नाकु कद्दनि
वोट्टि गोप्पलु चेप्पुकोकोय
पूनि यँदैनानु वोक मेलु
कूर्चिजनुलकु चूपवोय ।"
—गुरजाड़ अप्पाराव : "देशभक्ति" । "वैतालिकुलु" । (मुदुकृष्णा से संपादित)

कविवर रायप्रोलु सुब्बाराव ने अपने देश-प्रेम की भावना को कविताओं में साकार कर दिया है। कवि अपने देश को देखकर गर्व का अनुभव करता है। वह अपने को भारतीय मानने में असीम सुख का अनुभव करता है। कवि भारत का गुण-गान विह्वल होकर गाता है। वह भारतीयों को इस प्रकार संदेश देता है—

"किस देश में भी क्यों न जाओ
किस प्रान्त औ' किस पीठ पर भी
क्यों न तुम निज पाँव धर दो;
न किसी के कथन की परवाह करके
तुम करो गुणगान अपनी मातृभूमि भारती का
औ' करो रक्षा तुम्हारे जाति-गौरव की।"[1]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने देश के प्रति प्रेम-भावना को व्यक्त किया है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी अन्य साहित्यों की स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं की भाँति अतीत संस्कृति के प्रति मोह एवं आकर्षण अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि भारत की अतीत-कालीन संस्कृति के प्रति असीम अनुराग दिखाते हैं। प्रसाद एवं निराला ने अपने काव्य की कतिपय विषय वस्तुओं को भी अतीतकालीन भारतीय संस्कृति से ग्रहण किया है। अपनी 'परिवर्तन' कविता के आरम्भ में कविवर पंत भारतीय संस्कृति के विगत वैभव का स्मरण कर इस प्रकार गद्गद् हो जाते हैं—

"कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगन्त छवि जाल,
ज्योति चुम्बित जगती का भाल?"
अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संस्सृति का प्रथम प्रभात
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा मरण भ्रू पात।"[2]

---

१. एदेशमेगिना अन्दुगालिडिन
ए पीठमेक्किना मेवरेदुरयिन
पोगडा रा नीतल्लि भूमि भारतिनि
निलुपरा नीजाति निण्डु गर्मम्मु।
—रायप्रोलु सुब्बाराव। वेतालिकुलु। संपादकः—मुद्दकृष्ण। पृ० १।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : परिवर्तन : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ११५।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि रायप्रोलु सुब्बाराव भी भारत के अतीत कालीन सांस्कृतिक वैभव की ओर दृष्टि आकृष्ट करते हैं। कवि भारतीय संस्कृति की स्वर्णिम विभा को इस प्रकार अंकित करता है—

"ऋषियों के पावन तप-धन से
धरणीशों के शौर्य-हार से
कवि-प्रभुओं के भाव-सूत्र से
भक्त, रत्न-शुचि-राग-दुग्ध से
हे पुत्र ! तुम्हारा दिव्य विश्व चिर शोभित।
हे पुत्र ! तुम्हारा पुन्य देश नित दीपित।"[1]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने देश तथा उसकी संस्कृति के प्रति अपने रागात्मक सम्बन्ध को व्यक्त किया है।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता हैं कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों का भावना-पक्ष अत्यन्त सशक्त है। उनमें स्वच्छन्दतावादी सभी भावनाओं का विकास पूर्ण रूप से उपलब्ध होता है। वास्तव में भावना पक्ष ही स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्राण-धारा है, जिस को हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इन दोनों स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में भावना की तीव्रता में पार्थक्य हो सकता है, किन्तु दोनों में सभी भावनाओं का अस्तित्व पूर्ण रूप से है।

५. विचार धारा:—

काव्य में हृदय-पक्ष के साथ बुद्धि-पक्ष को भी प्रधानता दी गयी है। हृदय-पक्ष के अन्तर्गत कवि की रागात्मिका वृत्ति का प्रकाशन होता है तो बुद्धि-पक्ष के अंतर्गत उसके बौद्धिक चिंतन को अभिव्यक्ति मिलती है। कवि अन्य प्राणियों की भाँति विश्व और जीवन के रहस्यों तथा उनकी समस्याओं पर चिंतन करता है। वह

---

१. "तम तपम्सुलु ऋषुल् धार बोयंग
शोर्यहारमु राजचन्द्रु लर्पिप
भावं सूत्रमु कवि वांधवु लल्ल
राग दुग्धमु भक्त रत्नमुल् पिदुक
वेलिगिनादि नीदिव्य विम्वम्बु पुत्र !
दीपिंचे नी पुण्य देशम्बु पुत्र !"
रायप्रोलु सुब्बाराव : जन्मभूमि। वैतालिकुलु। (मुदुकृष्ण से सम्पादित)—पृ० १ व २।

अपने दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक वस्तु तथा विषय पर विचार करता है। जगत् और जीवन की समस्याओं पर चिंतन और मनन करने के प्रश्चात् कवि उन को वाणी देता है। कुछ कवियों में काव्य में हृदय-पक्ष का प्राधान्य रहता है तो और कुछ कवियों में विचार-पक्ष का। अतः काव्य में विचार-पक्ष को एक प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में कहीं-कहीं जगत् एवं जीवन से सम्बन्धित विषयों पर विचार किया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की विचारधारा को दो मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) आध्यात्मिक विचार। (२) जगत-सम्बन्धी विचार।

(१) आध्यात्मिक विचारः—

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कहीं-कहीं पारलौकिक या आध्यात्मिक विषयों पर अपने विचारों को प्रकट किया। इसका कारण यह है कि भारत के सभी स्वच्छन्दतावादों के साथ हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों पर भारतीय आध्यात्मिक चिंतन तथा विचार-धारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। वास्तव में भारतीय संस्कृति की आधार-शिला उसकी धार्मिक भावना ही है। भारत के दार्शनिक विचारों का प्रभाव हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों पर लक्षित होता है और उन विचारों को कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों ने काव्य में अपने दृष्टिकोण के अनुसार प्रस्तुत किया है। दोनों भाषाओं की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के आध्यात्मिक विचारों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जायगा—

(१) ईश्वर-विषयक विचार, (२) अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, (३) पुनर्जन्म और कर्म-फल, (४) सर्वचेतनावाद, (५) वेदनावाद तथा करुणावाद (६) अन्य आध्यात्मिक विचार।

(च) ईश्वर विषयक विचार :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में ईश्वर के प्रति अनन्य आस्था है। ये कवि ईश्वर को सर्वविश्वव्यापी महान शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। कविवर पंत ने "**ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे**" कहकर ईश्वर के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। महाकवि जयशंकर प्रसाद विश्व के सूत्रधार ईश्वर की अनन्त शक्ति एवं उसके विराट स्वरूप के सम्मुख नत हो जाते हैं। कवि ईश्वर के स्वरूप की कल्पना स्पष्ट रूप से नहीं कर पाते। परन्तु कवि उस महान शक्तिशाली प्रभु की शक्ति को इस प्रकार स्वीकार करते हैं—

"विश्वदेव, सविता या पूषा सोम, मरुत, चंचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं किस के शासन में अम्लान ?
किस का था भ्रू-भंग प्रलय-सा जिस में ये सब विकल रहे;
अरे ! प्रकृति के शक्ति-चिन्ह थे फिर भी कितने निबल रहे।
"सदा मौन हो प्रवचन करते जिस का वह अस्तित्व कहां ?"
हे अनन्त रमणीय। कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता।[1]

इस प्रकार प्रसाद जी उस विराट ईश्वर की रूप-कल्पना नहीं कर सकते जिसके शासन में प्रकृति के सभी तत्व अपने कर्मों में लगे हुये हैं और जिसके एक भ्रू-भंग से सम्पूर्ण सृष्टि में प्रलय छा जाता है। अतः प्रसाद जी ईश्वर को विश्व तथा प्रकृति की सम्पूर्ण शक्ति को नियंत्रित करने वाले शासक के रूप में देखते हैं। परन्तु कविवर दिनकर इस विषय में प्रसाद जी से सहमत नहीं हैं। दिनकर जी ईश्वर को एक दिव्य अनुभूति के रूप में स्वीकार करते हुये कहते हैं कि ईश्वर प्रकृति का शत्रु या प्रतियोगी नहीं है। दिनकर जी के अनुसार दृश्य जगत ही ईश्वरी जगत है और दृश्य जगत में ही अदृश्य ईश्वर समाया हुआ है—

"भ्रान्ति नहीं, अनुभूति; जिसे ईश्वर हम सब कहते हैं,
शत्रु प्रकृति का नहीं, न उस का प्रतियोगी, प्रतिवल है।"
ईश्वरी जग भिन्न नहीं है इस गोचर जगती से;
इसी अपावन में अदृश्य वह पावन सना हुआ है।"[2]

इस प्रकार हिन्दी के कतिपय प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, बसवराजु अप्पाराव और चावलि बंगारम्मा आदि ने ईश्वर के प्रति अपनी शक्ति-भावना को अवश्य प्रकट किया है। परन्तु कहीं भी उन्होंने ईश्वर के स्वरूप या ईश्वरीय भावना के सम्बन्ध में विचार नहीं किया।

(छ) अद्वैत (१. ब्रह्म, २. जीव, ३. माया) और विशिष्टाद्वैत :— भारतीय दर्शन में अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत का प्रमुख स्थान रहा है। गौडपादाचार्य एवं शंकराचार्य ने ब्रह्म को सत्य एवं नित्य सिद्ध किया और जगत् को असत और भ्रम के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने ब्रह्म और जीव को अभिन्न मान लिया।

---

१. जयशंकर प्रसाद : आशा सर्ग। कामायनी। पृ० २७-२८।
२. रामधारी सिंह दिनकर : तृतीय अंक। उर्वशी। पृ० ७७।

उन्होंने इस सम्पूर्ण विश्व को माया के रुप में स्वीकार किया और कहा कि जगत् माया के स्वरूप में रहने के कारण जीव को ब्रह्म से एकाकार होने से व्यवधान उपस्थित करता है। यह गोचर जगत दुख का समुद्र है, क्योंकि वह जीव को माया के जाल में फँसाता है। अतः उन्होंने विशुद्ध ज्ञान के द्वारा "अहं ब्रह्मास्मि" की अनुभूति को जीव और ब्रह्म की एकता का साधन मान लिया। इसी दार्शनिक विचार धारा को अद्वैत-दर्शन कहा गया है।

अद्वैत-दर्शन की विचारधारा का प्रभाव हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में निराला, महादेवी तथा दिनकर पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। निराला अद्वैतवाद को भारतीय जागरण के अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं—

"मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप।
महामंत्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ
"तुम हो महान्
तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार"
जागो फिर एक बार।"

महादेवी वर्मा इस जगत को माया रूपी दर्पण के रूप में स्वीकार करती हैं। उस माया रूपी दर्पण के टूट जाने से जीव और ब्रह्म एकाकार हो जाते हैं। उसी समय माया के तिरोभाव के कारण जीव को शुद्ध ज्ञान की अनुभूति मिल जाती है और भ्रम का अंत हो जाता है—

"टूट गया वह दर्पण निर्मम।
उस में हँस दी मेरी छाया
मुझ में रो दी ममता माया
अश्रु हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख मिचौनी
प्रिय जिस के परदे में "मैं" "तुम"।"

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" : अपरा। तृतीय संस्करण। पृ० १०।
२. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि। छठा संस्करण। पृ० ६३।

महादेवी के अनुसार माया का दर्पण ही ब्रह्म और जीव के बीच परदा डालता है। कविवर दिनकर भी शंकर के अद्वैत दर्शन का समर्थन इस प्रकार करते हैं—

"महाशून्य के अंतर-गृह में, उस अद्वैत-भवन में
जहाँ पहुँच दिक्काल एक है, कोई भेद नहीं है।"[१]

दिनकर जी द्वैत भावना को मन की कृति मात्र समझते हैं। परन्तु दिनकर आचार्य शंकर की भाँति ईश्वर को प्रकृति या जगत् से भिन्न नहीं मानते, अपितु प्रकृति और परमेश्वर को एक ही मानते हैं—

"मन की कृति यह द्वैत, प्रकृति में, सचमुच, द्वैत नहीं है।
जब तक प्रकृति विभक्त पड़ी है श्वेत-श्याम खण्डों में,
विश्व तभी तक माया का मिथ्या प्रवाह लगता है
किन्तु शुभाशुभ भावों से मन के तटस्थ होते ही
न तो दीखता भेद, न कोई शंका ही रहती है।"[२]

दिनकर द्वन्द्वों के आभास तथा दृश्य-अदृश्य के भेद द्वैतमय मानस की रचना मात्र मानकर शंकर के अद्वैत दर्शन से भी बढ़कर ब्रह्म और जगत् को एकाकार मानते हैं।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अद्वैतवाद से सम्बन्धित किसी प्रकार के विचारों को व्यक्त नहीं किया।

ब्रह्म और जीव के पृथक् अस्तित्व को मानने वाले विशिष्टाद्वैत की विचार-धारा का प्रभाव हिन्दी के कवियों में निराला पर अधिकतर दिखाई पड़ता है। कवि ईश्वर से पृथक् अपनी सत्ता को स्वीकार करते हैं—

" तुम तुंग हिमालय शृंग और चंचल गीत सुर सरिता
तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कान्त कामिनी-कविता"[४]

---

१. रामधारीसिंह दिनकर : तृतीय अंक। उर्वशी। पृ० ७०।
२. रामधोर सिंह दिनकर : तृतीय अंक। उर्वशी। पृ० ७८।
३. वही—पृ० ८३—८४।

"द्वन्द्व रंच भर नहीं कहीं भी प्रकृति और ईश्वर में
द्वन्द्वों का आभास द्वैतमय मानस की रचना है।
× × ×
दृश्य अदृश्य एक हैं, दोनों, प्रकृति और ईश्वर में
भेद गुणों का नहीं, भेद है मात्र दृष्टि का, मन का।"

४. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : तुम और मैं। अपरा। तृतीय संस्करण पृ० ५८।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने विशिष्टाद्वैत की विचारधारा की पूर्ण उपेक्षा की।

(ग) पुनर्जन्म और कर्म फल :—भारत के सभी दर्शनों ने पुनर्जन्म और कर्मफल को स्वीकार किया है हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में कहीं-कहीं इनको अभिव्यक्त किया है। महादेवी की धारणा यह है कि जीव जन्म से पावन होते हुए भी अपने कर्मों के कारण कलुषित हो जाता है। इसी कारण उसे पुनः जन्म ग्रहण कर कर्म-क्रीड़ा में प्रवृत्त होना पड़ता है—

"ओ चंचल जीवन-बाल मृत्यु जननी ने अंक लगाया।
× × ×
नूतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे,
तन सजल घटा सा तड़ित छटा सा उर दे,
हँस तुझे खेलने जग में फिर पहुँचाया।—महादेवी।

तेलुगु के कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, बसवराजु अप्पाराव, नण्डूरि सुब्बाराव ने पुनर्जन्म के प्रसंग का उल्लेख किया है। उनके अनुसार पुनर्जन्म की कामना अतृप्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए होती है। कृष्णशास्त्री अपनी प्रेयसी उर्वशी की भाँति अपने को चिरन्तन मानते हैं। कवि उससे कहता है कि वह (उर्वशी) उसके हृदय में अनेक कल्पों से निवास कर रही है।[1] कवि के कथन का तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण के बन्धन से वह और उसकी प्रेयसी मुक्त हैं। बसवराजु अप्पाराव अपनी पत्नी से कहते हैं कि पूर्वजन्म में हम ने कुछ पुण्य किया है और इसी कारण हमारे यहाँ सुन्दर शिशु का जन्म हुआ है।[2] वहाँ अप्पाराव ने कर्म-फल का भी उल्लेख परोक्ष रूप से किया है। कविवर नण्डूरि सुब्बाराव के "यॅंकि पाटलु" का नायक नायिका से पूछ उठता है कि पूर्वजन्म में हम कौन थे। उस समय नायिका (यॅंकि) लाज से सहम जाती है। पुनः नायक पूछता है कि आगामी जन्म में हम कहा जन्म लेंगे ? तो वह कुतूहल से देखने लगती हैं।[3] इस प्रकार पुनर्जन्म के प्रति आस्था तेलुगु के कुछ स्वच्छन्दतावादी कवियों में अवश्य वर्तमान है।

---

१. "इन्निकल्पालु कालु नायेद नडंगि"—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ११८।

२. "वेनक जन्मलो येमि पेट्टि पुट्टितिमो ?
बंगारु पंडटि पसिबाल कलिगे।"
—बसवराजु अप्पाराव : बसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० १३६।

३. "येनक अल्मंलोन येवरमोनंटि
सिगोच्चि नव्विंदि सिलक नायेंकि
मुंदु मनके जल्म मुन्दोले यंटि
तेल्ललेल बोयिंदि पिल्ल नायेंकि।"—नण्डूरि सुब्बाराव। यॅंकि पाटलु। पृ० २८

(ग) **सर्वचेतनावादः**—सर्वचेतनावाद (पांथिज़म्) विश्व के प्रत्येक अणु में भगवान के अस्तित्व को मानता है। उसके अनुसार ईश्वर की चेतना विश्व के सभी पदार्थों में छायी हुई है। पश्चिम की यह आध्यात्मिक विचारधारा भारतीय सर्वात्मवाद तथा सूफियों के प्रतिविम्बवाद में ईश्वर का संपूर्ण सृष्टि में प्रतिबिम्बित होना सर्वचेतनावाद के अत्यन्त निकट प्रतीत होते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने रवीन्द्रनाथ और अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के माध्यम से पाश्चात्य सर्वचेतनावाद एवं प्राकृतिक दर्शन को ग्रहण किया और उनका समन्वय भारतीय सर्वात्मवाद के साथ किया। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने विश्व के सभी पदार्थों में एक ही चेतन तत्व के अस्तित्व को मान लिया—

"एक छवि के असंख्य उड़ुगन,
एक ही सब में स्पन्दन;
एक छवि के विभात में लीन
एक विधि के रे नित्य अधीन।"[1]

कविवर पंत की उपर्युक्त पंक्तियों में सर्वचेतनावाद का प्रभाव एवं उसकी अभिव्यक्ति पाई जाती है। कविवर दिनकर भी ईश्वर की चेतना को विश्व के प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त पाते हैं——

"यह अरुप आभा-तरंग अर्पित उसके चरणों पर
निराकार जो जाग रहा है सारे आकारों में।"[2]

कविवर दिनकर का कथन है कि शिखरों में जो मौन धारण कर रहा है वही झरनों की ध्वनि के रूप में गर्जन कर रहा है, अम्बर में जिस की ज्योति बिखरी हुई है, वही गत के अंधकार में भी विद्यमान है——

"शिखरों में जो मौन, यही झरनों में गरज रहा है,
ऊपर जिस की ज्योति, छिपा है वही गर्त के तम में।"[3]

इस प्रकार हिन्दी के कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सर्वचेतनावादी विचारधारा को अपने काव्य में वाणी दी।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में सर्वचेतनावाद का स्पष्ट प्रभाव एक प्रकार नगण्य ही है। परन्तु कुछ कवियों पर तो सूफियों के प्रतिबिम्बवाद का

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : परिवर्तन। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १२८।
२. रामधारीसिंह दिनकर : तृतीय अंक : उर्वशी। पृ० ७१।
३. वही। पृ० ७८।

प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इस प्रतिबिम्बवाद से सर्वचेतनावाद अधिकतर समानता रखता है। बसवराजु अप्पाराव अपनी कविता "लैला-मज्नू" में मजनू के मुख से लैला के विराट स्वरूप का वर्णन कराते हैं। प्रसंग तो यह है कि अपने विवाह के पश्चात् लैला एक दिन अपने पूर्व प्रियतम मज्नू के दर्शन के लिये जाती है। उस समय मज्नू अपनी प्रेम-समाधि में था। लैला कहती है कि वह उसे देखने आ गयी है। परन्तु मज्नू उस समय तक लौकिक प्रेम के धरातल को पारकर चुका था। अब प्रेम उसके लिये एक आत्मानन्द का विषय बनकर रह गया। वह अपनी प्रेयसी लैला को विश्व के प्रत्येक कण में देखने लगा। इसी कारण उसने लैला से इस प्रकार कहा—

"लैला हो तुम ? नहीं; तुम कैसे लैला हो सकती हो ?
सारे जग में छाकर वह प्रकाश-किरणें बिखराती है।"

यों कहकर--

"लैला कहते लतिकाओं को लेकर आलिंगन में
लैला कहते फूलों पर अंकित करके चुम्बन।
लैला कहते विहगों को सस्नेह बुलाकर।
चल पहुँचा मज्नू आनन्द धाम में।"

इस प्रकार बसवराजु अप्पाराव पर प्रतिबिम्बवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

(ङ) वेदनावाद तथा करुणावाद :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में वेदनावाद तथा करुणावाद को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। अधिकांश कवियों के काव्य आँसुओं से गीले हैं। हिन्दी के कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा तेलुगु के कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, वेतुल सत्य-नारायण शास्त्री, शिवशंकर शास्त्री, नायनि सुब्बाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि के काव्य में वेदनावाद तथा करुणावाद को प्रमुखता दी गयी है। इन कवियों में बहुतों

१. "लैलवा कल्ल; नीवेटलु लैलवोदु ?
विश्वमेल्लनु दानथै वेलुगु नामे।
मंचु लैला यनुचु गौगलिंचि लतल।
पूवुलनु लैलायंचु मुद्दुगोनुचु।
पक्षुलनु लैलायंचु पलुकरिंचि।
बोये मज्नुडु आनन्द पुरमु जेर।"
--बसवराजु अप्पाराव: बसवराजु अप्पाराव : गीतालु –पृ० ५८

की वेदना प्रणय-वैफल्य के कारण है और कविगण अपनी प्रेयसी के वियोग में आँसू बहाते हुये पाये जाते हैं। परन्तु कृष्णशास्त्री और महादेवी के काव्य के मुख्य प्रतिपाद्य ही वेदना और करुणा हैं। इन दोनों का काव्य एक आध्यात्मिक वेदना एवं करुणा की भावनाओं से ओतप्रोत है। महादेवी के काव्य की वेदना मिश्रित काव्य की धारा पर बौद्ध दर्शन के दुखवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से पाया जाता है।[1] बुद्ध ने दुख को राग या तृष्णा का पर्यवसान मानकर मानव को इच्छा रहित होने के लिये कहा। उनके अनुसार यह रागमय तृष्णामय जगत् दुख का अनुभव करता है। इस बौद्ध दर्शन का प्रभाव जयशंकर प्रसाद पर भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। महादेवी वर्मा दुःख में अज्ञात प्रियतम को ढूँढती है—

"पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुम को पीड़ा में ढूँढा
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।"[2]

महादेवी आध्यात्मिक विरह में आँसू भरती हैं और करुणा-कातर हो जाती हैं। वह अपने नेत्रों को आँसू बहाने के लिये कहती हैं—

"झरते नित लोचन मेरे हों।
जलती जो युग-युग से उज्ज्वल
आभा से रच रच मुक्ताहल,
वह तारक-माला उन की,
चल विद्युत् के कंकन मेरे हों।"

इस प्रकार महादेवी वर्मा ने अपने गीतों में वेदनावाद तथा करुणावाद की अभिव्यक्ति दी।

---

१. "करुणा बाहुल्य होने के कारण बुद्ध-सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।....मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्ध प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रुढ़ियों में दबे हुये, निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुये और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुये भी जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव जगत् की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है।"
—महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—१ की भूमिका पृ० ३६।

२. महादेवी वर्मा : "रश्मि"। पृ० २४।

३. महादेवी वर्मा : "आधुनिक कवि" भाग १—छठा संस्करण। पृ० ६६।

कृष्णशास्त्री के काव्य में भी अनन्त करुणा एवं वेदना का दर्शन होता है। कवि अपनी चिरन्तन प्रेयसी के विरह में उठता है। कवि का कथन है कि उसकी प्रेयसी ने अनेक कल्पों से उस के हृदय में स्थान पा लिया है। कवि उसकी प्रतीक्षा करता है, उसके विरह में अपार पीड़ा का अनुभव करता है। वास्तव में कृष्णशास्त्री के काव्य की आधार भूमि वेदना एवं करुणा ही है। इस प्रकार कृष्णशास्त्री पर लौकिक भावनाओं का देवीकरण (डीफ़िकेशन) और वेदनामय खिन्नता (पेईनफुल मेलनकल्ली) आदि स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख सांस्कृतिक विचारधाराओं का प्रभाव पाया जाता है। इन का प्रभाव प्रसाद के 'आँसू' पर भी देखा जा सकता है। कृष्ण-शास्त्री में घनीभूत वेदना रह रहकर उमड़ पड़ती है। यहाँ तक कवि समझ लेता है कि उसके लिये वेदना ही प्राण समान हैं। वह अपनी आदर्श प्रेयसी की भी वेदना एवं करुणा की साकार मूर्ति के रूप में कल्पना करता है। कवि को वेदना ही सुख प्रदान करती है—

"मेरे जलते उर में छिपकर कितने ही कल्पों से
मर्म वेदना का सुख, जो है मुझे प्रीतिकर प्राणों से।"[1]

कवि के पास निश्वासों के तालवृत्त हैं और आँसू की लड़ियाँ भी। उसे आनन्द प्रदान करने वाली दुख की निधियाँ भी हैं—

निश्वासों के ताल-वृत्त औ,
आँसू की लडियाँ हैं मुझ में
आनन्द मुझे देनेवाली
दुख की निरुपम निधियाँ भी हैं।"[2]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों में वेदना-वाद तथा करुणावाद का सम्यक् परिपाक मिलता है। परन्तु यहाँ स्वच्छन्दतावादी वेदना का पूर्ण रूप महादेवी की अपेक्षा कृष्णशास्त्री में अधिक मुखर हुआ है।

---

१. "इन्निकल्पालु कालु नायेद नडंगि
नाकु प्राणमे यगु वेदना सुखम्मु"

—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ११८।

२. नाकु निश्वास ताल वृंतालु कलवु,
नाकु गन्नीटि सरल दोन्तरलु कलवु,
नाकमूल्य मपूर्व मानन्द मोसगु।
निरुपम निताल्न दुःखपुनिधुलु कलव"

—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ५८।

(ङ) अन्य अध्यात्मिक विचार :—

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों पर कुछ अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव लक्षित होता है। परन्तु यह प्रभाव तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद पर अत्यन्त अधिक है। इसका कारण उस काव्य धारा के कवियों की मानसिक प्रवृत्ति और उन पर पड़े हुये प्रभाव ही हैं। उपर्युक्त दार्शनिक विचारधाराओं के अतिरिक्त हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा में रहस्यवाद, सांख्य और वेदान्त, शैवागम के आनन्दवाद, सूफी मत और निर्गुण पंथ आदि की विचारधाराओं का प्रभाव और उनकी अभिव्यक्ति का दर्शन होता है। परन्तु तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा पर सूफ़ीमत का किंचित् प्रभाव मात्र देखा जा सकता है।

(ख) जगत्-सम्बन्धी विचार :—

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में कहीं-कहीं जीवन और जगत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। कवि एक सामाजिक प्राणी होने के कारण वह व्यक्ति और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार करता है। स्वच्छन्दतावादी कवि प्रत्येक विषय को अपने दृष्टिकोण से देखकर अपने विचारों को वाणी देता है। हिन्दी और तेलुगु के कवियों के जगत्-सम्बन्धी विचारों का निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

(१) जगत् की परिवर्तन शीलता, (१) मानवतावादी विचारधारा, (३) प्रेम-सम्बन्धी विचार, (४) सुख-दुख सम्बन्धी विचार, (५) स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर विचार, (६) व्यक्ति-समाज के सम्बन्धों पर विचार, (७) अन्य विचार।

(च) जगत् की परिवर्तन शीलता :—कालचक्र की गति के साथ सम्पूर्ण विश्व घूमता रहता है। परिवर्तन ही विश्व का नियम है। ईश्वर के अस्तित्व का निराकरण करने वाले स्वसन् वेद उपनिषद् के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि के मूल तत्व दो ही हैं— प्रथम तो प्रकृति है जो सभी पदार्थों का जन्मस्रोत एवं स्रष्टा है। द्वितीय तो काल है जो सभी वस्तुओं एवं पदार्थों का नाश करता है। अतः परिवर्तन काल का चिरन्तन नियम है। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ इस परिवर्तन के अटल नियम के नियंत्रण में रहता है। परिवर्तन के सम्मुख उन पदार्थों का वश नहीं चलता। परिवर्तन के इस विश्व-

---

1. "There is no incarnation, no God, no heaven, no hell. All traditional religious literature is the work of conceited fools; nature, the originator and time, the destroyer, are the rulers of things."—Swasan Ved Upanishad, Sutra. II.

व्यापी स्वरूप पर हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पंत और रामधारीसिंह दिनकर ने प्रकाश डाला है। पंत की "परिवर्तन" के विश्वव्यापी स्वरूप का अत्यन्त विराट रूप चित्रपट पर अंकित किया है। कवि विश्व के प्रत्येक दृश्य में परिवर्तन को ही पाता है—

"आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात।
चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार अज्ञात।"[1]

जगत की परिवर्तनशीलता को देखकर कवि चिंतन करने लगता है कि क्यों जगत का स्वरूप ऐसा है। कवि का हृदय इस निष्ठुर परिवर्तन को देखकर क्षुब्ध हो उठता है और कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है—

"अहे निष्ठुर परिवर्तन।
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन।"

+ + +

"एक सौ वर्ष नगर उपवन
एक सौ वर्षे विजन वन,
यही तो असार संसार।
सृजन, सिंचन, संहार।"[3]

इस प्रकार कविवर पंत ने परिवर्तन के विश्व-विजयी तथा विश्वव्यापी स्वरूप पर पूर्ण प्रकाश डाला है। कविवर दिनकर परिवर्तन को विनाश नहीं मानते। वे परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रकृति की सहज प्राण-धारा के रूप में स्वीकार करते हैं—

"यह परिवर्तन ही विनाश है ? तो फिर नश्वरता से
भिन्न मुक्ति कुछ नहीं, किन्तु परिवर्तन नाश नहीं है
परिवर्तन प्रक्रिया प्रकृति की सहज प्राण-धारा है।"[4]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने परिवर्तन के स्वरूप या उसकी प्रक्रिया पर विचार नहीं किया है।

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : परिवर्तन—पल्लविनी। तृतीय संस्करण—पृ० ११७
२. वही—पृ० १६९।
३. वही—पृ० १२३।
४. रामधारीसिंह दिनकर : तृतीय अंक—उर्वशी। पृ० ८१।

(ग) **मानवतावादी विचारधारा:**--मानवतावादी विचारधारा मनुष्य को विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानती है और मानव को सब से महान सिद्ध करती है। मानव ने अपने मस्तिष्क के बल से प्रकृति पर विजय प्राप्त की है और अपने सौन्दर्य-बोध से काव्य और अन्य कलाओं की सृष्टि की है। मानव ने एक सुगठित समाज का संगठन किया। उसने प्राचीन नियमों को तोड़कर नवीन नियमों का निर्माण किया है। मानवतावादी विचारधारा ने धर्मों के बन्धनों में जकड़े हुए विश्व-मानव को मुक्त कर उसमें स्वाभिमान भरने की चेष्टा की। कविवर रवीन्द्र अधुनिक काल में विश्व-मानवतावाद के प्रमुख समर्थक रहे हैं। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त ने मानवतावादी विचारधारा को सशक्त वाणी दी है। मानव की महानता को दृष्टि में रखकर पंतजी ने मानव को सब से सुन्दरतम घोषित किया है—

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।"[1]

मानवतावादी कवि पन्त मानव में महान गुणों का दर्शन कर उसे सृष्टि के अन्य रहस्यों के अन्वेषण करने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। वे मानव को पूर्ण मानव के रूप में देखना चाहते हैं—

"मानव का मानव पर प्रत्यय
परिचय मानवता का विकास,
विज्ञान-ज्ञान का अन्वेषण
सब एक, एक सब में प्रकाश।
क्या कभी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव ?"[2]

इस प्रकार कविवर पन्त ने अपने काव्य में मानव की महानता का गुणगान कर मानवतावादी विचारधारा को व्यक्त किया है।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों पर मानवतावादी विचारधारा का प्रभाव तो अवश्य है परन्तु इस काव्यधारा के किसी कवि ने इस विचारधारा को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत नहीं किया है।

(घ) **प्रेम-सम्बन्धी विचार:**—हिन्दी व तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रेम-भावना को व्यक्त करने के अतिरिक्त प्रेम के स्वरूप पर चिंतन एवं मनन किया

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : आधुनिक कवि–२। सातवाँ संस्करण। पृ० ६६।
२. वही—पृ० ७०।

है। जयशंकर प्रसाद ने प्रेम-पथिक में अपनी प्रेम-सम्बन्धी धारणा को व्यक्त किया है।

प्रसादजी प्रेम को एक यज्ञ के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन करना पड़ेगा। वह एक पवित्र पदार्थ है, जिस में कपट की छाया भी नहीं रहती। उसका अस्तित्व व्यक्तिमात्र तक ही सीमित नहीं रहता, क्योंकि वह स्वयं ईश्वर का स्वरूप है। रूपजन्य प्रेम तो केवल मोह होता है। प्रेम में ऐन्द्रियता नहीं होती। प्रेम अत्यन्त उदार और अनन्त है। प्रेम जगत का चालक है, जिस के आकर्षण में खिचकर मिट्टी जलपिंड आदि भ्रमण किया करते हैं—

"यह जो केवल रूपजन्य है मोह न उस का स्पर्धी है
यही व्यक्तिगत होता है; पर प्रेम उदार, अनन्त अहो
प्रेम जगत का चालक है, इस के आकर्षण में खिच के
मिट्टी वा जलपिण्ड सभी दिन-रात किया करते केरा।"[1]

प्रसादजी प्रेम को व्यक्तिगत नहीं मानते। इसी कारण विश्व को ही प्रियतम मान लेने पर प्रसाद का प्रेम-पथिक अनन्त आनन्द का अनुभव करता है। प्रसादजी प्रेम-पथ को अनन्त बताते हुए उसे पाने के लिए पथिक को इस प्रकार प्रेरित करते हैं—

"इस पथ का उद्देश्य नहीं हैं श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिस के आगे राह नहीं।"[2]

कविवर निराला प्रेम को सभी प्राणियों को आपस में बाँधने वाली आकर्षण-शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं—

"प्रेम सदा सी तुम असूत्र हो
उर उर के हीरों के हार
गूँथे हुए प्राणियों को भी
गुंथे न कभी, सदा ही सार।"[3]

कविवर पन्त अपनी "ग्रन्थि" में प्रेम के स्वरूप पर विचार करता है। कवि प्रेम को अत्यन्त भोला मानता है। उसका निर्माण ही वेदना के विकल हाथों से हुआ है। उसमें उन्माद तथा ताप भी है। वह मस्त हाथी की भाँति झूमता है, परन्तु

---

१. जयशंकर प्रसाद : प्रेम-पथिक। चतुर्थ संस्करण। पृ० २३।
२. वही—पृ० २२।
३. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अनामिका। पृ० ३३।

वह चपल और अज्ञान भी है। उसके पास केवल हृदय ही है, मस्तिष्क नहीं। इसी कारण वह हृदय को छीन कर किसी अपरिचितों के हाथ में सौंप देता है। कवि के ही शब्दों में--

"पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे, हृदय को छीनकर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में।"[1]

कविवर दिनकर ने अपने "उर्वशी" काव्य में प्रेम पर सम्यक् विचार किया है। वे दो प्रकार के प्रेम को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। प्रथम प्रकार का प्रेम वह मानसिक प्रेम है जहाँ प्रिया और प्रेमी के बीच आकर्षण तो बना रहता है, परन्तु कोई दैहिक सम्बन्ध नहीं रहता। दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जिसमें प्रिया और प्रेमी के मानस ही नही, अपितु दोनों के तन भी एक से हो जाते हैं। कविवर दिनकर के तर्क के अनुसार पहले प्रकार का प्रेम, चाहे जितना भी पवित्र हो, अधूरा है। कवि प्रश्न करते हैं कि इस मानसिक मिलन से प्रिया या प्रेमी को क्या मिलता है? उन का कथन है कि ऐसे प्रेमियों में केवल अन्तर्दाह, वेदना एवं अतृप्ति मात्र पाये जाते हैं। परन्तु वे अपने व्रत के भंग होने के भय से मन को इस भ्रांति के कारण जलाते हैं कि तन पर तो कोई कलंक नहीं है। दिनकर एक तार्किक की भाँति कहते हैं मन के मलिन हो जाने से तन की शोभा भी म्लान पड़ जाती है। अतः वे प्रेम के सम्बन्ध में तन-मन के भेद को स्वीकार नहीं करते। एक अन्य स्थान पर दिनकर यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि देह प्रेम का आलम्बन होते हुए भी उसका अंतिम साध्य नहीं है। वह देह के धरातल का अतिक्रमण कर मन के गुह्य लोकों में प्रवेश करता है। प्रथमतः प्रेम आँखों के मिलन से आरम्भ होकर मर्म तक पहुँच जाता है। उसके पश्चात् वह मन के गुह्य लोकों में विलीन हो जाता है। इसी कारण पहले प्रिया एक ही रूप में दिखाई पड़ती है, उसके पश्चात् वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती है। कवि के ही शब्दों में---

'देह प्रेम की जन्म-भूमि है, पर, उस के विचरण की
सारी लीला-भूमि नहीं सीमित है रुधिर-त्वचा तक
जगता प्रेम प्रथम लोचन में, तब तरंग-निभ मन में
प्रथम दीखती प्रिया एक देही, फिर व्याप्त भुवन में।"

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "ग्रन्थि" पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४५।
२. देखिए---उर्वशी (रामधारी सिंह दिनकर) पृ० १००।
३. रामधारी सिंह दिनकर--उर्वशी। पृ० ६२।

इस प्रकार दिनकर आदर्शवादी प्रेम (प्लेटोनिक लाउ) को पूर्ण प्रेम के रूप में स्वीकार नहीं करते।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी प्रेम के स्वरूप पर विचार किया है। कविवर गुरजाड अप्पाराव ने मोह और प्रेम में अन्तर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार मोह प्रेम नहीं है। यौवन के साथ मोह भी समाप्त हो जाता है। परन्तु नारी और पुरुष में प्रेम अन्त तक बना रहता है।[1] बसवराजु अप्पाराव कविवर टेनीसन की भाँति कहते हैं कि प्रेम का अनुभव किए बिना जीवित रहने की अपेक्षा प्रेम में विफल होकर विलाप करना ही श्रेयस्कर है।[2] कवि प्रेम को सभी काम्य पदों से श्रेष्ठ सिद्ध करता है। नायनि सुब्बाराव प्रेम को सर्वव्यापी तत्व के रूप में देखता है। कवि के अनुसार प्रेम आकाश को भेद कर स्वर्ग तक पहुँच सकता है, नरक में तृप्ति का अनुभव करा सकता है, सम्पूर्ण विश्व में वह फैल सकता है। प्रेम ऐसा सूत्र है जिस में सूर्य, चन्द्र, तारायें, आकाश, पृथ्वी तथा अन्य भुवन मोतियों की भाँति पिरोए गए हैं—

सूर्य, चन्द्र और तारायें
पृथ्वी नभ औ' सभी भुवन
प्रेम सूत्र में गुँथे हुए
स्रष्टा के उर के मोती हैं।'[3]

नायनि सुब्बाराव की प्रेम-सम्बन्धी धारणा निराला की धारणा से मिलती है। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अधिकतर प्रेम पर आदर्शवादी दृष्टिकोण से विचार किया है।

---

१. "मरुलु प्रेमनि मदि दलंचकु
मरुलु मरलुनु वयसु तोडने
माय मर्ममु लेनि नेस्तमु
मगुवलकु मगवारि कोक्कटे।"
—गुरजाड अप्पाराव—मुत्याल सराल्। पृ० ६।

२. "वलपेरुगिक ब्रतिकि कुलिकि मुरिसेकन्न
वलसि विफलम्मोंदि विलपिय मेलुरा।"
—बसवराजु अप्पाराव गीतालु—पृ० ८०।

३. "चन्द्र सूर्युलु तारकासमुदयम्मु
पुडमियुनु नाकमुनु तक्कुभुवनमुलुनु
प्रेमसूत्रम्मुनंगृच्चि विश्वकर्त
गलमुनन्दा मुत्याल् गावे तलुप :"
– नायनि सुब्बाराव : सौभद्रनि प्रणय यात्रा। पृ० १५।

(ट) **सुख-दुख सम्बन्धी विचारः**– मानव-जीवन सुख और दुख से भरा हुआ समुच्चय है। मानव अपनी अभिलाषाओं व आशाओं की पूर्ति होने पर सुख का अनुभव करता है और उनके विफल हो जाने पर दुख का। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद और पन्त ने सुख और दुख पर विचार किया है। पन्त जी मानव-जीवन में सुख और दुख का संतुलन चाहते हैं, क्यों कि -

"जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे ! अति सुख से
मानव-जग में बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।"[1]

कविवर पन्त मानव जीवन की कल्पना दरहास अश्रुपूर्ण आनन के रूप में करते हैं—

"यह साँझ उषा का आँगन
आलिंगन विरह मिलन का
दरहास अश्रुमय आन
रे इस मानव-जीवन का।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सुख एवं दुख की अनुभूतियों को अवश्य व्यक्त किया है, परन्तु उन पर विचार नहीं किया।

(४) **स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर विचार**:—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर कहीं-किहीं विचार किया गया है। हिन्दी के कवियों में जयशंकर प्रसाद ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर सम्यक् विचार किया है। कविवर प्रसाद ने स्त्री और पुरुष को मानव-जीवन के दो पक्षों के रूप में स्वीकार किया है। उन के अनुसार वे एक दूसरे के पूरक हैं। कवि की दृष्टि में दोनों समान हैं। प्रसाद जी स्त्री और पुरुष में समन्वय की कामना करते हैं। पुरुष जब पुरुषत्व के मोह में पड़कर नारी की सत्ता को अस्वीकार करता है तो प्रसादजी स्त्री-पुरुष को नारी के अस्तित्व को पहचानकर उसे सम्माननीय स्थान देने के लिये यह प्रबोध देते हैं—

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता ही सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[3]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : आधुनिक कवि–२। सातवाँ संस्करण। पृ० ५०।

२. वही। पृ० ५०।

३. जयशंकर प्रसाद : कामायनी। पृ० १३३।

कोमल भावनाओं की नारी पुरुष के कठिन हृदय पर केवल अपनी सुकुमारता एवं सहृदयता के द्वारा शासन कर सकती है ।[1] इस प्रकार प्रसाद स्त्री और पुरुष के बीच संतुलन को मानव-जीवन की सफलता का साधन मानते हैं । हिन्दी के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी के आदर्श रूप की कल्पना ही की है, न कि समाज में लक्षित होने वाली सामान्य नारी की । तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नारी के प्रति आदर्श भावना को अपनाने के कारण कहीं भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर विचार नहीं किया ।

(५) **व्यक्ति-समाज के सम्बन्धों पर विचार :**—चिरन्तन काल से व्यक्ति और समाज की समस्याओं को सुलझाने के लिये अनेक राजनैतिक चिंतकों एवं समाज-शास्त्रियों ने अनेक समाधान प्रस्तुत किये हैं । उनमें व्यक्तिवाद, पूँजीवाद, प्रजातंत्र-वाद तथा समाजवाद अत्यन्त प्रमुख हैं । व्यक्तिवाद समाज को व्यक्तियों से निर्मित एक संस्था के रूप में स्वीकार करता है । वह प्रत्येक व्यक्ति की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है । समाजवाद इसके विपरीत व्यक्ति को समाज का एक अभिन्न अंग मान कर समाज को एक पूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार करता है । व्यक्तिवाद में .व्यक्ति समाज को अपने नियंत्रण में रखना चाहता है तो समाजवाद में समाज व्यक्ति पर नियंत्रण रखता है । एक प्रकार से ये दोनों राजनैतिक विचारधारायें व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के विषय में अतिवादी हैं । इन दोनों अतिवादों का निराकरण कर प्रसादजी एक आदर्श प्रजातंत्र की कल्पना करते हैं, जहाँ शासक तथा शासित के बीच सामंजस्य हो, एक अन्य के अधिकारों का ध्यान रखता हो । प्रसाद के प्रजातंत्र की कल्पना सम्पूर्ण मानवता को लेकर है । प्रसादजी के अनुसार व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज का ध्यान रक्खे और अपनी ओर से समाज को वैयक्तिक बन्धनों में न जकड़ना चाहिये । व्यक्ति के लिये अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये समाज का अहित करना उचित नहीं है । प्रसादजी व्यक्ति और समाज में भी समन्वय स्थापित करना चाहते हैं । कवि शासक की निरंकुशता का विरोध करते हैं—

"तुम दोनों देखो राष्ट्रनीति
शासक बन फैलाओ न भीति ।"[2]

इस प्रकार प्रसादजी व्यक्ति और समाज की समस्याओं को समरसता के दृष्टिकोण द्वारा समाधान दिखाते हैं । सामान्य रूप से व्यक्तिवाद का समर्थन करने वाले हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध पर गंभीर विचार नहीं किया ।

---

१. शासन करोगी इन मेरी क्रूरताओं पर
निज कोमलता से मानस की माधुरी से"—प्रलय की छाया : लहर । पृ० ७१ ।

२. जयशंकर प्रसाद : दर्शन सर्ग । कामायनी । पृ० १६४ ।

अन्य विचारः—वैसे तो हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कुछ अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी अपने अमूल्य विचारों को प्रकट किया है। उन्होंने वेदना, लज्जा, चिन्ता, आशा आदि मानसिक भावनाओं एवं वृत्तियों पर विचार किया है। प्रसादजी लज्जा के स्वरूप पर गम्भीर चिंतन करते हैं। वे लज्जा को नारी की किशोर सुन्दरता की रक्षा करने वाली के रूप में देखते हैं—

"चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।"[1]

प्रसाद और दिनकर ने मानव हृदय एवं बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया है। कविवर प्रसाद मानव में हृदय और बुद्धि का संतुलन चाहते हैं। किसी एक के आधिक्य से मानव-जीवन में संतुलन नष्ट हो जाता है और मानव-जीवन में बाधायें उत्पन्न हो जाती हैं। प्रसादजी मस्तिष्क (बुद्धि) और हृदय के संघर्ष को इस प्रकार अंकित करते हैं—

"मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध दोनों में हो सद्भाव नहीं
वह चलने को जब कहे कहीं तब हृदय विकल चल जाय कहीं।"

कवि मस्तिष्क एवं हृदय के सामंजस्य में ही मानव-जीवन की पूर्णता को मानते हैं। कविवर दिनकर मानव-जीवन में हृदय को बुद्धि से कहीं अधिक महत्व प्रदान करते हैं। दिनकर के अनुसार बुद्धि तो केवल सोचती है, परन्तु हृदय अनुभव करता है। बुद्धि से निर्मित वस्तुओं में प्राण-स्पन्दन नहीं दिखाई पड़ता। चित्र और प्रतिमाओं में जो जीवन लहराता है वह बुद्धि के चिन्तन से नहीं अपितु कलाकार के हृदय को आन्दोलित करने वाले रुधिर के आवेग से निर्मित हुआ है—

"रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है।
निरी बुद्धि की निर्मितियाँ निष्प्राण हुआ करती हैं;
चित्र और प्रतिमा, इन में जो जीवन लहराता है,
वह सूझों से नहीं, पत्र-पाषाणों में आया है
कलाकार के अंतर के हिलकोरे हुए रुधिर से।"[3]

---

१. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ८४।
२. जयशंकर प्रसाद : इडा सर्ग। कामायनी। पृ० १३६।
३. रामधारी सिंह दिनकर : उर्वशी। पृ० ५६।

इस प्रकार हिन्दी के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जीवन और जगत से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विचारों को व्यक्त किया है। परन्तु इन विषयों पर चिंतन करने की प्रवृत्ति तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में नहीं मिलती।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में आध्यात्मिक एवं जगत-सम्बन्धी विचार-धारायें मिलती हैं। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का चिंतन या विचार-पक्ष अत्यन्त दुर्बल और क्षीण है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में चिन्तन-पक्ष को प्रधानता मिली है तो तेलुगु-स्वच्छन्दतावाद में भावना-पक्ष या भावुकता को। इतनी भिन्नता तो दोनों स्वच्छन्दतावादों के बीच स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

६. प्रकृति चित्रण:—

अनादिकाल से प्रकृति मानव की सहचरी रही है। फलतः दोनों में अविच्छिन्न तथा अविभाज्य सम्बन्ध रहा है। उमड़ते मेघ, द्योतित नक्षत्र, कल-कल निनाद-गुंजित निर्झर, प्रवाहमयी सरितायें, विहँसती कलिकायें, इठलाती लतायें, मुस्कराते सुमन, नाट्य-भंगिमा में प्रसन्न मयूर तथा कलरव करने वाला विहग-वृन्द प्रभृति प्रकृति के अनन्त वैभव ने मानव को उल्लसित किया। प्राकृतिक प्रांगण में रहकर मानव अपने सुख-दुख में सान्त्वना एवं आनन्द का अनुभव करता आया है। सामान्य मानव की दृष्टि भी वर्षा की झड़ी के पीछे उन के हर्ष और उल्लास को ग्रीष्म के प्रचण्ड आतप में उनकी शिथिलता और म्लानता को, शिशिर के कठोर शासन में उनकी दीनता को, मधुकाल में उनके रसोन्माद, उमंग और हास को, प्रबल बात के झकोरों में उनकी विकलता को, प्रकाश के प्रति उनकी ललक को देख सकती है। इसी प्रकार भावुकों के समक्ष वे अपनी रूप चेष्टा आदि द्वारा कुछ मार्मिक तथ्यों की भी व्यंजना करते हैं।[1]

(१) **स्वच्छन्दतावादी कवि और प्रकति** :—स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति के अपार प्रेमी होते हैं। उनके काव्य में प्रकृति ने एक विशिष्ट स्थान पा लिया है। इन कवियों के सौन्दर्य-बोध ने उनको प्रकृति और नारी की ओर उन्मुख करा दिया है। उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन से उन के मन में जो भाव-चित्र उमड़ आये हैं, उन्हें अत्यन्त स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति दी है। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, वाइरन, शैली और कीट्स आदि कवियों के काव्य में प्रकृति विभिन्न रूपों में अपना साक्षात्कार करती है। उसी प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद के कतिपय कवियों की काव्य-प्रेरणा भी प्रकृति ही है। प्रकृति को अपने काव्य की

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल : "कविता क्या है"। चिंतामणि भाग—१ पृ० १५३।

मूलभूत प्रेरणा मानते हुये सुमित्रानन्दन पंत लिखते हैं--कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्यपट, चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था।[1] पंत की यह युक्ति उनके लिये तथा वर्ड्सवर्थ के लिये ही लागू नहीं होती, अपितु सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के लिये भी ठीक प्रमाणित होती है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भारत की प्राकृतिक सुषमा को कई दृष्टियों से देखकर अपने स्वभावानुकूल उसका अंकन किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत तथा देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने प्रकृति को आलम्बन के रूप में ग्रहण कर उसके भव्य एवं कोमल पक्ष के साथ उसके विराट-पक्ष का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। ये कवि अधिकतर प्रकृति में मानव भावनाओं एवं चेष्टाओं के आरोप करने के साथ-साथ उसके सौन्दर्यमयी विभव का भी अंकन करते हुये दिखाई पड़ते हैं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में रायप्रोलु सुब्बाराव, दुव्वूरि रामिरेड्डी तथा बसवराजु अप्पाराव ऐसे कवि हैं जिन्होंने तेलुगु प्रान्त के प्राकृतिक दृश्यों का विशेष चाव से वर्णन किया है। इन तीन कवियों ने प्रकृति के साथ ग्रामीण जीवन को भी चित्रित किया है। उन की प्रकृति ग्रामीण जीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में दृष्टिगोचर होती है। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, रामधारीसिंह दिनकर, विश्वनाथ सत्यनारायण, नायनि सुब्बाराव, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, तल्लावज्झुल शिवशंकर शास्त्री आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रकृति मानव-जीवन के साथ सम्बद्ध होकर उससे मिल जाती है। मानव और प्रकृति को समान महत्व देने के कारण इन कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति को मानव-जीवन की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किया है। इन्होंने अधिकतर अप्रस्तुत विधान की योजना में प्रकृति का उपयोग किया है। यदि सुमित्रानन्दन पंत ने अपने जन्म-स्थान कूर्मांचल प्रदेश के प्राकृतिक-सौन्दर्य का चित्रण किया है तो कविकोंडल वेंकटराव ने अपने जन्मस्थान राजमहेन्द्रवरमु के पास गोदावरी नदी तथा उसके तट के दोनों ओर रहनेवाले ग्रामीणों के जीवन को भी प्राकृतिक पृष्ठभूमि के साथ चित्रांकित कर दिया। वास्तव में प्रकृति को ग्रामीण जीवन के साथ सम्बद्ध कर वेंकटराव ने वर्ड्सवर्थ के मार्ग को अपना लिया। विश्वनाथ सत्यनारायण ने "किन्नेरसानि पाटलु" में तो प्रकृति और मानव को एकाकार कर दिया। उस काव्य में नायिका ससुराल से रूठकर चलने लगी तो नायक ने (पति) आकर उसे पकड़ना चाहा। उसी क्षण नायिका

१. सुमित्रानन्दन पंत : आधुनिक कवि—भाग २। पर्यालोचन। पृ० ८।

धीरे-धीरे नदी के रूप में परिवर्तित हो गयी और नायक हताश होकर वहीं पर शिला बन गया। कविवर सत्यनारायण ने नायक एवं नायिका की वियोग जन्य भावनाओं को पत्थर और नदी आदि प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नण्डूरि सुब्बाराव ने प्रकृति को मानव-जीवन के साथ अवश्य लिया है, किन्तु उनके एकमात्र गीत-संग्रह "एँक पादुल" के नायक और नायिका निर्जन प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। रामधारीसिंह "दिनकर" ने अपने काव्य के प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत योजना में प्रकृति का उपयोग किया है तो बच्चन ने अधिकतर अप्रस्तुत योजना में उसका उपयोग किया है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में देखकर अपने काव्य में उसके वैभव का दर्शन कराया है।

प्राचीनकाल के कवियों के विपरीत स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति में चेतन तत्व का आरोप किया है। प्राय: इन कवियों ने इसे आलम्बन के रूप में ही ग्रहण किया है। परन्तु उन के काव्य में प्रकृति के अन्य रूप भी प्राप्त होते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-चित्रण का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।—

१. प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण।
२. उद्दीपन के रूप में प्रकृति।
३. आलम्बन के रूप में प्रकृति।
४. पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति।
५. अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति और प्राकृतिक बिम्बों की योजना।
६. प्रतीक तथा संकेत के रूप में प्रकृति।
७. परोक्ष के आभास तथा प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकृति।
८ नारी के रूप में प्रकृति।

(१) **प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण** :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया है। प्रकृति के संदर्भ में सौन्दर्य प्रधानत: रूपाश्रित होने के कारण उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों का बिम्ब-ग्रहण किया है। प्रकृति के अनन्त भण्डार से इन कवियों ने अपनी मनोप्रकृति के अनुरूप कोमल, सुन्दर तथा भीषण दृश्यों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने दो प्रकार के प्राकृतिक बिम्बों में सौन्दर्य-दर्शन किया है—(अ) निश्चल बिम्बों का सौन्दर्य (आ) गयात्मक बिम्बों का सौन्दर्य। इन दोनों प्रकार के सौन्दर्यमयी बिम्बों की रूपरेखा पर विचार किया जाय।

(अ) **निश्चल बिम्बों का सौन्दर्य** :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने निश्चल बिम्बों के सौन्दर्य का वर्णन किया है। नदी, वन, पर्वत, तारे तथा गगन आदि के निश्चल बिम्बों के सौन्दर्य का अंकन उनके काव्य में मिलता है। प्रकृति

के निश्चल विम्बों के सौन्दर्य से सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी काव्य भरा हुआ है। सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में तो प्रकृति के निश्चल विम्बों की सुषमा ही दिखाई पड़ती है। गंगा के निश्चल जल के दर्पण में रजत पुलिनों का क्षण भर के लिये दुहरे ऊँचे लगना तथा जल में काला काँकर के राजभवन का पलकों में अपरिमित स्वप्न-वैभव को लेकर सो जाना आदि प्रकृति के निश्चल विम्बों का सौन्दर्य द्रष्टव्य है——

"निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।
कालाकाँकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन।"[1]

प्रसाद, निराला, महादेवी तथा डा० रामकुमार वर्मा के प्रकृति-वर्णन में भी निश्चल बिम्बों का सौन्दर्य मिलता है। उदाहरणार्थ प्रसाद की "कामायनी" में कवि ने हिम-धवल देवदारु वृक्षों के सौन्दर्य को निम्नांकित विम्ब में अंकित किया——

"उसी तपस्वी से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े;
हुये हिम-धवल, जैसे पत्थर
बनकर ठिठुरे रहे अड़े।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव, तल्लवझुल शिवशंकर शास्त्री, नण्डूरि सुब्बाराव आदि प्रकृति के निश्चल बिम्बों के सौन्दर्यांक में विशेष रुचि लेते हैं। गुरजाड अप्पाराव ने निम्नांकित चित्र में निश्चल बिम्ब का सौन्दर्य दर्शाया है। एक युवती ने गीत गाया और उसके गीत को पेड़ पौधों के साथ चन्द्रमा भी ताड़ के वन में रुककर सुनने लगा—

"गीत गाया, पेड़-पौधे
सुन रहे थे मुदित होकर
चाँद रुककर ताल-वन में
सुन रहा था गीत उसका।"[3]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "नौका-बिहार" (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १८५।

२. जयशंकर प्रसादः "चिन्ता" सर्ग--कामायनी। पृ० ९।

३. "पाट पाडेनु, चेट्लु चामलु
कोटि चेवुलनु धोलि यलरग
ताटि वनमुन नागि चंद्रुडु
तानु चेवियोग्गेनु।"
—गुरजाड अप्पाराव—"मुत्याल सरालु" पृ० १५।

शिवशंकर शास्त्री ने भी प्रकृति के निश्चल बिम्बों के सौन्दर्य का अंकन किया है। उनके निश्चल बिम्बों के सौन्दर्य का आभास निम्नलिखित छन्द में देखा जा सकता है—

"झिलमिलाते थे सितारे,
मेघ-खण्डों में घिरा नभ,
सामने दिखता महीधर,
सोहते थे वृक्ष जिसके
उभय पार्श्वों में।"[1]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के निश्चल बिम्बों के सौन्दर्य का छाया और प्रकाश के माध्यम से चित्रांकन किया है।

(आ) गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य:—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के गत्यात्मकता सौन्दर्य का भी अंकन किया है। उन्होंने प्रकृति के विभिन्न दृश्यों में गत्यात्मकता, कान्ति आदि गुणों में सौन्दर्य का दर्शन किया है। प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों की योजना से स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने विकसित सौन्दर्य-बोध का परिचय दिया है। चित्र या बिम्ब में गति को उत्पन्न करना ही चित्रकला की महान उपलब्धि है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद, पन्त और निराला तथा महादेवी वर्मा के काव्य में प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य बिखर पड़ा है। एक तरह से प्रसाद की "आँसू" तथा 'कामायनी', पन्त की रचनाओं में "पल्लव" तथा "गुंजन", निराला की "राम की शक्ति पूजा" तथा "यमुना के प्रति" एवं महादेवी के गीत आदि में प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों का अनन्त सौन्दर्य देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ पन्त की "नौका बिहार" कविता में कुछ गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। गंगा नदी में अपने पालों रूपी पंखों को खोलकर तरणि (नौका) सुन्दर हँसिनी की भाँति मंथर गति से चल रही है—

"मृदु मंद, मंद, मंथर मंथर, लघु तरणि, हँसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर।"[2]

---

१ मिनुकु मिनुकनि चुक्कलु गेरयुचुंडे
आर्वरिंचेतु चिरुमब्बु लाकराम्मु
नेदुरुगा दो चुचुंडे महीधरम्मु
लुभय पार्श्वाल शोभिल्ले नुर्विजमुलु।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री "हृदयेश्वरी"। पृ० ७।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : "नौका बिहार" (१९३२) "पल्लविनी" तृतीय संस्करण।
—पृ० १८४।

उसके पश्चात् प्रकृति के अनेक गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य कवि प्रस्तुत करता है। गंगा के जल के अंतस्तल को प्रकाश से भरकर तारिकाओं का अपलक आँखों से खोजना, उन ताराओं के छोटे दीपों को अंचल की ओट में छिपाकर लुकछिप कर लहरों का फिरना तथा लहरों के घूँघट से झुक-झुक कर दशमी के चन्द्रमा का अपने तिर्यक् मुख को मुग्धा की भाँति रुक-रुक कर दिखलाना प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों के सौन्दर्य को प्रकट करते हैं। कवि के ही शब्दों में—

"विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दलल,
ज्योतित कर जल का अंतस्तल;
जिन के लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक छिप पल पल ।
लहरों के घूंघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता, मुग्ध-सा रुक रुक ।"[१]

महादेवी वर्मा के गीतों में प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य बिखर गया है। महादेवी कहती हैं कि छिपकर नर्तन करने वाली तारक-परियाँ नूपुरों से ओस कणों के मोती चारों ओर बिखरा देती हैं और मलयानिल परिमल से अंजलि भरकर हिम-कणों पर आया जाया करता है--

"मोती बिखराती नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर;
हिमकण पर आता जाता मलयानिल परिमल से अंजलि भर।"[२]

कविवर कृष्णशास्त्री अप्रस्तुत रूप में ही सही प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों के सौन्दर्य का दर्शन कराते हैं। प्रथम प्रभात में बहने वाले वायु-मार्ग में दौड़ने वाले कोकिल के गीत तथा गगन के पुलिनों को डुबोकर बहने वाली युवा चाँदनी में डूबे हुए बादलों के टुकड़े आदि का सौन्दर्य अपने आप सभी के मन को मोह लेता है—

"प्रथम उषा के समीर-पथ में
द्विगुणप्रवेग से चलने वाले कोकिल के गीतों-सा
बाढ़ों में बहने वाली
युवा चाँदनी में डूबे बादल के टुकड़े-सा"[३]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "नौका विहार" (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृतीय सं०।
—पृ० १८५।

२. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १। गीत संख्या ४१। पृ० ६५।

३. "तोलिप्रोद्दु तेम्मेर त्रोवलो वयनमै
परवेत्तु कोइल पाटवोले
वेल्लुवलै पारु वेलदि वेन्नेल लोन
मुनिगि पोयिन मब्बु तुलुकु बोले।
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुल। पृ० २१।

कवियित्री सौदामिनी की रचनाओं में भी प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों का सौन्दर्य देखने को मिलता है। पहाड़ी घाटी मे बहने वाला जल फेन उगलने वाली लहरों से फुस-फुस करते चलने के बिम्ब का सौन्दर्य कवियित्री इस प्रकार अंकित करती हैं—

"लो ! घाटी में बहने वाले
उस झरने का जीवन जल
फेन उगलती लहरों से
फुस-फुस करता जाता है।[१]

विश्वेश्वरराव के एक प्रत्यात्मक बिम्ब का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। वह आकाश में प्रकाश भरने वाले चन्द्रमा का वर्णन इस प्रकार करता है—

"नाव-सा शशि-बिम्ब लो।
वह तैरता है गगन में।[१]

चावलि बंगारम्मा एक गत्यात्मक बिम्ब को यों प्रस्तुत करती है। वृक्ष के समान दीखने वाले साँप तालाब में रेंगते थे।[३] अर्थात् वृक्षों की परछाइयाँ तालाब की लहरों से चंचल होकर ऐसी लगती हैं मानों तालाब-भर में साँप रेंगते हों।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य को देखने से यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि हिन्दी के कवियों के गत्यात्मक प्राकृतिक बिम्बों की सौन्दर्य-योजना तेलुगु-कवियों के गत्यात्मक बिम्बों की सौन्दर्य-योजना की अपेक्षा अधिक विकसित तथा सुव्यवस्थित है। तेलुगु के कवियों की अपेक्षा हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों का सौन्दर्य-बोध अधिक उर्वर तथा उसकी व्यंजना अधिक कलात्मक है।

---

१. "कोण्ड लोय दिगेडु वागु
नुंडि जीव जलमु लविगो
नुरग ग्रक्कु नलल तोड
गुसगुस लाड्चु पोयेडु।"

— सौदामिनि। वैतालिकुल। पृ० ४८।

२. तेप्पधोलिक चन्द्रबिम्बं
तेलिपोतो वुंदि निंगिनि।"

—विश्वेश्वरराव। वैतालिकुलु। पृ० ६१।

३. "चेट्लंटि पामुले चेरुवेल्ल पाकेयि"

-- चावलि बंगारम्मा। वैतालिकुल। पृ० १७७।

(२) उद्दीपन के रूप में प्रकृति :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में अंकित किया है। प्राचीन काव्य में प्रकृति नायक या नायिका के मनोविकारों को उत्तेजित करने के लिए सहायक होती थी। किन्तु स्वच्छन्दतावादी युग में आकर वह स्वयं कवि के ही मनोविकारों को उद्दीप्त करने लगी। प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप होने के कारण प्राकृतिक वस्तुयें स्वच्छन्दतावादी कवि के साथ सहानुभूति दिखाती हैं तथा उसके ह्रास-अश्रु, सुख-दुख में भाग लेती हैं। कविवर पन्त ने "उच्छ्वास", 'आँसू', "गृह काज" तथा "याद" आदि कविताओं मे प्रकृति के उद्दीपनकारी स्वभाव पर प्रकाश डाला है। "गृह-काज" में कवि अपनी प्रेयसी से गृह के कार्यों को छोड़ देने की सलाह देते हैं। इस का कारण यह है कि प्रकृति कवि में मधुर भावनायें भर कर उसे उद्दीप्त कर रही है—

"आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह काज !
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास,
प्रिए लालस सालस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष।"[1]

पंत ने 'याद' में भी प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्र खींचा है। रोगग्रस्त कवि प्रकृति के विषादपूर्ण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"बिदा हो गई साँझ विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकांकी आंगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर।
मैं बरामदे में लेटा शय्या पर पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव।"[2]

पंत के अतिरिक्त प्रसाद, निराला, महादेवी तथा बच्चन के काव्य में भी प्रकृति उद्दीपन के रूप में चित्रित हुई है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। कविवर कृष्णशास्त्री कहते हैं कि लहरों की शान्ति हरनेवाली वायु तरंगें स्वयं कवि हृदय में जलने वाली काष्ठ की

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : गृहकाज (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृष्ठ १६१।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : याद (१९३९) आधुनिक कवि : भाग २। सातवां संस्करण। पृ० ९२।

लपटों को और भी उद्दीप्त कर रही हैं।[1] कविवर शास्त्री अपने को पत्र रहित डंठल कहते हैं जिसे देखकर सहानुभूति वश कोकिल अपने कण्ठ खोलकर रोने लगता है और मन्दपवन उच्छ्वासें भरने लगता है—

"पत्र हीन डंठल था जब मैं
तो मुझे देख कर कोकिल ने
रोया अपना कंठ खोलकर,
देख मुझे तब मन्द पवन ने
पथ तज निज, करुणोच्छ्वास भरा।"[2]

तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों में शिवशंकर शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुब्बाराव आदि उद्दीपन के रूप में प्रकृति का अंकन करते हैं।

आलम्बन के रूप में प्रकृतिः—अनादिकाल से काव्य में प्रकृति-चित्रण अधिकतर आलम्बन के रूप में ही किया गया है। आलम्बन के रूप में जब प्रकृति रह जाती है तो कवि स्वयं आश्रय के रूप में होता है। जैसे चित्रण में प्रकृति का यथातथ्य वर्णन किया जाता है अथवा उसका सजीव एवं संश्लिष्ट चित्रण होता है जिसमें कवि के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ प्रकृति के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध भी दिखाई पड़ता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि व्यक्तिवादी तथा अन्तर्मुखी होने के कारण सम्पूर्ण बाह्य जगत उनके राग विराग का आलम्बन बना और स्वयं वे आश्रय बने। इन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राकृतिक दृश्यों में चेतना एव अपूर्व सौन्दर्य का समावेश कर नवीनता ला दी। स्वच्छन्दतावादी काव्य में आलम्बन के रूप में प्रकृति-चित्रण दो मुख्य रूपों में मिलता है—(१) प्रकृति के खण्ड-चित्र, (२) प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र।

(क) प्रकृति के खण्ड-चित्र :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के अनन्त खण्ड-चित्रों को प्रस्तुत किया है। प्रकृति के किसी आकर्षक दृश्य अथवा गतिमान प्रकृति-सौन्दर्य के किसी एक नयनाभिराम क्षण को मूर्त रूप देने में

---

१. "अलयु वातेर यूर्चु गालुल कदल्चि
रेगु नंते ना काष्ठाल रेगु मन्ट"—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० १११

२, "अपुडु नावेंपु चूचि, नायलरुलेनि
शून्य मौ मोड्डु प्राकुनु जूचि, योक्क
कोकिलम्मु को यनि, येड्चे गोंतु नेत्ति।
माकोरकु दारि बोयेड्डु मन्दपवनु
डोकड्डु जालिग नोक्कच निट्टूर्पु विसरे।—वही पृ० ४८

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवि सफल हुए हैं। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, डा० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर एवं बच्चन आदि हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रकृति के खण्ड-चित्र बिखर पड़े हैं। प्रसाद के कुछ खण्ड-चित्र इस प्रकार अपने "वीती विभावरी जाग री" शीर्षक गीतों में प्रस्तुत करते हैं—

"खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल-रस-गागरी।"[1]

कविवर पन्त ग्राम-प्रान्त की प्रकृति के अनेक खण्ड चित्र इस प्रकार अंकित करते हैं :—

"नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।"
"गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदुदल।"
लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिखिर से डर।"

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी प्रकृति के खण्ड-चित्र अनेक मिलते हैं। कविवर कृष्णशास्त्री 'विश्रान्ति" नामक कविता में अनेक प्रकृति के खण्ड-चित्र प्रस्तुत करते हैं। यथा—

"नभ के नील सरोवर में शशि
राजहंस-सा करता विहार;
वायु-वीचियाँ पत्रों में या
छिप गयीं नदी की लहरों में;
मधुर गान औ' नाट्य छोड़कर
खो गयी शैवलिनि निद्रा में;
ईश्वर के कर-जलज-युग्म में
विश्राम लिया अखिल विश्व ने।"[3]

---

१. जयशंकर प्रसाद—"लहर"।
२. सुमित्रानन्दन पन्त : "संध्या तारा" (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० १८१।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : संध्या तारा" (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृ०सं०। पृ० १८१

तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी प्रकृति के खण्ड-चित्र सम्यक् परिमाण में मिल जाते हैं।

(ख) **प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र** :--आलम्बन के रूप में प्रकृित का संश्लिष्ट चित्रण प्राचीन महाकवियों में अधिकतर मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण पर अधिक जोर इसलिए देते हैं कि उस प्रकार के चित्रण में प्रकृति के सम्पूर्ण चित्र का विम्ब-ग्रहण होता है जिससे उसका समग्र सौन्दर्य विशाल धरातल पर स्वयमेव प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त कलाकार या कवि को ऐसे चित्रण में खण्ड-चित्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत चित्रपट पर अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में पन्त प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र अंकित करने में अत्यन्त कुशल हैं। उनका एक संश्लिष्ट चित्र द्रष्टव्य है :--

"पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश;
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है वार बार
नीचे जल में निज महाकार;
जिस के चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला रहता है विशाल।"[1]

पावस ऋतु का यह संश्लिष्ट चित्र प्रकृति के खण्ड चित्रों की पंक्ति न होकर अपने में ही एक स्वतन्त्र सृष्टि है। सम्पूर्ण विम्ब चक्षु-पटल पर अंकित हो जाता है। प्रसाद तथा निराला में भी जैसे संश्लिष्ट चित्र दिखाई पड़ते हैं।

---

१. "नीलाभ्र सरसिलो निण्डु जाविल्लि
रायन्च वले विहारमु सल्पु चुडे;
कम्म तेम्मेरलु शाखा पत्र मुलनो
कल्लोलिनी तरंगमुलनो डागे;
नाद्यंवु मधुर गानंवुनु मानि
गाटंपु निहुर गांचे शैवलिनि;
सर्वेश्वरुनि इस्त जलज युग्ममुनि
विश्वमे हायिगा विश्रान्ति जेंदे।"--श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० २७.

२. सुमित्रानन्दन पन्त : "उच्छ्वास" (१९२१ ई०) पल्लविनी। तृ० स०। पृ० ६५

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र बहुत कम मिलते हैं। इन कवियों की रुचि इस दिशा की ओर अधिक नहीं रही। कविवर श्रीरंग श्रीनिवास राव ने "एक रात" शीर्षक कविता में प्रकृति का एक संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। बहुलपंचमी की रात में आकाश का संश्लिष्ट चित्र कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

"धूम-सा सारे गगन में फैलकर
बहुल पन्चमी की ज्योत्स्ना मुझे डराती है।
अम्बर-मरुथल में टांगें टूटी
एकाकी ऊँट सदृश है चाँद।"[1]

बहुल पंचमी की रात का संश्लिष्ट चित्र अपने में स्वयं पूर्ण है। इस में खण्ड-चित्रों का अस्तित्व होने पर भी वे संश्लिष्ट चित्र के अंग मात्र बन गए हैं। अंत में यही कहना पड़ता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों का बाहुल्य नहीं है।

(४) पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृतिः—अनादिकाल से कवि प्रकृति को अपने काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित करता आ रहा है। आधुनिक काल में भी खण्ड काव्य तथा महाकाव्य से लेकर सामान्य प्रगीतों तक का आरंभ प्राकृतिक-पृष्ठभूमि के साथ होता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का उपयोग किया है। कविवर प्रसाद ने अपने "कामायनी" महाकाव्य का आरम्भ प्राकृतिक पृष्ठभूमि के साथ किया है—

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह'
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।"[2]

---

१. **"गगनंमन्लांनिडि पोगलागु क्रम्मि**
बहुल पन्चम ज्योत्स्न भयेपेत्ट नन्नु।
आकाशपु टेडारिलो काल्लुतेगिन
ओंटरि ओंटेला गुन्दि जाबिल्लि।
—श्रीरंगम श्रीनिवास राव "श्री श्री" वैतालिकुलु पृ० २०६।**

२. जयशंकर प्रसाद : । "कामायनी" । पृ० ९।

कविवर पन्त ने "ग्रन्थि" का आरंभ मधुमास की मोहक शोभा के वर्णन के साथ किया है:—

"वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से ।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित किया है । कविवर शिवशंकर शास्त्री अपने काव्य "हृदयेश्वरी" का आरम्भ प्राकृतिक वातावरण के साथ करते हैं:—

"झिलमिलाते थे सितारे,
मेघ-खण्डों से घिरा नभ,
सामने दीखता महीधर,
सोहते थे वृक्ष जिसके
उभय पार्श्वों में ।"[2]

नायनि सुब्बाराव अपनी "निद्राभंगमु" नामक प्रगीत कविता का आरम्भ प्राकृतिक पृष्ठभूमि के साथ करता है—

"स्निग्ध चाँदनी की आ गयी बाढ़
झिलमिलाते चमकते तारे गगन में ।"[3]

इसी तरह अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है ।

(५) अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति और प्राकृतिक बिम्बों की योजनाः—किसी प्रस्तुत वस्तु की सशक्त व्यंजना तथा उसकी प्रतीति के लिए अन्य किसी दृश्य या

---

१. सुमित्रानन्दन पंतः "ग्रंथि" (१९२० ई०) पल्लविनी । तृ० सं० । पृ० ३६ ।

२. "मिनुकु मिनुकनि चुक्कलु मेरयु चुंडे
आवरिंचेन चिरुमब्बु लाकसम्मु
नेदुरुगा दोचु चुंडे महीधरम्मु
लुभय पार्श्वाल शोभिल्ले तुविजमुलु ।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री "हृदयेश्वरी" । पृ० ७

३. "पंडु वेन्नेल वेल्लुवल यैकोनंग
मिंटि चुक्कुल मिलमिल मेरयुचुंड,"
—नायनि सुब्बाराव : "सौभद्रुनि । प्रणय यात्रा । पृ० २० ॥

वस्तु को भी उसके साथ सम्बद्ध किया जाता है जिसे अप्रस्तुत कहते हैं। अप्रस्तुत के माध्यम से कवि अपने कथ्य विषय को और भी प्रभावोत्पादक ढंग से कह सकता है। प्रभावसाम्य के कारण अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत विषय तथा उसके स्वभाव एवं प्रकृति पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति का उपयोग हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने किया है। अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत इन कवियों ने मुख्यतः प्रकृति का दो रूपों में चित्रण किया है—(अ) उपमा के रूप, (आ) रूपक के रूप में। इनका संक्षिप्त विवेचन किया जाय।

(अ) उपमा के रूप में:—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। काव्य में प्रस्तुत को पूर्ण रूप में व्यक्त करने के लिए उसके समान गुण रूप वाले अप्रस्तुत को प्रकृति के विशाल भण्डार से चुन लिया जाता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्राकृतिक उपमायें द्रष्टव्य हैं——

"कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी।
वैसी ही माया में लिपटी अधरों पर अंगुली धरे हुए,
माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए,
नीरव निशीथ में लतिका-सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?"[१]

उपर्युक्त उद्धरण में "लज्जा" को दीपशिखा, कलिका और लतिका के रूप में देखा ही गया है। प्रत्युत् उसे मायाविनी नारी के रूप में भी देखा गया है। उसके साथ-साथ उपमानों के रूप, गुण, क्रिया और धर्म का भी उल्लेख किया गया है। ऐसे अप्रस्तुतों द्वारा रूप, रंग, ध्वनि, स्पर्श आदि ऐन्द्रिय धर्मों का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

प्राकृतिक उपमाओं का सौन्दर्य पन्त के काव्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। कवि को अत्यन्त दूर क्षितिज पर वृक्षों की माला अपलक आकाश के नील नयनों के ऊपर भ्रू-रेखा की भांति दिखाई पड़ती है। उनका कथन है कि गंगा के उर्मिल प्रवाह में एक द्वीप माता के वक्षस्थल पर शिशु की भाँति सोया है——

"अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू-रेखा सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल।
मा के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप।"

---

१. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग से। कामायनी। पृ० ७८-७९।
२. सुमित्रानन्दन पन्त : "नौका विहार"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १८६।

पन्त अपनी भावी पत्नी की उपमा मृदूर्मिल सरोवर में विकसित सुकुमार लज्जा-नत अरुण कमल से देते हैं—

"मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण सरोज समान,"[1]

इसी प्रकार हिन्दी के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राकृतिक उपमाओं को सुचारू रूप में प्रस्तुत किया है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी प्राकृतिक उपमाओं का अत्यधिक उपयोग किया है। पंत की भाँति शिवशंकर शास्त्री भी अपनी प्रेमिका के मुख की उपमा सरोवर की लहरों पर डोलने वाले कमल से देते हैं:—

"आश्चर्य चकित करदे मुझको लगता है तेरा आनन
सरसी की लहरों पर डोलायमान नीरज समान।"[2]

शिवशंकर शास्त्री अपनी प्रेयसी से कहते हैं कि तुम अपनी सहेलियों के साथ थीं तो तुम्हारा मुख-कमल पत्रों की ओट में छिपे हुए पुष्प की भाँति स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता—

"जब खड़ी तू सखी-जन के बीच में
दीखता था नहीं तेरा मुख-कमल
किसलयों की ओट में स्थित पुष्प-सा।"[3]

तेलुगु के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी प्राकृतिक उपमाओं की छटा अत्यन्त मनमोहक है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य तेलुगु के काव्य की अपेक्षा प्राकृतिक उपमाओं के लिये अधिक प्रसिद्ध है।

(ख) रूपक के रूप में :—उपमा के पश्चात् रूपक अलंकार के लिये प्रकृति ...ा अधिक उपयोग हुआ है। रूपक अलंकार में प्रकृति को अप्रस्तुत के रूप में हिन्दी

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : भावी पत्नी के प्रति (१९२७ ई०) पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० १४८।

२. "अक्कजमु कोलिप तोचे नीयाननम्मु
सरसिपै देलियाडेडि जलजमट्लु।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० ८।

३. "नीवु स्वजनांतरितवुगा निलिचि युंड
कान रादाये नीमुख कमल मत्यो
पर्णमुल माटु वडिन पुष्पम्मु वोले।"
—शिवशंकर शास्त्री : तल्लावझ्झुल। हृदयेश्वरी। पृ० १२-१३।

और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में अधिकतर सादृश्य और साधर्म्य मूलक अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ। इस प्रकार रूपक, रूपकातिशयोक्ति तथा अन्योक्ति आदि की योजना प्राकृतिक अप्रस्तुतों द्वारा हुई है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में निरंग रूपक तथा सांगरूपक के रूप में ही प्रकृति दृष्टिगोचर होती है। पंत की "बादल" कविता में निरंग रूपक की प्राकृतिक छटा द्रष्टव्य है—

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि बसन, वसुधा के मूल;
नभ में अवनि, अवनि में अंबर,
सलिल भस्म, मारुत के फूल।"[1]

शिवशंकर शास्त्री ने रूपक में प्रकृति को अप्रस्तुत के रूप में लिया है—

"मन-खग मेरा उलझ गया है
तुम्हारे चितवन जालों में।"

प्रभाव-साम्य पर दृष्टि होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि अप्रस्तुत की आकृति तथा अन्य गुणों की समानता पर ध्यान नहीं देता। इसी कारण रूप को अतिशयोक्ति या अत्योक्ति अलंकार की योजना की जाती है। रूपकातिशयोक्ति में प्रस्तुत का उल्लेख किये बिना ही अप्रस्तुत से उस की अभिन्नता दिखलाई जाती है। कविवर पंत "ग्रंथि" की नायिका की यौवन-जन्म-चंचलता को इस प्राकृतिक अप्रस्तुत के द्वारा व्यक्त करते हैं—

"कमल पर चारू खंजन थे प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते
चपल चोखी चोटकर अब पंख की
ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को।"

---

१. सुमित्रानन्दन पंत: "बादल" (१९२२ ई०) "पल्लविनी" तृ० स०। पृ० ८५
२. "चिक्कुकोन्नदि मामक चित्तखगमु।
संकुल भवद्विलोकन जालकमुल।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री—"हृदयेश्वरी"—पृ० २५।
३. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रंथि" पृ० १०।

कविवर वसवराजु अप्पाराव ने अपनी "ताजमहल" नामक कविता में शाहजहाँ तथा मुमताज के स्निग्ध प्रेम को प्राकृतिक वातावरण में रूपकातियशयोक्ति द्वारा व्यक्त किया है—

"आम्र वृक्ष से लिपट गयी है एक माधवी की लतिका
कह न सकेंगे उन दोनों की प्रेम-सम्पदा की सीमा
देख न पाया क्रूर वायु ने उन्मूलित कर दिया लता को
बना ठूँठ तब आम्र वृक्ष, मुख पर छायी दुख की रेखा
पत्रों और फलों के उष्णिम आँसू की धार बहाकर
हरे पत्र-सी बाल-कुटी में मीठा फल एक गिरा कर
माधवी लता के साथ चला आम्र वृक्ष भी माया में
इष्ट-प्रदाता अमर आम्र फल बचा अंत में कवियों को।"[1]

उपर्युक्त रूपकातिशयोक्ति में आम्र वृक्ष शाहजहाँ के लिये, माधवी लता मुमताज के लिये तथा आम्र फल ताजमहल के लिये प्राकृतिक अप्रस्तुत हैं।

(७) प्रतीक तथा संकेत के रूप में प्रकृति :—प्रतीक के रूप में प्रकृति का चित्रण करना अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युग के अनुसार जब परोक्ष वस्तु को स्पष्ट करने के लिये किसी प्रत्यक्ष वस्तु का चित्रण किया जाता है, उस चित्रण को प्रतीक कहा जाता है। जब किसी प्रत्यक्ष किन्तु सूक्ष्म तथा भावात्मक सत्ता की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सामान्य और स्थूल वस्तु के चित्रण द्वारा होती है तो उसे संकेत कहा जाता है। प्रतीक एवं संकेतों द्वारा न तो अर्थ-ग्रहण होता है न बिम्ब-ग्रहण। उनसे केवल भाव-ग्रहण होता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रतीक एवं संकेत के लिये प्रकृति का उपयोग किया है। कविवर पंत ने लहरों को जीवन्त मानव के प्रतीक के रूप में अंकित किया है—

---

१. "मामिडि चेट्टुनु अल्लुकोन्नदी माधवीलतोकटि।
भेमा रेंडिटि प्रेम संपदा इंतितनलेम्।
चूडलेनि पापिष्टि तुफ़ानु उडबीके लंतनू,
मोडै पोयी भामिड चेट्टु मोगमु वेलवेसे।
मुच्चटैन आकुला कायलने वेचचनि कन्नीललोड्ची,
पच्च नाकुलु बोम्मरिंटिलो पंडोक्कटि राल्ची,
मामिडि चेट्टु माधवि लततो मायलो गलिसिंदि,
कामित मिच्चे मामिडि पंडू कवुलकु भिगिलिंदि।"
—वसवराजु अप्पाराव : वसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ७३।

"अपने ही सुख से चिर चंचल
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल,
जीवन के फेनिल मोती को
ले ले चल करतल में टलमल"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रतीकों का अधिक प्रयोग नहीं मिलता। फिर भी कहीं-कहीं इस की छटा हमें मिल जाती है। बसवराजु अप्पाराव अपनी "नव जीवनमु" नामक कविता में भगवान से यों प्रार्थना करते हैं--

"मुरझाये हुये फूल को फिर
परिमल क्यों देते भगवान ?
सूखे हुये कुँएं में पानी
फिर से क्यों भरते भगवान ?
टूटी सागर की लहरों को
फिर क्यों लहराते भगवान ?"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने साधक या भक्त की दशा को मुरझाये हुये फूल, सूखा हुआ कुआँ तथा टूटी हुई सागर-तरंगों के प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया है।

हिन्दी के कवियों में महादेवी वर्मा अलौकिक तथा अज्ञात सत्ता की प्रतीति संकेतों के माध्यम से कराती हैं—

"लाये कौन संदेश नये घन ?
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उस के उमड़े री पुलकों के सावन।"[3]

---

१. सुमित्रानन्दन पंतः "हिलोरों का गीत" (१९३२ ई०) पल्लविनी। द्वि० सं० पृ० २१६।

२. वाडिन पूवुन कॆंटिकि मरलनु
परिमल मोसगेडु देवा ?
ऎंडि पायिनट्टि बावि नूटल
नेटिकि नूरिंचेदु देवा ?
व्रछलैन संद्रपुटलल नेटिकि
पॆंकि तिरिगि पंपेदु देवा ?"
—बसवराजु अप्पाराव। बसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ४१।

३. महादेवी वर्मा : गीत संख्या ४४। आधुनिक कवि—१। पृ० ६९।

कभी-कभी आकाश की "मुसकान" अलौकिक प्रिय के आगमन को इंगित करती है—

"मुसकाता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में दार्शनिक पृष्ठभूमि के अभाव के कारण प्राकृतिक संकेतों का अभाव-सा दीखता है।

(८) परोक्ष के आभास के रूप में प्रकृति :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दवादी काव्य में प्रकृति को परोक्ष की अभिव्यक्ति के रूप में अंकित करने वाली कवितायें अधिक नहीं हैं। स्वच्छन्दतावाद के चिंतनशील तथा दार्शनिक कवियों ने प्रकृति को परोक्ष के आभास के रूप में चित्रण किया है। सुमित्रानन्दन पंत की "चाँदनी" तथा "विश्ववेणु" आदि कवितायें इसी प्रकार की हैं। पंत प्रकृति को स्पन्दनशील जीवन-युक्त तथा सर्वव्यापी चेतना से परिचालित मानते हैं। यह सर्ववादी दर्शन पंत के काव्य में दिखाई पड़ता है। "परिवर्तन" नामक कविता में कवि इसका आभास देता है—

"एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास
तरल जलनिधि में हरित विलास
शान्त अम्बर में नील विकास।"[2]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में परोक्ष के आभास के रूप में प्रकृति- चित्रण का सर्वथा अभाव है।

(९) नारी के रूप में प्रकृति :—नारी और प्रकृति सौन्दर्य के मूलाधार होने के कारण हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति में नारी को तथा नारी में प्रकृति को देखा है। स्वच्छन्दतावाद के अत्यधिक कवियों ने प्रकृति को नारी के रूप में अंकित किया है। इस संदर्भ में पन्त कहते हैं–प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखने वाली, नारी के रूप में देखा है।....कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी रूप में अंकित किया है।[3] नायनि सुब्बाराव कहते हैं कि प्रकृति उस आत्मा में प्रतिबिम्बित होकर प्रणयिनी का रूप धारण कर उसे पकड़ लेती है।[4] इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने

---

१. महादेवी वर्मा : गीत संख्या ४१। आधुनिक कवि – भाग १। पृ० ६५।
२. सुमित्रानन्दन पन्त : "नित्य जग" आधुनिक कवि—भाग २। पृ० ४१।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : "पर्यालोचन"। आधुनिक कवि—भाग २। पृ० ९।
४. "प्रकृति नायात्मलोपल प्रतिफलिंचि
प्रणयिनी रूपमुन नन्नु पट्टकोनुनु।"
—नायनि सुब्बाराव : सौभद्रुनि प्रणय यात्रा। पृ० ९९।

प्रकृति को विभिन्न नारी रूपों में अंकित किया है। प्रकृति के रमणीय दृश्यों में उषा, सन्ध्या, रजनी तथा नदी इन कवियों की नारी-कल्पना को अत्यधिक शक्ति प्रदान करती है। प्रकृति के इन सुषमापूर्ण दृश्यों में स्वच्छन्दतावादी कवियों की कोमल कल्पना ने नारी-मूर्तियों को गढ़ लिया है। कविवर पन्त ने आशा रूपी नारी को प्राकृतिक परिवेश में अंकित किया है—

"देवि ! उषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणि में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, चल तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को।"[1]

उषा के वातावरण में आशारूपी नारी का चित्र अत्यन्त सुन्दर उतरा है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में उषा के नारी बिम्ब को न खींच कर उसे केवल "उषा-सुन्दरी" कहकर केवल अर्थ-ग्रहण कराया गया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में सन्ध्या का वर्णन एक नारी के रूप में हुआ है। कविवर निराला सन्ध्या-सुन्दरी का चित्रण इस प्रकार करते हैं—

"दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किंतु जरा गम्भीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।"[2]

इसमें सन्ध्या-सुन्दरी का निश्चल एवं नीरव सौन्दर्य चक्षु-पटल पर अंकित हो जाता है। नायनि सुब्बाराव ने सन्ध्या को मेघ-पटों के बीच नाट्य भंगिमा में जड़ित नर्तकी के रूप में देखा है—

"हिलने वाले मेघ-पटों के बीच
सोह रही है सान्ध्य राग की लक्ष्मी
सरस नाट्य की मुद्रा में।"[3]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "ग्रन्थि" (१९२० ई)। पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ४६।
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" : सन्ध्या सुन्दरी (१९२१ ई)। "अपरा" तृ० सं०। पृष्ठ १२।
३. "पोरलु पोरलन मेघपु देरल मध्य
रंजिल्लिन या सान्ध्य रागलक्ष्मि
नाट्य रचना विशेष्मु ...."।

नायनि सुब्बाराव। सौभद्रुनि प्रणय यात्रा" पृष्ठ ५२

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने रजनी को अधिकतर नारी रूप में अंकित किया हैं। महादेवी झिलमिल तारों की जाली ओढ़ कर चलने वाली रजनी को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं—

"रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली।"

रजनी के उपर्युक्त रूप से मिलने वाले रजनी के नारी रूप को देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री चित्रित करते हैं। काली साड़ी पहनकर आनेवाली रजनी के अंचल के झोंके बिखर कर विषादपूर्ण द्युतियाँ फैलाने वाले नक्षत्र का चित्र अपने आप खड़ा हो जाता है—

"काजल-सी साड़ी से कर शृंगार
पाँखें धारण कर आती है रजनी
जिस के तिमिराँचल के झोंके से
उडु-मणि जो बिखर गयी है,
वही विषादमयी द्युतियाँ टपकाती है।"

महादेवी वर्मा एक अन्य गीत में वसन्त काल की रजनी को आभूषण पहने हुए एक भारतीय नारी के रूप में चित्रांकित करती हैं—

"धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी !
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित धन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसन्त-रजनी।"[३]

---

१. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि— भाग १। गीत संख्या ४। पृ० ६।

२. "रेक्चलं तादल्चि परतेचु रे लतांगि
कारु काटुक चीर सिंगार मोदव
चीकटि चेरंगु विसरुन जेदरियोक्क
युडुडुमणि विषादपूरित द्युतुलु राल्चु।" श्री दे० कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ६१।

३. महादेवी वर्मा— आधुनिक कवि—भाग १। गीत संख्या २८। पृ० ४२।

नायनि सुब्बाराव ने भी रजनी को आभूषण पहने हुए एक भारतीय नारी के रूप में देखा हैं जिसके उर पर उलझे हुए तारक रत्न-हार मेघांचल की ओट में छिप जाते हैं—

"रजनी का कण्ठ-सुशोभित
करने वाले तारों के
रत्नहार उलझे उर पर
जो आवृत हो मेघांचल से
ओझल हो जाते तब तो।"[1]

प्रकृति में उपर्युक्त नारी-रूपों के अतिरिक्त और एक नारी-रूप स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रायः मिलता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नदी तथा सरिता को नारी के रूप में चित्रित किया है। नदी को नारी-रूप में तथा सागर को पुरुष-रूप में देखने की परिपाटी काव्य के साथ ही चली आ रही है। परन्तु इन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी-सुन्दरियों में नवीन सौन्दर्य भर दिया है। कविवर पंत गंगा को एक अम्लान तापस-बाला के रूप में देखते हैं—

"सैकत शैया पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रांत क्लान्त, निश्चल।
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर।
चंचल अंचल सा नीलाम्बर।"

कविवर विश्वनाथ सत्यनारायण ने अपने "किन्नेर सानि पाटलु" में "किन्नेर सानि" नामक एक सरिता को एक भारतीय गृहिणी के रूप में अंकित किया है। वह अपने पति और सास पर रूठकर चलती है। जब पति उसे पकड़ लेता है तो वह उसके हाथों में ही पिघल कर सरिता के रूप में बहने लगती है। किन्नेरसानि का पसति वहीं पर एक शिला बन जाता है। किन्नेरसानि सरिता का रूप ग्रहण करने के

---

१. "यामिनी कान्त गलमीम नंदींगचु
तारका रत्न हारमुल् पेरुरमुन
चिक्कुवडि मेचपुंडंट चेत नाय्
तम्मुले चेन्नु मासिन तरुणमंडु"
—नायनि सुब्बाराव : "सौभद्रुनि प्रणय-यात्रा।" पृ० ४०।

२. सुमित्रानन्दन पंत : "नौका-विहार" (१९३२ ई०) पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृष्ठ १८४।

पश्चात् लहर रूपी करों से अपने पति का आलिंगन करती है। सरिता का रूप धारण करने के पश्चात् अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे बहना ही पड़ा। अंचल पकड़ने पर गलकर सरिता के रूप में परिणत होने वाली अपनी पत्नी को देखकर उसका पति यों उसका रूप-वर्णन करने लगता है—

"ज्योत्स्ना-से धवल तुम्हारे
कोमल तन की सुन्दरता
आँखों को दीख रही है
लघु लहरों की लकीर सी
फेन बनी है हँसी तुम्हारी
लहरों-सी हैं तन-रेखायें
मीनों-से हैं नयन तुम्हारे
यों तुम बहती जाती हो।"

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति में अनेक नारी मूर्तियों की रूप-कल्पना की है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति का निरीक्षण प्रत्येक दृष्टि से किया है। तथा उसके मनोमुग्धकारी सौन्दर्य को अपने काव्य में अंकित कर, उसे एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। उनके सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति का सौन्दर्य बिखरा हुआ है। प्रकृति को इतना ऊँचा स्थान अन्य किसी काव्य-धारा में नहीं मिल सका।

---

१. "वेन्नेल तेल्लनि नी
सन्ननि मेनि पसन्दुलु
कन्नुलकुनु कनिपिंचेनु
चिन्नि तरग चालु बोले
नीनव्वुलवि नुरुगुलुगा
नीवलुलवि तरगलुगा
नीकन्नुलु मीनुलुगा
नीकरणिनी प्रवहिंचेदु"
—विश्वनाथन सत्यनारायण। "किन्नेर सानि पाटलु"। पृ० ७।

षष्ठ अध्याय

कला—पक्ष :

काव्य के विवेचन में अंतरंग पक्ष (भाव पक्ष) और बहिरंग पक्ष (कला-पक्ष) समान महत्व रखते हैं। कला-पक्ष काव्य को उत्कर्षमय बनाता है तो अंतरंग-पक्ष काव्य को सार्थकता प्रदान करता है। कवि अपनी कृति के द्वारा सूक्ष्म भावनाओं, अनुभूतियों तथा कल्पनाओं को अभिव्यक्त करता है। कवि शब्द और अर्थ की सहायता लेकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य की रचना में कलात्मक सतर्कता की अभिव्यक्ति की। उनके काव्य की रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में तृतीय अध्याय में सम्यक् प्रकाश डाला गया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य के कला-पक्ष को निम्नलिखित विभागों के अंतर्गत विभाजित कर अध्ययन किया जाता है—

१. भाषा और शब्द-चयन, २. शैली-तत्व, ३. अप्रस्तुत विधान या अलंकार-विधान, ४. चित्रण-कला (बिम्ब-विधान), ५. छन्द, लय और संगीत, ६. काव्य के रूप।

१. भाषा और शब्द-चयन :—

कवि अपने मन की सूक्ष्म भावनाओं, अनुभूतियों तथा कल्पनाओं को भौतिक माध्यम (भाषा) के द्वारा प्रकट करता है। भाषा में प्रयुक्त शब्दों में अर्थ तथा चित्रों को अभिव्यक्त करने की शक्ति रहती है। कवि भाषा के विशिष्ट शब्द-समुदाय के द्वारा अपने भावों को प्रेषणीय बनाता है। काव्य की भाषा बोलचाल की साधारण भाषा से भिन्न और उत्कृष्ट होती है। काव्य की भाषा में भावात्मकता की मात्रा अधिक होती है।[1] काव्य की भाषा चित्रात्मक होती है। कवि काव्य की भाषा के

---

1. "He (Kuntaka) also maintains rightly that expression being most important thing in poetry, the poetic speech is an extra-ordinary diviation from the ordinary mode of common speech, there by distinguishing artistic expression from the merely naturalistic. This extraordinariness depends on a certain imaginative turn towards and ideas....peculiar to poetic expression and abhorrent of matter-of fact expression"

–S. K. De. Some Problems of Sanskrit Poetics. P. 38.

द्वारा ही भाव का चित्रण कर सकता है। छन्द की लय की भाँति प्रत्येक भाषा की अपनी स्वतंत्र लय होती है जो उच्चारण, व्याकरण आदि के नियमों से नियंत्रित होती है। प्रत्येक भाषा का शब्द-भण्डार भिन्न होता है, और शब्द चयन की भिन्नता के कारण उनकी लय में भेद उपस्थित हो जाता है। सभी भाषाओं की लय एक प्रकार नहीं होती। कोई भी जीवित भाषा सामाजिक वस्तु होती है और वह समाज की लय के अनुरूप होती है। उसमें प्रेषणीयता का गुण अपने आप होता है। काव्य की भाषा बोलचाल की भाषा की अपेक्षा परिष्कृत होती है। कवि की रागात्मकता तथा उसके व्यक्तित्व की विचित्रता काव्य-भाषा को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती है। कवि भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है। वह शब्द-शिल्पी होता है। भाषा की प्रकृति से पूर्ण परिचित होने के कारण वह उसकी लय का ध्यान रखकर काव्य को प्रेषणीय बनाता है। अत : भाषाओं की प्रकृति तथा उन की शैली की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन किया जाय।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी भाषाओं को नयी अभिव्यंजना तथा नवीन शक्ति प्रदान की है। हिन्दी आर्यभाषा परिवार की भाषा है तो तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा है हिन्दी भाषा का उच्चारण हलंत (व्यंजनांत) है तेलुगु भाषा का उच्चारण स्वरान्त तो है। इसी कारण हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के उच्चारण-संगीत में पार्थक आ जाता है। अपनी सीमा में हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी भाषाओं को नया अभिव्यक्ति-कौशल प्रदान किया। परंतु तेलुगु कवियों की अपेक्षा हिन्दी कवियों ने काव्य-भाषा के विषय में अपनी विशिष्ट विचारधारा को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य की भाषा का अध्ययन भाषा के अवयवों के आधार पर करना युक्ति-संगत प्रतीत होता है। वर्ण, शब्द और वाक्य भाषा के अवयव हैं। दोनों स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं की भाषा का अध्ययन उन्हीं के आधार पर किया जाय।

(क) **वर्ण-संगीत :**— वर्ण भाषा की लय का लघुतम अंश है। वर्णों से ही शब्द का निर्माण होता है। अतः वर्ण भाषा की आत्मा है। उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है और उनके विभिन्न रीतियों में जुड़ जाने से सार्थक शब्दों का निर्माण होता है। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं की वर्णमाला दो-तीन वर्णों को छोड़कर एक ही है। इसी कारण उन भाषाओं के वर्णों का उच्चारण-संगीत भी एक ही है। परन्तु जैसे पहले ही कहा जा चुका है, हिन्दी का उच्चारण हलंत है तो तेलुगु का उच्चारण स्वरान्त। दोनों भाषाओं ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार शब्दों को ग्रहण कर लिया। इन गृहीत शब्दों के रूप में भाषा की भिन्नता के कारण भिन्नता आ गयी है। हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी-युग के पूर्व ब्रजभाषा थी। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के कुछ

वर्णों को परिवर्तित कर लिखा जाता था। "श" "स" के रूप में, "ण" "न" के रूप में, "व" "ब" के रूप में लिखे जाते थे। परन्तु खड़ी बोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का ग्रहण उनके मूलरूप में ही हुआ। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्दों के तत्सम रूप को ही ग्रहण किया। पंत ने ब्रजभाषा के तुतले शब्दों में प्रौढ़ता का संचार किया। तेलुगु के कवियों ने संस्कृत के शब्दों के साथ उसके वर्ण-संगीत को भी ग्रहण किया है। तेलुगु की काव्य-परम्परा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ संस्कृत समासों का भी प्राधान्य रहा है। तेलुगु की काव्यभाषा की यह विशेषता रही है कि वह दीर्घ संस्कृत के समासों को भी पचा लेती है। तेलुगु की काव्य-परम्परा ने संस्कृत के सभी समासों एवं शब्दों को अपने साँचे में ढाल दिया है। संस्कृति समासों की बहुतलता ही तेलुगु की प्राचीन भाषा का लक्षण है। उदाहरणार्थ "मनुचरित्र" में कवि हिमालय का वर्णन इस प्रकार करते हैं--

"अटजनि कांचे भूमिसुरुडम्बर चुम्बिशिरत् सरित् झरित्
पटल मुहूर मुहुर लुलदमंग तरंग मृदुंग निस्वन
स्फुटनट नानुकूल परिफुल्ल कलाप कलापि जालमुन्
कटक चरित् करेणु कर कम्पित सालमु शीतशैलमुन्।"[1]

इस पद्य का सम्पूर्ण कलेवर दो समासों में ही सिमट गया है। आधुनिक काल में तो तेलुगु कवि संस्कृत के मोह में न पड़े। इतना होते हुए भी तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में संस्कृत शब्दों एवं समासों की कमी नहीं है। तेलुगु के वर्णों में 'ण' के स्थान पर 'न' और 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग नहीं होता। तेलुगु भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों के रूप में अधिक परिवर्तन उपस्थित नहीं करती। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी संस्कृत शब्दों को लेकर भिन्न शब्दों का निर्माण किया। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार काव्य में व्यंजनों की अपेक्षा स्वरों की प्रधानता रहती है। उनका कथन है काव्य-संगीत के मूल तंतु स्वर हैं, न कि व्यंजन..........कविता में भी भावना का रूप स्वरों के सम्मिश्रण, उनकी यथोचित मैत्री पर निर्भर करता है, ध्वनि-चित्रण को छोड़कर (जिस में राग व्यंजन प्रधान रहता, यथा—"घन घमण्ड नभ गरजत घोरा।" अन्यत्र व्यंजन-संगीत भावना की अभिव्यक्ति को प्रस्फुटित करने में प्रायः गौण-रूप

---

१. "खड़ी बोली का उत्थान ब्रजभाषा के पश्चात होता है, इसलिये ब्रजभाषा के कुछ जीवन-चिन्ह उसमें रहने जरूरी हैं। हम देखते हैं कि ब्रजभाषा में "श" "स" दोनों "स" बन गये हैं, "ष" "ख" हो गया है "ण, न" "न" में ही आ गये हैं, बहुत जगह "व" "ब" बन गया है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : प्रबन्ध प्रतिभा : पृ० २७०-७१।

अल्लसानि पेद्दन: मनुचरित्रम्। पृ० १५।

से सहायता मात्र करता है। पंतजी भाषा की लय को भावानुगामिनी बनाने के लिए इतना सचेष्ट हैं कि वे व्यंजन और स्वर वर्णों का व्यवहार भी सोच समझ कर करते हैं। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक रुचि के अनुरूप वर्ण-संगीत की योजना की है। उन्होंने दोनों भाषाओं में कोमलकान्त पदावली का समावेश कर उसे प्राँजल बना दिया। उनमें सुकुमारता एवं विशिष्टता का संचार हुआ। हिन्दी के कवियों ने अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दों को ग्रहण किया और उन्हें हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप ढाल दिया। उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल वर्ण-संगीत लाने के लिए तत्सम रूपों में परिवर्तन कर दिया। उन्होंने 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग किया जैसे कण, वाण, प्राण, किरण के स्थान पर कन, वान, प्रान, किरन। हिन्दी के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भावानुकूल वर्ण-योजना की है। "प्राण-धन को स्मरण करते, नयन झरते, नयन झरते" (निराला) में—इन दो पंक्तियों में न, झ, र की आवृत्ति से जलधारा की झर-झर की ध्वनि निकलती है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी भावानुकूल वर्ण-योजना की है। सौदामिनि की निम्नलिखित पंक्तियों में वर्ण-योजना भावानुकूल हुई है—

"चलि गड गड वर्डकिचेनु
जगति ग्रम्मे नन्धकार
मचच टचट मिनुकु मिनुकु
मनु दीपिक लोना था।"[1]

'ग' 'ड' वर्णों की आवृत्ति से ठंडक से कम्पायमान होने की, 'ग्रम्मे' वर्णों से अंधकार के फैलने की, "मिनुकु मिनुकु" के वर्णों से तारों के चमकने की प्रतीति अपने आप हो जाती है। भयानक या रौद्र दृश्य का चित्रण करने के लिए पन्त ने 'परिवर्तन' में परुष वर्णों की योजना की है—

"लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे है जग के विक्षत वक्षस्थल पर।
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत-फूत्कार भयंकर।"[2]

कविवर कृष्णशास्त्री ने भी भयानक एवं रौद्र दृश्य का अंकन परुष वर्णों के द्वारा

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का प्रवेश। पल्लव। पृ० २०।
२. सौदामिनि : आर्तगीति, वैतालिकुलु। पृ० ६२।
३. सुमित्रानन्दन पन्त : परिवर्तन। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ११६।

किया है —

"प्रलय काल महोग्र भयद जीभूतोरु
गल चोर गम्भीर फैल फैलार्मंदुल लो
मेर पेला ?"[1]

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में क्ष, ण, श, म, घ, भ पुरुष वर्णों से भावानुकूल वर्ण-संगीत का विधान हुआ है।

हिन्दी और तेलुगु की काव्य-भाषाओं का दूसरा पहलू ऐसा है, जिस में संस्कृत के शब्दों की बहुलता नहीं दिखाई पड़ती। ऐसी काव्य-भाषा बोलचाल की भाषा के अत्यन्त समीप होने पर भी उससे भिन्न है।[2] हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी गीतों में अधिकतर सामान्य व्यवहृत भाषा (बोलचाल की भाषा) का ही प्रयोग हुआ है, जिसमें हिन्दी और तेलुगु की शब्दावली का प्रयोग मिलता है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का अभाव दीखता है। संस्कृत शब्दों के तद्भव रूप इस भाषा में अवश्य प्राप्त होते हैं। इन काव्य-भाषाओं के उदाहरणार्थ नरेन्द्र शर्मा, बच्चन, नण्डूरि सुब्बाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, बसवराजु अप्पाराव के गीतों को लिया जा सकता है। बच्चन के एक गीत को ऐसी काव्य भाषा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

"मुझ को भी संसार मिला है
जिन्हें पुतलियाँ प्रति पल सेतीं,
जिन पर पलकें पहरा देतीं,
ऐसी मोती की लड़ियों का
मुझको भी उपहार मिला है।"[3]

तेलुगु के गीतिकारों की भाषा भी व्यवहृत भाषा के अत्यन्त समीप रहती है। नण्डूरि सुब्बाराव के एक गीतांश को उदाहरणार्थ उद्धृत किया जाय—

"आनाटि नावोड्डु सेन्दुरुडा
अलिगि रालेदोथि सेन्दुरुडा:
येंकि, मनमिद्दरमे येव्वरोद्दन्नाडु।
योसेलु यीतोट लिंक नीवन्नाडु
भाटाडु तुंडंग सेन्दुरुड़ा !
मंचिदा पोवेवु सेन्दुरुड़ा !"[4]

---

१. देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ५६।
२. His (Poets) language is different from common speech, but it is a spoken language, common to his audience. He is more fluent in it than they are, but that is only because he is more practised. Geore Thomson : Marxism and Poetry. P. 22 & 23.
३. डा० हरिवंश राय बच्चन : आकुल अन्तर। चौथा संस्करण। पृ० ३६।
४. नण्डूरि सुब्बारावः वैतालिकुलु। (मुद्दुकृष्ण सं०) १०६।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के अगीतों में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है तो हिन्दी और तेलुगु के गीतों में संस्कृत शब्दों का अभाव और देशी शब्दों का बाहुल्य रहता है। अतः दोनों शैलियों का प्रसार दोनों भाषाओं में पाया जाता है।

(ख) **शब्द चयन और शब्द-शिल्प** :—वर्ण और शब्द का अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है क्योंकि वर्णों के योग से ही शब्दों का प्रयोग अर्थ को प्रेषणीय बनाने के लिये होता है। कवि का सम्पूर्ण रचनात्मक व्यापार ही शब्दों का व्यापार है। अतः वही सफल कवि है जिसका शब्दों पर पूर्ण अधिकार होता है और जो शब्दों की आत्मा से पूर्ण परिचित रहता है।[1] एक सफल कवि के लिये अधिक-से-अधिक शब्दों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है, अपितु उसे शब्दों की अन्तरात्मा का भी ज्ञान होना चाहिये। शब्द-शिल्प या शब्द और अर्थ का सम्यक् योग ही कवि की विशेषता को प्रकट करता है। कवि भावों के अनुकूल शब्दावली का चयन करता है और भाषा के माध्यम से वस्तु को एक स्वरूप प्रदान करता है। कवि शब्दों को काट-छाँटकर अपने भावानुकूल प्रयोग करता है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य के पूर्व उन भाषाओं में समृद्धि तथा व्यवस्था तो आ चुकी थी, परन्तु उन में शब्द-शिल्प को प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं हुआ था उनमें लालित्य की मात्रा कम थी। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने शब्द-शिल्प के कौशल द्वारा भाषाओं के रूप को ही बदल दिया।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी भाषाओं को पहले से भी अधिक समृद्ध बनाया। तेलुगु कवियों की अपेक्षा हिन्दी के कवियों का शब्द-भण्डार विशाल है। दोनों भाषाओं के कवियों ने शब्दों की अंतरात्मा का परिचय प्राप्त किया था। इस का अर्थ यह है कि कवि को शब्द का प्रयोग उचित रूप से करना चाहिये। एक ही अर्थ के वाचक शब्द अनेक होते हैं और कवि को ठीक अर्थ में शब्द का प्रयोग करना चाहिये। शब्द का उस के औचित्यपूर्ण अर्थ में प्रयोग करने में ही कवि का काव्य-कौशल निहित रहता है।[2] पर्यायवाची शब्द समानार्थी होते हुये भी अपने उच्चारण-

---

1. "The real defferentice of the poet is his command over the secret magic of words" —The Epic. P. 35.
2. "The insertion and deletion of words occur so long as there is uncertainty in the mind when the fixity of words is established the composition is successful. So the followers of Vamana say—"The Paka is the aversion of words to alteration by means of synonyms."
—S. K. De : Some Problems of Sanskrit Poetics. P. 5.

संगीत के कारण भिन्न बिम्बों को उपस्थित करते हैं उदाहरणार्थ स्त्री वाचक शब्द नारी, कामिनी, वनिता, महिला, तन्वी, आदि के बिम्बों में भिन्न विशेषतायें वर्तमान हैं। इस संदर्भ में सुमित्रानन्दन पंत के विचार ध्यान देने योग्य हैं। उनका कथन है—"भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः संगीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। जैसे "भ्रू" से क्रोध की वक्रता "भृकुटि" से कटाक्ष की चंचलता, "भौंहों" से स्वाभाविक प्रसन्नता ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है।[1] इस प्रकार कविवर पंत अन्य हिन्दी स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन के विवेक का परिचय देते हैं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्द-चयन में सतर्कता दिखायी। परन्तु यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों की अपेक्षा हिन्दी के कवियों ने अत्याधिक कलात्मक सतर्कता दिखायी है। हिन्दी के कवियों ने हर एक शब्द का नाप-तोल कर प्रयोग किया है तो यह प्रवृत्ति तेलुगु के कवियों में अधिक नहीं पायी जाती। इसके अतिरिक्त हिन्दी के कवियों ने नवीन शब्दों का निर्माण किया और कुछ शब्दों का नवीन अर्थ में प्रयोग भी किया। उन्होंने परम्परा से प्राप्त, भाषा में नवीन जीवन तथा स्पूर्ति का संचार किया। अपनी परम्परा से प्राप्त भाषा को तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उसी मात्रा में प्राण-शक्ति का संचार नहीं किया। उन्होंने भी प्राचीन भाषा का नवीन प्रयोग तो अवश्य किया, परन्तु उस में आमूल परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ते।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जैसे पहले भी कहा जा चुका है, शब्दों को संस्कृत के शब्द-भण्डार से ग्रहण किया है। परन्तु हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने संस्कृत शब्दों के रूप को परिवर्तित कर अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग किया है। अपने भावों को प्रेषणीय बनाने के लिये उन्होंने प्रत्येक शब्द को सोच-विचार कर ले लिया है। उन शब्दों को भी उन्होंने हिन्दी भाषा के उच्चारण-संगीत एवं उसकी प्रवृत्ति के अनुसार ग्रहण किया है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत की धारणा है कि संस्कृत के शब्द जैसे नपे-तुले, कटे-छंटे (diamond cut) होते हैं, वैसे बंगला और अंग्रेजी के नहीं, वे जैसे लिखे जाते है वैसे नहीं पढ़े जाते।[2] इसी कारण हिन्दी के कवियों ने संस्कृत के प्रचलित शब्दों को ही अधिकतर स्वीकार किया। परन्तु तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने संस्कृत के शब्दों के स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया। निराला तथा कृष्णशास्त्री ने संस्कृत के अप्रचलित तथा दुरूह शब्दों का भी प्रयोग किया है।

---

१. सुमित्रानन्दन पंत: पल्लव का प्रवेश। पल्लव। पृ० २४।
२. सुमित्रानन्दन पंत : "प्रवेश"। पल्लव तृतीयावृत्ति। पृ० ५४।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने विशेषणों के प्रयोग द्वारा काव्य-सौन्दर्य की विशेष वृद्धि की है। सुमित्रानन्दन पंत द्वारा प्रयुक्त **"नीलझंकार"** में **"नील"** विशेषण से आकाश का बोध तथा "झंकार" से ध्वनि-गुण का बोध होता है। अतः इन दोनों शब्दों के माध्यम से कवि ने आकाश के रंग और ध्वनि के गुणों को एक साथ मिला दिया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग होता है। **"कामरूप नभचर"** में **"कामरूप"** बादलों का साभिप्राय विशेषण है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने साभिप्राय तथा सौन्दर्य-वर्धक विशेषणों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। निम्नलिखित तालिका में हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों से प्रयुक्त कतिपय विशेषणों का उल्लेख किया जाय—

प्रसाद :—अनन्त नीलिमा, किशोर सुन्दरता, उज्ज्वल वरदान, सुरभित लहर, नीली किरणें, आलोक मधुर शोभा, सुप्त व्यथा, शीतल ज्वाला, नील आवरण आदि।

निराला :—ज्योतिर्मय लता, अपलक तप, स्निग्ध आलोक, शिथिल तंत्री, सोई तान आदि।

पंत :—नील झंकार, कामरूप नभचर- पीत कुमार, रेशमी वायु, ज्योतिर्मय जीवन, मधुर रोर, निराकार तम, चमत्कृत चित्र, उज्वल आह्लाद, कनक छाया, लचका गान आदि।

महादेवी :—पुलकित स्वप्न, हिम अधर, नीरव उछ्वास, अरुण बान, शापमयवर, निर्मम दर्पण, बुझते प्राण, शीतल चुम्बन आदि।

दिनकर :—उद्दाम किरण, उबलता मन, शीतल तम, चकित पुकार, तृषित व्यथा, सगुण कल्पना, अपरुप विभूति भीगी तान, हरित स्रोत आदि।

बच्चन :—कमनीय कमर, मादक दर्शन, तरल उन्माद, झिलमिल झाँकी, मानिक मदिरा आदि।

कृष्णशास्त्री :— नीलम्पु सिग्गु (नीली लज्जा), क्रौर्य श्रृंखलमुलु (क्रूर-श्रृंखलायें), आनन्दन अश्रुकणमु (आनन्द के आंसू), दारूण रोदन ध्वनुलु (दारुण रूदन ध्वनियाँ), मधुर चंद्रिक (मधुर चांदनी), भयंकर माधुरुलु (भयंकर माधुरी), चीकटि चाय (अधंकार की छाया), ब्रतिकियुन्न मृत्युवु (जीवित मृत्यु), नीरव समाधि (नीरव समाधि) आदि।

शिवशंकर शास्त्री :—पांडुर चेलांचल (पांडुर चेलांचल), सांद्रमैन विभावरी (सांद्र विभावरी), संकुल विलोकन जालकमुलु (संकुल दृष्टि-जाल) आदि।

पन्त और शिवशंकर शास्त्री कभी-कभी अनेक विशेषणों का प्रयोग एक साथ करते हैं। दोनों कवि अपनी प्रेयसियों की प्रेम भरी दृष्टियों को कई विशेषणों के द्वारा साकार बना देते हैं। दोनों के विशेषणों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

"देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर चिंतित दृष्टि से।"[1]
"विमल, सुकोमल, मन्जुल तरलित
शीतल तेरी दिव्य दृष्टियाँ।[2]"

इन विशेषणों के सुन्दर एवं चमत्कार पूर्ण होने का कारण यह है कि वे कहीं साभिप्राय हैं, कहीं उनमें विरोध का चमत्कार है और कहीं लाक्षणिकता है। इससे भाषा व्यंजक तथा चित्रमयी बन गयी है। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने विशेषणों का नवीन प्रयोग किया है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्दों का कहीं-कहीं दुरुपयोग भी किया है और उनके काव्य में शब्दों की पुनरुक्ति भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। शब्द-शिल्प के ज्ञाता कवि शब्दों के प्रयोग में अत्यन्त सतर्क रहकर उनके दुरुपयोग की त्रुटि से बचना चाहता है। एक ही अर्थवाले शब्दों का एक साथ प्रयोग करने से तथा व्यर्थ शब्दों का प्रयोग करने से पुनरुक्ति-दोष तथा शब्द-अपव्यय-दोष आ जाते हैं। हिन्दी और तेलुगु के प्रमुख स्वच्छन्दतावाद के कवि इन दोषों की ओर सचेष्ट हैं। फिर भी ये दोष स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में पाया जाता है। उदाहरण के लिए दो उद्धरणों को देखा जाय—

"मेरा पावस ऋतु सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन
गहरे धुंधले घुले साँवले
मेघों से मेरे भरे नयन।"[3]

इसमें ऋतु-सा, अपार, गहरे, आदि शब्दों का प्रयोग अनावश्यक रूप से हुआ है। इनकी अनुपस्थिति में काव्य-वस्तु की व्यंजना और भी सफल होती। ये शब्द छन्दपूर्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में शब्द अपव्यय का दोष

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : ग्रन्थि। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८
२. "कोमल मनोज्ञ विमल दृक्कोणतरल
दिव्य शीतल भवदीय दृष्टु लवल।"
—शिवशंकर शास्त्री : हृदयेश्वरी। पृ० १२।
३. सुमित्रानन्दन पंत : आँसू। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७३।

बहुत कम पाया जाता है। परन्तु पुनरुक्ति का दोष हिन्दी के कवियों की अपेक्षा तेलुगु के कवियों में अधिक है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

> "पडति किन्नेरसानि विडलेक तिरिगिंदि
> मुगुद किन्नेरसानि वगचेंदि तिरिगिंदि
> वेलदि किन्नेरसानि गलगला तिरिगिंदि।"[1]

इसमें पडति, मुगुद, वेलदि ये तीनों शब्द नारी अर्थ के सूचक हैं और तिरिगिंदि क्रिया का तीन बार प्रयोग किया गया है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में शब्द-निर्माण प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। तेलुगु कवियों की अपेक्षा हिन्दी कवियों में यह प्रवृत्ति अधिक है। तेलुगु के कवियों की अपेक्षा हिन्दी कवियों में शब्द-मोह अधिक दिखाई पड़ता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में "रे", "चिर," "नव," "स्वर्ण", "मधु", "सुभग", "तार" "मलय", "मधुर", "मर्मर", "गुन्जन", 'नीरव", आदि शब्दों का प्रयोग अत्यधिक हुआ है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी मधु, मधुर, शर्वरी, प्रविमल, नीरव, इरुलु आदि शब्दों का बाहुल्य मिलता है। शिवशंकर शास्त्री ने चार पंक्तियों में मधुर शब्द का कई बार प्रयुक्त किया है, यथा—

> "मधुर भावावली लसन्मतिनि नेनु।
> मधुरिममु कन्न मधुरमौ मधुरमूर्ति,
> मधुर यामिनि वेल नीमधुरिममुन
> पूर्णमुग मुग्ध भावमु पोंदिनाड़"[2]

ऐसे शब्दों की आवृत्ति के कारण एकरसता आजाती है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में शब्द-लालित्य तथा शब्द-संगीत को प्रमुख स्थान मिला है। इन कवियों ने अपनी कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कोमल-कान्त-पदावली का उपयोग किया है। शब्दों के औचित्यपूर्ण योग से ही शब्द संगीत की उत्पत्ति होती है। कविवर पन्त इस शब्द-संगीत को महत्व देते हुए कहते हैं—जिस प्रकार समस्त पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध हैं, उसी प्रकार शब्द भी; इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग जान लेना,.......इनकी पारस्परिक प्रीति मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक कविता है; लक्ष और मलद्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खा कर बनती है।[3] पन्त जी के

१. विश्वनाथ सत्यनारायण : किन्नेरसानि पाटलु। पृ० १३।
२. शिवशंकर शास्त्री : हृदयेश्वरी। पृ० १७
३. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का "प्रवेश"। पल्लव। पृ० १८।

अनुसार भाषा के संगीत में प्रत्येक शब्द को अपना संगीत मिलाना चाहिए। जहाँ वाक्य या पंक्ति के संगीत-प्रवाह से शब्द का संगीत नहीं मिलता तो वह शब्द वाक्य की गति में अवरोध उत्पन्न करता है। इसके उदाहरण हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों के बीच देशज शब्दों का प्रयोग भी संगीत को नष्ट कर देता है। ध्वन्यात्मक शब्दों से भाषा का लालित्य बढ़ जाता है तथा भावों की प्रेषणीयता में सहायता मिलती है, जैसे—

"झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गम्भीर घहर।
बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर।"[1]

इसमें शब्दों से ही झींगुर, घन, बिन्दु और दादुर की बोलियों की ध्वनि अपने आप निकल पड़ती हैं। नाण्डूरि सुब्बाराव ने भी कोकिल की कूक की इन पंक्तियों में सुन्दर ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति दी—

"तरिमि तरिमेशानु, तिरिगि को को यंदि
आडिदे आटगा पाडिदे पाटगा
कोम्मलो कोयिला "को" पंटदे।"[2]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्द-चयन में अपनी कलात्मक सतर्कता दिखाई है।

भाषा का तीसरा मुख्य अवयव वाक्य है जिसका विवेचन शैली-तत्व के अंतर्गत किया जायगा।

२. शैली-तत्व :—

शब्द और अर्थ में चमत्कार या विशिष्टता उत्पन्न करने वाली रीति को ही शैली कहते हैं। कवि अपनी विशिष्ट भावानुभूति को अन्यों तक पहुँचाने के लिए एक विशिष्ट शैली को अपनाता है। जब विचारों को व्यक्त करना पड़ता है तो शैली गद्यात्मक होती है। जब भावना एवं अनुभूति की प्रधानता है तो शैली काव्यात्मक होती है। काव्यकी शैली शास्त्र और विज्ञान की शैली से भिन्न होती है[3]। कवि का भाषा पर

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७६।

२. नण्डूरि सुब्बाराव : वेंतालिकुलु (सम्पादित) पृ० ११७।

३. In Kuntaka's view poetry is always embellished expression, as distinguished from plain and matter-of fact expression of sciences and scriptures"

— S. K. De: Some Problems of Sanskrit Poetics. P. 39.

अधिकार होता है और वह अपनी भावानुभूति को काव्य की एक विशिष्ट शैली के द्वारा प्रकट करता है। अतः अपनी अनुभूति को प्रेषणीय बनाने के लिए कवि एक विशिष्ट शैली को अपनाता है। शैली के द्वारा कवि अपने व्यक्तित्व को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देता है। शैली की निम्नलिखित तीन विशेषतायें हैं--

१. काव्य-शैली कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।[1]

२. व्यक्तित्वों की भिन्नता के कारण प्रत्येक कवि की शैली भी भिन्न होती है।

३. सानुरूप भावाभिव्यंजन (Precise expression) के कारण ही काव्य-शैली में उत्कृष्टता उत्पन्न होती है।

कवि के व्यक्तित्व के साथ विषय-वस्तु भी शैली में अंतर ला देती है। इसी कारण आदर्शवादी कल्पना-प्रधान काव्य-शैली से यथार्थवादी काव्य-शैली पृथक् होती है। कुछ कवि अपनी विशिष्ट काव्य-शैली में ऐसी शक्ति उत्पन्न करते हैं कि उसका आस्वादन करने के लिये पाठक को भी उसकी विशिष्टता से अवगत होना पड़ता है। अन्य कवि अपनी सामान्य भाषा-शैली के द्वारा अपनी भावानुभूति का दूसरों तक प्रेषण कर सकते हैं।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में मुख्यतः चार प्रकार की काव्य-शैलियाँ उपलब्ध होती हैं--१. गूढ़ या सांकेतिक शैली, २. गुम्फित या क्लिष्ट शैली, ३. अलंकृत शैली, (४) सरल शैली।

(क) सांकेतिक शैली :--हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी भाषाओं के अन्तर्गत नवीन काव्य-शैलियों को जन्म दिया। यह सांकेतिक शैली तेलुगु कवियों की अपेक्षा हिन्दी के कवियों में अत्यधिक पायी जाती है। प्रसाद और महादेवी में इस सांकेतिक शैली का पूर्ण परिपाक मिलता है। इनकी शैली में भाषा चित्रात्मक और साँकेतिक होती है। सांकेतिकता में प्रतीक-योजना, लाक्षणिकता, व्यंजकता के साथ ध्वनि का भी समावेश होता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रतीकों का विधान प्रभाव-साम्य की दृष्टि से किया गया। इस काव्य में कहीं-कहीं प्रतीक रूपकातिशयोक्ति या समासोक्ति अलंकार के रूप में आते हैं और कहीं तो लक्षणा-व्यंजना के रूप में। इस शैली के उदाहरण हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य से प्रस्तुत किये जायें—

---

1. "Every one recognises that expression alone makes the poet, but every one does not realise that the expression is in each case unique, individual, and synthetic.'

—S. K. De: Some Problems of Sanskrit. Poetics. P. 33.

"टूट गया वह दर्पण निर्मम।
उसमें हँस दी मेरा छाया,
मुझ में रो दी ममता माया,
अश्रु हास से विश्व सजाया
रहे खेलते आँखमिचौनी प्रिय जिसके परदे में 'तुम' ।"[1]

महादेवी के इस गीत में ब्रह्म और जीव का अद्वैत रूप दिखाया गया है। माया के कारण जो द्वैतरूप दिखाई पड़ता है वह भ्रामक है। ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् जीव का भ्रम टूट जाता है। माया भी ब्रह्म का अविद्यारूप है। जीव उसी कारण सुख-दुख के बन्धनों में आवद्ध हो जाता है। इसी आध्यात्मिक तथ्य का चित्रण कवयित्री ने प्रतीक और अन्योक्ति पद्धति के अनुसार किया है। इसी प्रतीक और अन्योक्ति के माध्यम से वसवराजु अप्पाराव ने ताजमहल का चित्रण अंकित किया है।

"आम्रवृक्ष से लिपट गयी है एक माधवी की लतिका
कह न सकेंगे उन दोनों की प्रेम-सम्पदा की सीमा
देख न पाया क्रूर वायु ने उन्मूलित कर दिया लता को
बना ठूँठ तब आम्रवृक्ष, मुख पर छायी दुख की रेखा
पत्रों और फलों के उष्णिम आँसू की धार बहाकर
हरे पत्र-सी बाल-कुटी में मीठा फल एक गिराकर,
माधवी लता के साथ चला आम्रवृक्ष भी माया में
इष्ट-प्रदाता अमर आम्र फल बचा अन्त में कवियों को।"[1]

इससे आम्रवृक्ष तथा माधवी लता को शाहजहाँ तथा मुमताज के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया गया। मृत्यु रूपी तूफान ने माधवी लता को उखाड़ फेंक दिया तो आम्रवृक्ष आँसू वहाकर अन्त में एक आम को संसार के लिए दान कर दिया गया। वही आम

---

१. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—१। छटा संस्करण। पृ० ६३।
२. "मामिडि चेट्टनु अल्ललुकोन्नदी माधवीलतोकटी
येमा रेंडिटि प्रेम सम्पदा इंतितनलेमू
चूडलेक पापिष्टि तुपानू उड वीके लतनु,
मोडयि पोयी मामिडि चेट्ट मोगमु बेलवेसी
मुच्चटैन कायलु कायलने बेच्चनि कन्नीलोड्ची
पच्च नाकुला बोम्मरिंटिलो पंडोच्कटि राल्ची,
मामिड चेट्टू माधवि लततो मायलो गलसिंदि
कामित मिच्चे मामिडि पन्डू कवुलकु मिगिलिंबि।
—बसवराजु अप्पाराव : ताजमहल। ब्रसवराजु अप्पाराव गीतालु। पृ० ७३।

ताज महल है। इस कविता में कवि ने अत्यन्त सतर्कता के साथ प्रतीक और अन्योक्ति की शैली का निर्वाह किया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में सांकेतिक शैली का पर्याप्त उपयोग हुआ है।

(ख) गुम्फित शैली :—इसी शैली में अधिकतर गुम्फित समासों तथा वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे वाक्यों में मुख्य कथन तक पहुँचने के लिए कठिनाई होती है। काव्य के लिए यह शैली कष्टसाध्य है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में निराला और प्रसाद, तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में विश्वनाथ सत्यनारायण तथा कृष्णशास्त्री आदि के काव्यों में गुम्फित शैली के उदाहरण मिल जाते हैं। प्रसाद की "कामायनी", निराला के "तुलसीदास" और "राम की शक्ति पूजा" में यह शैली दिखाई पड़ती है। इस शैली का मुख्य लक्षण यह है कि इसमें तत्सम शब्दों तथा समस्त पदों का अधिक प्रयोग होता है। "राम की शक्ति पूजा" के आरम्भ की १८ पंक्तियों में एक ही वाक्य है। उसका थोड़ा-सा अंश इस शैली के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाय –

'आजका, तीक्षण-शर-बिधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शत-शेल-सम्वरण-शील, नील-नभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित व्यूह-भेद-कौशल-समूह
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह,-वृद्ध-कपि-विषम-हूह, :"[1]

कृष्णशास्त्री की कतिपय कविताओं में गुम्फित शैली का दर्शन होता है। यथा––

"प्रबल नीरंध्राभ्र जनित गाढ ध्यान्त
निविड हेमन्त रात्री कुन्तलमुललो चुबरेला ?
× × ×
विकृत क्रूर क्षुधा क्षुभित मृत्यु कठोर
बिकट पांडुर शुष्क बदन दंष्ट्राग्नि लो न वेला ?"[2]

इस तरह दोनों भाषाओं के कवियों ने इस शैली को अपनाया है।

(ग) अलंकृत शैली :--यह शैली अलंकार-बहुला भाषा में होती है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अलंकारों को साधन के रूप में गृहीत किया गया। वे भाव के उन्मीलन में अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। परन्तु कहीं-कहीं

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : "राम की शक्ति पूजा" "अपरा" ती० सं०। पृष्ठ ३३।
२. कृष्णशास्त्री : "श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु"। पृ० ५६।

अलंकारों की अधिकता और उनके प्रति मोह भी दिखाई पड़ते हैं, जैसे प्रसाद के "आँसू" तथा पन्त की "छाया" में हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रथम दशक में तथा तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय दशक में यह शैली मिल जाती है। अलंकृत शैली के उदाहरण स्वरूप "छाया" की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"आशा के नव इन्द्रजाल-सी
सजनि। नियति सी अन्तर्धान,
कहो कौन तुम तरु के नीचे
भावी सी हो छिपी अजान।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री तथा नायनि सुब्बाराव आदि ने अलंकृत शैली का प्रयोग किया है। नायनि सुब्बाराव की कविता का अंश द्रष्टव्य है—

"यामिनी कांत गलसीम नंदगिंचु
तारका रत्नहारमुल् पेरुरमुन
चिक्कुवडि मेघपुंवैट चेत नावृ
तम्मुलै चेन्नु मासिन तरुण मंदु।"[2]

(घ) सरल शैली :—लघु वाक्यों तथा प्रसारगुण-युक्त भाषा को सरल शैली की भाषा कहते हैं। सरलता के साथ रसात्मकता के योग से ही उत्कृष्ट भाषा-शैली बनती है। हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के अधिकांश गीतिकारों की भाषा-शैली अत्यन्त सरल तथा रसात्मक है। ऐसे गीतिकारों में निराला, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा तथा विश्वनाथ सत्यनारायण, बसवराजु अप्पाराव, अडवि बापिराजु, नण्डूरि सुब्बाराव, वंगारम्मा प्रमुख हैं। बच्चन तथा दिनकर की भाषा-शैली सरल होने के साथ प्रांजल भी है। इस शैली का एक उदाहरण बच्चन के काव्य से उद्धृत किया जाय—

"क्या था उस मादक लाली में, क्या उस मोहक हरियाली में,
जिस से छाती में तीर चुभे, जिस से अंतर में चाह जगी।
सहसा बिरवों में पात लगे, सहसा विरही की आग जगी।"[3]

वंगारम्मा का निम्नलिखित गीतांश सरल शैली का उदाहरण प्रस्तुत करता है—

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "छाया"। पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ५७।
२. नायनि सुब्बाराव : सौभद्रनि प्रणय यात्रा। पृ० ४०।
३. हरिवंश राय बच्चन : मिलनयामिनी। पृ० ८२।

"अंदालु ताने चूसिंदि,
नीटिलो चंदालु ताने चेप्पिंदि
नातोटि,
योड्डुन्न मंदार योंगि बोट्टेट्टुकुनि,
अंदालु ताने चूसिंदि।"[1]

इस प्रकार हिन्दी तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अनेक काव्य-शैलियों का प्रयोग किया है।

३. अप्रस्तुत-विधान या अलंकार विधान :—

हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवि आत्माभिव्यक्ति के द्वारा सौन्दर्यानुभूति का चित्रण करना काव्य का चरम लक्ष्म मानते थे। उन्होंने वस्तु के स्थूल बाह्य सौन्दर्य से अधिक उसके परोक्ष सौन्दर्य को महत्व दिया। वे कवि सौन्दर्य को रूपात्मक से अधिक भावात्मक मानते थे। अतः उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का सम्बन्ध उनके सौन्दर्य-बोध से है। अलंकार काव्य की रसात्मकता के उत्कर्ष में योग देते हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभाविष्णुता एवं प्रेषणीयता के साथ भाषा में सौन्दर्य-वृद्धि होती है। काव्य में सौन्दर्य का उन्मीलन करने के लिये उनका योगदान आवश्यक है, अनिवार्य नहीं। कविवर पंत के अनुसार अलंकार केवल भावाभिव्यक्ति के साधन मात्र हैं, अपने में साध्य नहीं। उनका कथन है—अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिये नहीं, ये भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिये राग की परिपूर्णता के लिये आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं; पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।....वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं।[2] इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राचीन काव्य-परम्परा में पाये जाने वाले बँधे-बंधाये अलंकारों का विरोध किया है। अलंकार-विधान को अप्रस्तुत-विधान भी कहा जाता है। अप्रस्तुत-विधान में अधिकतर रूप, गुण तथा प्रभाव साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों की योजना की जाती है। अप्रस्तुत-विधान का उद्देश्य वर्ण्यवस्तु को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना होता है। अतः हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ऐसे अप्रस्तुतों का विधान किया, जो प्रस्तुतों के रूप-गुण-प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

भारतीय समीक्षा-पद्धति में शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने के कारण अलंकार दो प्रकार के होते हैं—१. शब्दालंकार और २. अर्थालंकार। शब्द में

---

१. बंगारम्मा : बैतालिकुलु। (सं०) पृ० १७७।
२. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव का "प्रवेश"। पल्लव। तृ० सं०। पृ० २८।

चमत्कार उत्पन्न करने वाली अप्रस्तुत योजना को शब्दालंकार और अर्थ में चमत्कार उपस्थित करने वाली को अर्थालंकार कहते हैं।

(क) शब्दालंकार :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्दालंकारों का प्रयोग जानबूझ कर नहीं किया है, फिर भी उनकी कविता में शब्दालंकारों की छटा दर्शनीय है। वे अनजाने ही या ध्वनि-साम्य के कारण आ गये हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास यमक और वक्रोक्ति प्रधान हैं। अनुप्रास की छटा निम्नांकित उद्धरणों में द्रष्टव्य है—

"वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल"
"मधुप बाला का मधुर मधु मुग्ध राग।" (पंत)

"मधुर भावावली लसन्मतिनि नेनु
मधुरिममु कन्न मधुरमौ मधुर मूर्ति,
मधुर यामिनी बेल नीमधुरिममुन" (शिवशंकर शास्त्री)

यमक अलंकार में एक ही शब्द का दो अर्थों में प्रयोग होता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में कहीं-कहीं इसकी छटा देखने को मिलती है—

"तरणि के ही संग तरल तरंग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।"(पंत)

एक "तरणि" शब्द का अर्थ है "सूर्य" और दूसरे "तरणि" शब्द का अर्थ है "नाव"। इन पंक्तियों में अनुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

"इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुये थे; पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।" (पंत)

पूर्व और "अपूर्व" में सभंगपद यमक है। तेलुगु का एक उदाहरण यहाँ पर्याप्त होता—

"नुत्तरपु गालि चलिबाध कोंचि मिंचि
मलय पयनम्मु नामीद मलयु टेपुडो।" (नायनि सुब्बाराव)

रेखांकित शब्दों में यमक अलंकार हैं, क्योंकि प्रथम शब्द "मलय मारुत" के लिये प्रयुक्त है तो द्वितीय शब्द "संचार करने" के अर्थ में। वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग दोनों भाषाओं की कविता में कम ही हुआ है।

(ख) अर्थालंकार :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने पांडित्य प्रदर्शन करने, उक्तिवैचित्र्य का चमत्कार दिखाने के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं

किया है। उन्होंने अप्रस्तुत–विधान में सर्वथा अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उनके अप्रस्तुत विधान में लक्षणा–व्यंजना के प्राधान्य के कारण अनेक नवीन प्रयोग भी मिलते हैं, जिनका अलंकार-शास्त्र में नामकरण भी नहीं हुआ है। विश्व-साहित्य तथा भारतीय काव्य-साहित्य के अध्ययन से अलंकार संस्कार रूप में उनके मन में समाये हुए थे। इन कवियों ने काव्य रचना में उनका उपयोग किया है। इनके काव्य में भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के अर्थालंकारों का प्रयोग मिलता है। इन्होंने प्रचीन अलंकारों में भी नये अप्रस्तुतों का सर्वाधिक प्रयोग किया है, प्रचीन परम्परागत अप्रस्तुतों का नहीं। सादृश्यमूलक तथा विरोधमूलक—दोनों प्रकार के अलंकारों में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, साँगरूपक, रूपकातिशयोक्ति, तुल्ययोगिता दृष्टान्त आदि का अधिक प्रयोग हुआ है। वैषम्यमूलक अलंकारों में विरोधाभास का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, संदेह, यथा संख्या, सहोक्ति, तद्गुण, पर्याय, स्मरण आदि अलंकारों का प्रयोग कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। पाश्चात्य अलंकारों में विशेषणविपर्यय, ध्वन्यात्मकता, अंगांगी प्रयोग तथा मानवीकरण आदि प्रधान अलंकार भी अपनाये गये।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। जब दो वस्तुओं में समानता प्रदर्शित की जाती है तो वहाँ उपमालंकार माना जाता है। काव्य में प्रस्तुत को पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए उसके समान जाति, आकृति, रूप, रंग, गुण एवं प्रभाव वाले अप्रस्तुत का विधान किया जाता है इसके लिए हिन्दी में **"सा" "जैसा" "सदृश्य"** आदि का तथा तेलुगु में **"योले", "यले" "लागु" "ला"** आदि का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवि पन्त ने अपनी **"छाया"** नामक कविता में उपमाओं की लड़ी गूंथ दी है—

"कौन कौन तुम परिहत बसना
म्लान मना, भू पतिता-सी
यात हता विच्छिन्न लता–सी
रति श्रान्ता ब्रज वनिता–सी"[1]

पन्त ने अपनी 'भावी पत्नी' की उपमा सरोवर के नतमुख अरुण कमल से दी है—

"मृदुमिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरूण सरोज समान"[2]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : छाया। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ५६।
२. सुमित्रानन्दन पन्त : भावी पत्नी के प्रति। पल्लविनी तृतीय संस्करण। पृ० १४८।

शिवशंकर शास्त्री ने भी अपनी प्रिया के आनन्न की उपमा सरोवर में डोलने वाले कमल के साथ दी है।

"सरसी पर लहराते जलल-सदृश
तब आनन ने आश्चर्य चकित कर डाला"[१]

इस प्रकार अन्य हिन्दी और तेलुगु के कवियों के काव्य में उपमा की छटा देखने को मिलती है। स्वच्छन्दतावादी उपमा की एक और विशेषता यह है कि उसमें मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुत और अमूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त अप्रस्तुत का विधान भी निस्संकोच रूप से किया गया है। कभी-कभी अमूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त प्रस्तुत का भी प्रयोग हुआ है। प्रसाद, पन्त, कृष्णशास्त्री तथा शिवशंकर शास्त्री में यह प्रवृत्ति मर्वाधिक दिखाई पड़ती है। "छाया" के लिए पन्त अमूर्त अप्रस्तुत करते हैं—

"गूढ़ कल्पना सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय सी,
ऋषियों के गम्भीर हृदय-सी
बच्चों के तुतले मय-सी।"[२]

इसमें उपमाओं की माला होने के कारण मालोपमा अलंकार है। प्रसादजी ने "लज्जा" की अमूर्त भावना के लिऐ अनेक मूर्त-अमूर्त अप्रस्तुतों की माला प्रस्तुत की है—

"कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यों,
सुरभित लहरों की छाया में बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों ;"[३]

उपर्युक्त उद्धरण में उपमा का प्रयोग नवीन ढंग से हुआ है। लज्जा को दीपशिखा, कलिका और लतिका के रूप में देखा गया है। इनके अतिरिक्त लज्जा को मायाविनी नारी का रूप भी दिया गया है। कवि ने उपमानों के रूप, गुण, धर्म और क्रिया का भी वर्णन किया है। इस से भाषा में चित्रात्मकता और भावों में संश्लिष्टता आ गयी है। इन अप्रस्तुतों से काव्य में मूर्तिमत्ता आती है। रंग, रूप, ध्वनि, स्पर्श आदि ऐन्द्रियिक धर्मों तथा उनके विषयों का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। तेलुगु के

---

१. "अक्कंजमु कोल्पि तोचे नीयाननम्मु।
सरसिपे देलियाडेडि जलज मृद्ल"—शिवशंकर शास्त्री : हृदयेश्वरी। पृ० ८१।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : छाया। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ५७।

३. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ९७

स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी अमूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों को लाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। शिवशंकर शास्त्री ने अपनी "हृदयेश्वरी" में प्रस्तुत के लिये मूर्त अप्रस्तुत का विधान सुन्दर ढंग से किया है—

"विमल सुकोमल मंजुल तरलित
शीतल तेरी दिव्य दृष्टियाँ
मेरे आनन पर उतरी हैं
स्निग्ध चाँदनी की चिड़ियाँ-सी"[1]

इस में नायिका की शीतल तथा दिव्य दृष्टियां चाँदनी की चिड़ियों की भांति कवि के मुख पर उतरी हैं। यहाँ चाँदनी की चिड़ियाँ दृष्टियों के लिये उपमा के रुप में गृहीत हैं। चाँदनी की चिड़ियों को हम मूर्त अप्रस्तुत के रूप में भी ग्रहण नहीं कर सकते क्योंकि चाँदनी की वनी हुई हैं। इस प्रकार उपमा अलंकार की छटा इन स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में पूर्ण रूप से पायी जाती है।

उपमा के पश्चात् उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग स्वच्छन्दतावादी काव्य में अधिक हुआ है। ये अलंकार प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, कृष्णशास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, नायनि सुव्बाराव, शिवशंकर शास्त्री, वसवराजु अप्पाराव आदि कवियों की कविताओं में ही अधिक दिखाई पड़ते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में रूपक का विधान नवीन प्रकार से हुआ। इनके काव्य में अधिकतर सादृश्य और साधर्म्यमूलक अप्रस्तुतों का प्रतीकयत् व्यवहार किया गया तथा रूपक के वाचक पदों के स्थान पर लक्षक या व्यंजक पदों का प्रयोग हुआ। वर्ण्यवस्तु के स्थान पर उसके व्यंजक अप्रस्तुत चित्रों का भी विधान हुआ। इस तरह रूपक, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों का हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों में अधिक प्रयोग मिलता है। रूपकों में भी सांगरूपक का विधान तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद में नहीं दीखता। रुपकों का सौन्दर्य दोनों भाषाओं स्वच्छन्दतावादों में द्रष्टव्य हैं—

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव
यारि वसन, वसुधा के मूल।"[2]

---

१. "कोमल मनोज्ञ विमल दृक्कोण तरल
दिव्य शीतल मवदीय दृष्टुलबल
पिक्कटिल्लि मदानन बिम्बमुपयि
चेलुबुगा वाले येन्नेल पुलुगु लटलु।" क्षशिवशंकर शास्त्रीः "हृदयेश्वरी'; पृ०१२।

२. सुमित्रानन्दन पंत : बादल। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४८

"तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल ;
लहरे उर पर कोमल कुन्तल ।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर,
चंचल-चंचल सा नीलाम्बर ।"[1]

"उलझ गया मेरा चित्त-विहग
तव संकुल चितवन जाल में "[2]

"स्वच्छ प्रणय की जल धारा से
फूलों की स्नेह-लता पालित
पड़ी धरा पर बात-हता हो
बिना बिखेरे सौरभ.........."[3]

प्रथम उदाहरण में कविवर पन्त ने बादलों को विभिन्न रूपों में देखा है। द्वितीय उदाहरण में पन्त ने तन्वंगी गंगा को एक तापस-बाला के रूप में चित्रित किया है। तृतीय उदाहरण में शिवशंकर शास्त्री ने अपने चित्त-विहग को प्रिय की दृष्टि-जाल में बन्दी के रूप में पाया। चतुर्थ उदाहरण में कविवर कृष्णशास्त्री स्वच्छ प्रणय की जलधारा से पालित स्नेह की पुष्प-लता को बिना सौरभ को फैलाये ही वातहता हो जाना देखते हैं। साँगरूपकों का विधान निराला तथा पन्त में मिलता है। पन्त परिवर्तन का मानवीकरण कर उसे विभिन्न साँगरूपकों के द्वारा प्रकट करते हैं। परिवर्तन को सहस्र-फणी वासुकि कह कर पन्त ने आद्यन्त सांगरूपक का निर्वाह किया है—

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त ; नौका-विहार। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १८५।

२. "चिक्कुकोन्नविन्मामक चित्त उगमु।"
संकुल भवद्विलोकन जालकमुल।"

—शिवशंकर शास्त्री : "हृदयेश्वरी"। पृ० २५।

३. "स्वच्छमैनट्टि प्रणयंपु सलिल धार
बोसि पेंचिन स्नेहंपु बूल तीव
तावुलनु जिम्मु नलरुल दाल्प कुण्ड
गालि ताकुन नेलपै व्राले नकट ?"

—कृष्णशास्त्री : श्री वेवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ४५।

"अहे वासुकि सहस्र कन ।
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर ।
शत-शत फेनोच्छ्वसित फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ।
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर ।
अखिल विश्व ही विवर, वक्र कुण्डल दिङ्मण्डल ।"[1]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में सांगरूपकों का सफल प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता ।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में रुपकातिशयोक्ति और अन्योक्ति अलंकारों की भी प्रमुखता है । इसका मूल कारण यह है कि इनमें प्रतीकों तथा लाक्षणिक प्रयोगों के लिए अधिक अवसर रहता है । प्रभाव-साम्य पर दृष्टि होने के कारण कवि अप्रस्तुत की आकृति, गुण आदि पर ध्यान नहीं देता । ऐसे अवसर पर कवि रूपकातिशयोक्ति या अन्योक्ति अलंकार की योजना करता है । अन्योक्ति में प्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करने वाले अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत की ओर संकेत किया जाता है, रूपकातिशयोक्ति में प्रस्तुत का उल्लेख किये बिना ही अप्रस्तुत से उसका अभेद दिखलाया जाता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रूपकातिशयोक्ति अलंकार में उपमान के द्वारा ही उपमेय का वोध कराया जाता है । प्रसाद की "लहर", निराला की "जलद के प्रति" माखनलाल चतुर्वेदी की "फूल की चाह" महादेवी की 'मुरझाया फूल", वच्चन की "मधुशाला", वसवराजु अप्पाराव की "ताजमहल" आदि कवितायें इसी प्रकार की हैं । रूपकातिशयोक्ति के निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं—

"कमल पर को चारु खंजन थे प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते
चपल चोखी चाट कर अब पंख की
ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को ।"[2]

"बाँधा है विधु को किसने इन काली जंजीरों से ।
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ।"[3]

"आम्र वृक्ष से लिपट गयी है अंक माधवी की लतिका
कह न सकेंगे उन दोनों की प्रेम-सम्पदा की सीमा

---

१. सुमित्रान्नदन पन्त : निष्ठुर परिवर्तन । आधुनिक कवि –२ । सातवां संस्करण । पृ० ३६ ।
२. सुमित्रानन्दन पंत : ग्रंथि । पृ० १२ ।
३. जयशंकर प्रसाद : आँसू ।

देख न पाया क्रूर वायु ने उन्मूलित कर दिया लता को
बना ठूँठ तब आम्र वृक्ष, मुख पर छायी दुख की रेखा
पत्रों और फलों के उष्णिम आँसू की धार बहाकर
हरे पत्र-सी बाल-कुटी में मीठा फल एक गिराकर
माधवी लता के साथ चला आम्र वृक्ष भी माया में
इष्ट-प्रदाता अमर आम्र फल बचा अंत में कवियों को।"[1]

प्रथम उदाहरण में पंतजी ग्रंथि की नायिका की आँखों की यौवन-जन्य चंचलता को स्पष्ट करने के लिये कमल पर बैठे हुये खंजन पक्षियों की विकलता को अंकित करते हैं। द्वितीय उदाहरण में प्रसादजी आँसू की नायिका के मुख सौन्दर्य को व्यक्त करते हैं। तृतीय उदाहरण में शाहजहाँ तथा मुमताज के प्रेम को आम्र वृक्ष और माधवी लता के प्रेम के रूप में अंकित किया गया है और आम्रफल को ताजमहल के प्रतीक के रूप में देखा गया है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार को भी प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में संभावना की है। इस अवसर पर कवि अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा अप्रस्तुतों की संभावना करते हैं। दिनकर तथा कृष्णशास्त्री ने अपनी "उर्वशी" की कल्पना करते हुये अनेक सौन्दर्यमयी अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त स्मरण, मुद्रा, यथासंख्या, सहोक्ति, पर्याय आदि अलंकारों का व्यवहार भी कहीं-कहीं हुआ है।

स्वच्छन्दतावादी-युग के काव्य में प्रभाव-साम्यमूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त तुलना एवं विरोधमूलक अप्रस्तुतों की भी योजना मिलती है। भाव तथा उक्ति के चमत्कार के लिए विरोधाभास अलंकार का प्रयोग होता है और लाक्षणिक या व्यंजक पदों द्वारा उसकी योजना होती है। वास्तव में इस अलंकार में विरोध का भाव नहीं, अपितु विरोध का आभास दिखाई पड़ता है। अलंकार का चमत्कार प्रसाद, पंत, महादेवी, कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री में अधिक देखने को मिलता है—

"शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का ?" (आँसू : प्रसाद)

"नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम-भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम-भी
तार भी आघात भी, झंकार की गति भी
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मिति की चाँदनी भी हूं।" (नीरजा-महादेवी)।

---

१. बसवराजु अप्पाराव : ताजमहल। बसवराजु अप्पाराव गीतालु : पृ० ७२।

इन उदाहरणों में शब्दों के प्रयोग के वैचित्र्य के कारण विरोध तो अवश्य दीखता है, परन्तु संश्लिष्ट और सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति हुई है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में विरोधाभास की छटा कृष्णशास्त्री में अधिक पायी जाती है—

"मैं बनूँगा मधुप भी और,चन्द्रमा भी
मैं बनूँगा मेघ भी और, चंचला भी
मैं बनूँगा फूल भी और किसलय भी
मैं बनूँगा गीत भी और सरिता भी।"[1]

इसमें कवि विरोध के द्वारा महादेवी की भाँति भाव-चित्रण कर रहा है। वास्तव में इन के पीछे से कवि का व्यक्तित्व झलकता है। कविवर कृष्णशास्त्री अपनी विरह-दशा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि वे वेदना-सुख का अनुभव कर रहे हैं—

"मेरे जलते उर में छिपकर कितने ही कल्पों से
मर्म-वेदना का सुख जो है मुझे प्रीतिकर प्राणों से।"[2]

"मर्म-वेदना का सुख"—इसमें विरोधाभास अलंकार स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने पाश्चात्य अलंकारों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जिनमें मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय अत्यन्त प्रधान हैं। वास्तव में मानवीकरण, अलंकार की अपेक्षा विश्व के प्रति एक दृष्टिकोण है। सर्वात्मवादी दर्शन तथा व्यक्तिवादी कल्पनातिरेक के कारण इस दृष्टिकोण का प्रसार भारतीय स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी पाया जाता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने निर्जीव पदार्थों में चेतना का आरोप करके उनका मानवीकरण किया है—

---

१. "मधुप मय्येद जंदमाम नय्येदनु
मेघ मय्येद वित मेरपु नय्येदनु
अलरु नय्येद जिगुराकु नय्येदनु
पाट नय्येद गोंडवागु नय्यैदनु।"
—कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ११।

२. "इन्नि कल्पालु कालु नायेद नडगि।
—नाकु प्राणमे यगु वेदना सुखम्मु।"
—कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु—पृ० ११८।

"सिन्धु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी बैठी सी।"[१]

"इस सोते संसार बीच, जगकर सजकर रजनी बाले
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले।"[२]

इस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं के अतिरिक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मानसिक वृत्तियों को भी सजीवता प्रदान करके मूर्त रूप में अंकित किया है। प्रसाद जी ने **"कामायनी"** में लज्जा का मानवीकरण इस प्रकार किया है—

"नीरव निशीथ में लतिका सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये सी आलिंगन का जादू करती।"[३]

तेलुगु के प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में मानवीकरण का सौन्दर्य उपलब्ध होता है—

"छोड़ नाट्य औ' मधुर गान को
निद्रा में डूबी शैवलिनी।"[४]

"अम्बर की श्यामल सरसी में
जल क्रीडाएँ करने वाली
विलासिनी तारों की बालाओं को देखो।"[५]

इस तरह मानवीकरण हिन्दी और तेलुगु में स्वच्छन्दतावादी काव्य में देखने को मिलता है।

---

१. जयशंकर प्रसाद : कामायनी। पृ० २६।
२. डा० रामकुमार वर्मा : आधुनिक कवि—३। द्वितीय संस्करण। पृ० ६६।
३. जयशंकर प्रसाद : लज्जा सर्ग। कामायनी। पृ० ७९।
४. नाट्यम्बु मधुर गानंबुनु मांनि
गाटंपु निहुर गांचे शैवलिनि।"—कृष्णशास्त्री : श्री दे० कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० २७।
५. "श्यामलाम्बर परिणाह सरसिलोन
प्रणय लीला बिहार विलासिनु लगु।
तारकल गांचुमा ?——वही। पृ० १८।

विशेषण विपर्यय भी स्वच्छन्दतावादी कवियों का एक प्रिय अलंकार है। यह भी लाक्षणिक प्रयोगों के भीतर समाविष्ट हो जाता है। कुछ उदाहरणों की ओर दृष्टिपात किया जाय—

"सुरीले ढीले अधरों बीच, अधूरा उसका लचका गान।" (उच्छ्‌वास : पंत)

"वेदना के ही सुरीले हाथ से"—(ग्रंथि—पंत)

"थके हुये दिन के निराशा भरे जीवन की" (लहर—प्रसाद)

प्रथम पंक्ति में सुरीले और लचका विशेषण अधरों और गान के लिये प्रयुक्त हुये हैं, जबकि वे अन्य वस्तुओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। द्वितीय पंक्ति में सुरीला विशेषण हाथ के लिये प्रयुक्त है तृतीय पंक्ति में "थके हुये" विशेषण दिन के लिये प्रयुक्त है, जिससे विलक्षण अर्थ-चमत्कार हुआ है और अभिव्यक्ति में सौन्दर्य का समावेश हो गया है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री के काव्य में यह अलंकार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। एक उदाहरण यहाँ पर्याप्त है—

"............छाया-सा रुककर

पुकारते कौन (मूक नयनों की बोझिल दृष्टियों से -"[1]

मूक विशेषण नयनों के लिये तथा बोझिल विशेषण दृष्टियों के लिये प्रयुक्त हैं। इससे अर्थ ग्रहण तथा विम्ब ग्रहण में अतीव सौन्दर्य की सृष्टि हुई है।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अलंकारों का सुन्दर तथा प्रौढ़ प्रयोग हुआ है।

४. चित्रण-कला :—

ललित कलाओं में चित्रणकला, संगीत-कला तथा काव्य-कला अत्यन्त सूक्ष्म कलायें हैं। चित्रकला का आधार रेखायें हैं, संगीत कला का आधार राग है और काव्य-कला का आधार शब्द है। परन्तु काव्य-कला में अन्य कलाओं का समाहार हो जाता है। संगीत का सम्बन्ध राग से होने के कारण उसका विवेचन छन्द और लय-तत्व के अंतर्गत किया जायगा। काव्य-कला में चित्र-कला को अत्यन्त मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है।[2]काव्य-वास्तव में भाव या वस्तु का शब्द-चित्र है। शब्दों के द्वारा अर्थ

---

१. "....छाया-सा रुककर
पिलुतु रेबरो, मूगंकनुलु मोयलेनि चूपुलतो।"—श्री दे० कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ११२।

2. Poetry is a speaking picture and picture a mute poetry.' Lessing.

की अभिव्यक्ति करके कवि अपनी अनुभूति को अन्यों तक पहुँचाता है। काव्य-रचना में प्रवृत्त कवि वर्ण्य-वस्तु या भाव को दृश्य रूप में देखता या ध्वनि रूप में सुनता है। उसी भाँति पाठक भी काव्य पढ़ते समय वर्ण्य-वस्तु या भाव को मूर्त रूप में ग्रहण करना चाहता है।

काव्य रूपाश्रित होने के साथ शब्दाश्रित भी है। परन्तु वह अन्य इंद्रियों के विषय में भी उपेक्षा नहीं करता। रूप और शब्द के अतिरिक्त रस, गन्ध एवं स्पर्श का प्रत्यक्षीकरण भी काव्य द्वारा होता है। श्रोता या पाठक शब्द को सुनते समय केवल अपनी श्रवणेन्द्रिय से ही काम नहीं लेता, वह वर्ण्यवस्तु का रूप-रंग भी अपनी कल्पना की आँखों से देखता चलता है। यदि गन्ध, स्पर्श, रस का भी शब्दों में वर्णन किया गया है तो पाठक या श्रोता कल्पना द्वारा घ्राणेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय तथा रसेंद्रिय का अभ्यास करने लगता है। काव्य की चित्रण-कला की पूर्णता तथा उत्कृष्टता इसी में है कि चित्रण सभी या अनेक इन्द्रियों की संवेदना से आपूरित हो। वर्णन शब्द के द्वारा काव्य का श्रवणाश्रित होने तथा चित्रण से उसके नयनाश्रित होने का, बोध होता है। चित्रण या वर्णन के द्वारा सभी ज्ञानेन्द्रियों की संवेदनाओं से सम्बद्ध विषयों का मानस-चित्र उपस्थित हो जाता है। ये मानस-चित्र कवि की संवेदना के नहीं, अपितु संवेदनाओं से सम्बद्ध वस्तुओं तथा क्रिया-व्यापारों के चित्र होते हैं। इन चित्रों को प्रेषित करने वाले शब्द ऐन्द्रियिक या मूर्त अर्थों की अभिव्यक्ति करने वाले होते हैं, बुद्धिग्राह्य अर्थों की अभिव्यक्ति करने वाले नहीं। काव्य में ऐसे अर्थों तथा चित्रों की अभिव्यक्ति होती है, जो कवि के हृदय-स्पर्श से विशेषीकृत हो गये हैं और जो इन्द्रियानुभूत एवं चित्रात्मक या मूर्त होते हैं। उन्हें कवि ने जिस रूप में ग्रहण किया था, उन्हें उसी रूप में पाठक या श्रोता भी ग्रहण करता है। अतः इन्द्रियों के संवेद्य विषयों के सामंजस्य और औचित्य पर ही काव्य की प्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता निर्भर करती है। कवि का कर्तव्य चित्र का संघटन करके श्रोता या पाठक में भाव का संचार करना है, न कि उपदेश देना या विश्लेषण करना। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं—

"रस-विधायक कवि का काम श्रोता या पाठक में भाव-संचार करना नहीं, उसके समक्ष भाव का रूप प्रदर्शित करना है जिसके दर्शन से श्रोता के हृदय में भी उक्त भाव की अमूति होती है जो प्रत्येक दशा में आनन्द स्वरूप ही रहता है।"[1]

निष्कर्ष अह कि काव्य में चित्रण की ही प्रधानता है और यह चित्रण कलात्मक एवं संतुलित होना चाहिए। कलात्मक चित्रण के लिए ये निम्नलिखित तत्व अनिवार्य हैं—

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल। रस-मीमांसा : पृ० ८६।

१. कलात्मक चित्रण में शब्द-योजना के द्वारा पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने की शक्ति होनी चाहिये।

२. उस में विम्ब-ग्रहण के द्वारा भावों के स्वरूप के प्रत्यक्षीकरण की शक्ति होनी चाहिये।

३. उसमें इन्द्रियों के संवेद्य विषयों का उचित सामंजस्य होना चाहिये। चित्रण में ऐन्द्रियता होनी चाहिये।[1]

४. वर्ण्य वस्तु के विभिन्न अंगों के चित्रण में भी सामंजस्य, अन्विति तथा सौष्ठव होने चाहिये।[2]

५. परिपार्श्व से उसका अनुबन्ध और प्रकृत सम्बन्ध प्रत्यक्ष होना चाहिये। पहले भी कहा जा चुका है कि चित्रण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी चित्रात्मकता है। इसी विशेषता के कारण पाठक कवि की अनुभूतियों का दृश्य-रूप में आकलन करता है। काव्य में प्रयुक्त शब्द अर्थों के संकेत या प्रतीक मात्र है। शब्दों के द्वारा अर्थ को प्रकट करना ही काव्य नहीं है। कवि अर्थ ग्रहण नहीं करता, वह चित्र-रूप में वर्ण्यवस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है।[3] अतः कवि

---

१. "In order to be successful the poetic image needs to have sufficient sensuous appeal or novelty to arrest the reader's attention and stir his imagination."—R. A. Foakes : 'Poetic imagery, The Romantic Assertion. P. 27.

२. "Another aspect of the poetic image is its compression of language or of associations as a means of obtaining emotional intensification. Many more words than an image contains are usually required in order to paraphrase it. "—R. A. Foakes : "Poetic imagery—The Romantic Assertion P. 29.

३. "अभिधा द्वारा ग्रहण दो प्रकार का होता है—बिम्ब ग्रहण और अर्थ ग्रहण। किसी ने कहा "कमल"। अब इस कमल पद का ग्रहण कोई इस प्रकार भी कर सकता है कि ललाई लिये हुये सफेद पंखड़ियों और नाल आदि के सहित एक फूल का चित्र अंतःकरण में थोड़ी देर के लिये उपस्थित हो जाय; और इस प्रकार भी कर सकता है कि कोई चित्र उपस्थित न हो, केवल पद का अर्थ मात्र समझकर काम चल जाय। व्यवहार में तथ्य शास्त्रों में इसी दूसरे प्रकार के संकेत-ग्रह से काम चलता है।....पर काव्य के दृश्य-चित्रण में संकेत ग्रह पहले प्रकार का होता है। उसमें कवि का लक्ष्य "बिम्ब-ग्रहण" कराने का होता है, केवल अर्थ ग्रहण कराने का नहीं।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि। भाग २। पृ० १-२।

शब्दों के द्वारा चित्र-योजना करता है जिसका पाठक के द्वारा विम्ब-ग्रहण होता है। कवि जातिवाचक शब्दों के व्यवहार से संतुष्ट नहीं होता, अपितु वह अपने मनोनुकूल चित्र को विशिष्ट शब्दों के द्वारा प्रेषित करता है। सशक्त कल्पना के द्वारा ही भाव-चित्रों का प्रत्यक्षीकरण कराया जा सकता है।

सौन्दर्य का अंकन ही चित्रण का लक्ष्य है। कवि बहुधा तीन प्रकार के सौन्दर्य का अंकन करता है— १. रूप सौन्दर्य, २. भाव-सौन्दर्य तथा ३. कर्म-सौन्दर्य। रूप-सौन्दर्य के अंकन में कवि का ध्यान आलम्बन या गृहीत वस्तु की बाह्य-आकृति के सौन्दर्य पर रहता है। भाव-सौन्दर्य आत्मगत होता है, अतः उसके चित्रण में कवि का ध्यान बाह्याकृति पर बहुत कम रहता है। वास्तव में भाव-सौन्दर्य कवि के अपने ही हृदय की सौन्दर्य-भावना का वर्ण्य-वस्तु में आरोप मात्र है। तृतीय प्रकार का सौन्दर्य कर्म-सौन्दर्य है। कर्म करते समय मानव में जो सौन्दर्य दिखाई पड़ता है, वही कर्म-सौन्दर्य है। प्रवन्ध-काव्यों में यह सौन्दर्य अपने उत्कर्ष को प्राप्त होता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में रूप-सौन्दर्य तथा भाव-सौन्दर्य का पूर्ण परिपाक हुआ है।

(क) रूप-सौन्दर्य का चित्रण :—हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी काव्य में रूप-सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। रूप-सौन्दर्य के चित्रण में चित्र की बाह्य आकृति पर इन कवियों का ध्यान रहा है। हिन्दी के कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, दिनकर तथा तेलुगु के कवियों में नायनि सुब्बाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव, दुव्वूरि रामिरेड्डी, शिवशंकर शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि के काव्य में रूप-सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। प्रसाद और पंत ने नारी के रूप-सौन्दर्य का मादक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'ग्रंथि' की नायिका के तरुण सौन्दर्य का चित्र अत्यन्त मनोमुग्धकारी है—

"बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

× × ×

लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब—से
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप—से।

इन गढ़ों में रूप के आवर्त से
घूम फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटक कर
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?"[१]

उपर्युक्त चित्रण में कवि ने यौवन-मुग्धा नायिका के रूप-सौन्दर्य को साकार कर दिया है। कवि ने उपर्युक्त चित्र में लज्जाशील नायिका के मुख-सौन्दर्य का अंकन सुन्दर अप्रस्तुतों के माध्यम से किया है। पंत जी के आरंभिक चित्रों में सुकुमारता, रंगीनी तथा सूक्ष्मता का सौन्दर्य अपार है। अपनी कल्पना के बल पर कवि ने विश्व में प्राप्त सौन्दर्य का चयन कर एक स्थान पर रख दिया है। कविवर पंत ने ग्राम्या में अपनी कल्पना को एक यथार्थवादी धरातल प्रदान किया है। उन्होंने "ग्राम युवती" के बाह्य-सौन्दर्य को उसकी शृंगारी चेष्टाओं के साथ अत्यन्त मांसल रूप में अंकित किया है—

"उन्मद यौवन से उभर, घटा सी नय असाढ़ सी सुन्दर,
अति श्याम वरण, श्लथ मंद चरण
इठलाती आती ग्राम युवति, वह गजगति सर्प डगर पर।
सरकाती पट, खिसकाती लट, शरमाती झट,
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।
हँसती खल खल अवला चंचल, ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल,
भर फेनोज्वल दशनों से अधरों के तट।"[२]

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री, नायनि सुब्बाराव, शिवशंकर शास्त्री तथा विश्वनाथन सत्यनारायण के काव्य में रूप-सौन्दर्य का विधान सुन्दर रूप से हुआ है। शिवशंकर शास्त्री ने अपनी "हृदयेश्वरी" की नायिका के रूप-सौन्दर्य को इस प्रकार अंकित किया है—

"अर्धोन्मिलित कर लोचन औ,'
वदन-कमल लज्जा से नत कर
कोमल चंचल स्वर्ण-लता-सी,
तुम चली सौध के भीतर।"[३]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रंथि"। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३८—३९।
२. सुमित्रानन्दन पंत : आधुनिक कवि—२। सातवाँ संस्करण। पृ० ८७।
३. "कन्नुलरमोड़्चि आनन कमल मल्ल।
रम्यमुगवयालिच लज्जाभिराम गतिनि।
ललित जंगम कांचन लतिक रीति।
हर्म्य भागम्मु लोनिकि नरिगिजाधु।"
—शिवशंकर शास्त्री—हृदयेश्वरी : पृ० १०।

इस चित्र में कवि ने नायिका को अधखुली आँखों के साथ अपने मुख को नमित करते हुये देखा है। इस चित्र में माधुर्य और लज्जा के साथ कान्ति तथा दीप्ति का भी संचार हुआ है। परन्तु यह कहना ही पड़ता है कि तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में हिन्दी की अपेक्षा रूप-सौन्दर्य का चित्रण कम ही हुआ है।

(अ) छाया-चित्र :—कहीं-कहीं तो रेखाओं के द्वारा ही रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया जाता है तो कहीं-कहीं छाया और प्रकाश की कला द्वारा आकृति का अस्पष्ट किन्तु भावव्यंजक चित्रों की योजना की जाती है। यह दूसरे प्रकार का चित्रण छाया-चित्र कहलाता है। यह सभी अंगों को उभार कर दिखाने वाला चित्र नहीं होता। परन्तु प्रभावान्विति की दृष्टि से इसका महत्व संश्लिष्ट चित्रों से किसी प्रकार कम नहीं होता। प्रसाद ने "कामायनी" में श्रद्धा का छाया-चित्र इसी प्रकार अंकित किया है—

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया, उन्मुक्त;
× × × ×
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
आह वह मुख, पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रविमंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।
घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस-अवलम्बित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।"[1]

इसमें श्रद्धा की आकृति का छाया चित्र अंकित किया गया है। सिर पर काले घुँघराले बाल चन्द्रमा को घेर कर बिखरे हुये काले बादलों के समान हैं। काया लंबी है, मुख गोरा है तथा कुछ अधखुले अंग भी दीप्तिमान हैं जैसे बादलों के बन में बिजली का फूल खिला हो। इस चित्र में लम्बाई, मोटाई तथा कुछ अंगों के पतलेपन का संकेत है। मुख्यतः दो ही रंगों से चित्र तैयार किया गया काला और सफेद या अरुणाई लिये हुये सफेद रंग। इस प्रकार यह सुन्दर छाया चित्र रहस्य और कुतूहल उत्पन्न करके दर्शक को प्रभावित करता है। काले रंग से छाया तथा उज्ज्वल रंग से प्रकाश का चित्रण हुआ है।

प्रकृति के छाया-चित्र भी हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अधिकतर मिलते हैं। सन्ध्या, रात्रि और उषा के चित्र इसी प्रकार के हैं। पंत जी की "नौका-विहार" नामक कविता में ऐसे छाया-चित्रों की योजना हुई है। उदाहरणार्थ दो चित्रों को प्रस्तुत किया जा सकता है—

---

१. जयशंकर प्रसाद : कामायनी (श्रद्धा सर्ग)। पृ० ४२—४३।

"निश्चल जल के शुचि दर्पण पर,
विम्बित हो रजत पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर"[१]

"अति दूर क्षितिज पर विटप माल,
लगती भ्रू रेखा सी अराल
अपलक नभ नील नयन विशाल ।"[२]

निश्चल जल रूपी दर्पण में बिम्बित होने वाले रजत पुलिनों का दुहरे ऊँचे लगना तथा दूर क्षितिज पर विटपों की माला अपलक नील नयन रूपी आकाश की भ्रू-रेखा के समान लगना आदि छाया-चित्र मन को आकर्षित कर लेते हैं ।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में छाया-चित्रों का आधिक्य नहीं है । फिर भी कुछ चित्रों में काला तथा सफेद रंगों का मिश्रण हुआ है । कृष्णशास्त्री रजनी के छाया-चित्र को इस प्रकार अंकित करते हैं—

"काजल से साड़ी से कर शृंगार
पंखें धारण कर आती है रजनी
जिस के तिमिरांचल के झोंके से
उडुमणि जो विखर गयी है ।
वही विषादमयी द्युतियाँ टपकाती हैं ।"[३]

पंखों के साथ काली साड़ी को पहन कर आनेवाली रजनी के अंचल के झोंके से बिखरने वाले तारे विषादमयी द्युतियों को फैलाते हैं । इस चित्र में कवि की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि द्रष्टव्य है ।

(आ) संश्लिष्ट चित्रण :— पूर्ण रूप से चित्र का आकलन कराने के लिये चित्र को संश्लिष्ट बनाना अत्यावश्यक है । संश्लिष्ट चित्रण में कवि चित्र को उस के पूर्ण रूप में आवश्यक चित्र-फलक पर अंकित करता है । संश्लिष्ट चित्रण से केवल चित्र के बाह्य रूप तथा उसके अवयवों का ही प्रस्फुटन नहीं होता अपितु भाव के

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : "नौका बिहार" । पल्लविनी । तृ० सं० । पृ० १८५ ।
२. वही । पृ० १८६ ।
३. "रेक्कलंदालिच परतेंचु रेलतांगि
कारु कादुक चीर सिंगार मोदव
चीकटि चेरंगु विसरुन जेदरि योक्क
युड्डुमणि विषादपूरित द्युतुलु राल्चु;"
—कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु —पृ० ६१ ।

प्रत्यक्षीकरण का भी अवसर प्राप्त होता है। रेखा-चित्र, खण्डचित्र, तथा छाया-चित्र में यह प्रभाव नहीं होता जो संश्लिष्ट चित्रों में होता है। हिन्दी के कवियों में प्रसाद, पंत, निराला के काव्य में असंख्य संश्लिष्ट चित्र उपलब्ध होते हैं। इन कवियों के संश्लिष्ट चित्रों में सामंजस्य, सौष्ठव, संतुलन पाया जाता है। क्रमबद्धता तथा अखण्डता इन चित्रों में दिखाई पड़ती है। कविवर पंत ने प्रकृति का एक संश्लिष्ट चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश;
पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार;
जिस के चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल।"[१]

उपर्युक्त चित्र में कविवर पंत ने वर्षा-ऋतु में पर्वत-प्रदेश का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है। संश्लिष्ट चित्रण कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिणाम है। कभी-कभी कुशल कवि छोटे-से चित्र-फलक पर अनेक वस्तुओं को अत्यन्त बारीक तूलिका से प्रस्तुत करता है। ऐसे चित्र पूर्ण और अखण्ड होते हैं। पंत की "नौका बिहार" "सन्ध्या तारा" आदि ऐसी ही कवितायें हैं—

"नीरव सन्ध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।
खग-कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजंग सा जिह्म क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर
सन्ध्या प्रशान्ति को कर गम्भीर।"[२]

इस संश्लिष्ट-चित्र में सन्ध्या काल की नीरवता, धूमिलता, झींगुर की झनकार आदि का सुन्दर अंकन हुआ है। इस तरह हिन्दी के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी ऐसे चित्र उपलब्ध होते हैं।

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : उच्छ्वास। पल्लविनी। तृतीय संस्करण : पृ० ६५।
२. सुमित्रानन्दन पंत : सन्ध्या तारा। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १८२।

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में संश्लिष्ट चित्रों का विधान हिन्दी की तुलना में अत्यन्त दुर्बल है। कविवर श्रीरंगं श्रीनिवास राव ने "एक रात" शीर्षक कविता में आकाश का एक संश्लिष्ट चित्र इस प्रकार अंकित किया है—

"धूम-सी सारे गगन में फैल कर
बहुल-पंचमी की ज्योत्स्ना मुझे डराती है।
सारे नभ के मरुथल में, हाय
इसी रात बालू की आँधी फैल गयी है।
वायु-तरंगों में अदृश्य भूत,
तैर रहे भू नभ के बीच :
अम्बर-मरुथल में टाँगें टूटी
एकाकी ऊँट सदृश हैं चाँद।"[1]

इस संश्लिष्ट चित्र में बहुल-पंचमी की ज्योत्स्ना का धूम की भाँति संपूर्ण आकाश में छा जाना, आकाश में बालू की आँधी का फैल जाना, भू-नभ के बीच मेघ रूपी अस्पष्ट एवं अदृश्य भूतों का तैरना, अम्बर के मरुस्थल में टाँगें टूटे हुये एकाकी ऊँट के समान चंद्रमा का दिखाई देना आदि का सुन्दर विधान हुआ है। परन्तु यह संश्लिष्ट चित्र आकाश का यथार्थ चित्र न होकर कवि की कल्पना द्वारा चित्रित है।

(ख) भाव-चित्रण का सौन्दर्य (बिम्ब-विधान) :—रूप-चित्रों के सहारे भी भावनाओं का चित्रण किया जाता है, किन्तु कहीं-कहीं भावनाओं को मूर्तरूप में भी चित्रित किया जाता है। चित्र मूलतः दो प्रकार के होते हैं। प्रथम कोटि का चित्र वह है जिसे कवि अपनी आँखों से देखकर उसका यथावत् चित्रण करता है। इसमें केवल कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय हमें प्राप्त होता है। इसका विवेचन ऊपर हो चुका है। दूसरे कोटि का चित्र वह है जिसे अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा खड़ा करता है। कल्पनाशील कवि ऐसे चित्रों को अपने भावानुकूल स्वरूप देता है।

---

१. गंगनमंता निंडि पोगलागु क्रम्मि
बहुल पंचम ज्योत्स्न भयपेट्टु नन्नु।
आकासपु टेडारि अंतटा अकट
ई रेयि रेगिंदि इसुक तुपानु।
गालिलो कनरानि गड्डुसु दय्यालु
भू दिबम्मुल मध्य ईदुतुन्नायि
आकाशपु टेडारिलो, काल्लुतेगिन
ओंटरि ओंटेला गुंदि जाबिल्लि।"
—श्रीरंगं श्रीनिवास राव "श्री" "श्री"। वैतालिकुलु। (सं)। पृ०२०६।

यह चित्र उसके मानस-पटल में अपना आकार ग्रहण करता है। ऐसे चित्रों का प्रत्यक्षीकरण भी केवल कल्पना की आँखों द्वारा ही होता है। ऐसे चित्रों का आकलन करने के लिये पाठक को कवि की भाँति कल्पनाशील होना पड़ता है। काव्य में चित्र को भाव-चित्र या बिम्ब (image) कहा जाता है। काव्य के अंतर्गत सामान्य रूप से दो प्रकार के बिम्बों का विधान होता है—

१. विचारात्मक बिम्ब और २. प्रभावोत्पादक बिम्ब। जीवन और गति विचारात्मक बिम्ब (Image of thought) के आधारभूत तत्व हैं[1], तो निश्चलता एवं चित्रात्मकता प्रभावोत्पादक बिम्ब (Image of impression) की मुख्य विशेषतायें हैं।[2] उपर्युक्त दोनों के प्रकार के बिम्बों का विधान हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में हुआ है।

हिन्दी के कवियों में विचारात्मक बिम्ब प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा के काव्य में अधिक पाये जाते हैं। कविवर पंत ने परिवर्तन रूपी वासुकि के विचारात्मक बिम्ब को इस प्रकार अंकित किया है—

"अहे वासुकि सहस्र फण:
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षः स्थल पर
शतशत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे है घनाकार जगती का अम्बर।"[3]

इस बिम्ब में परिवर्तन रूपी सहस्र फनी वासुकि का अपने लक्ष तथा अलक्षित चरण चिह्नों को बिम्ब के विक्षत् वक्षःस्थल पर छोड़ना तथा शत-शत मुखों के द्वारा जहरीले फेन को उगलते हुये, अपने भयंकर स्फीत फूत्कारों के द्वारा जगती के आकाश को घनाकार घुमाना आदि बिम्ब में गति तथा जीवन का समावेश करते हैं। ऐसे बिम्बों की योजना पंत के काव्य में सर्वत्र हुई है।

---

1. "Life and motion are the soul of the image of thought." —R. A. Foakes : Poetic imagery, in 'The Romantic Assertion. P. 33."
2. "The image of impression works indirectly by suggestion or evocation, and its immediate appeal lies often in a word-picture which we are asked to contemplate."—R. A. Foakes: Poetic imagery, in 'The Romantic Assertion. P. 43.'
३. सुमित्रानन्दन पंत : परिवर्तन। तृतीय संस्करण पल्लविनी। पृ० ११६-१२०।

तेलुगु के कवियों के काव्य में भी विचारात्मक बिम्बों की कमी नहीं है कविवर कृष्णशास्त्री कुछ ऐसे बिम्बों की योजना इस प्रकार करते हैं—

"नभ के नील सरोवर में शशि
राजहंस-सा करता विहार
वायु-वीचियाँ पत्रों में या
छिप गयीं नदी की लहरों में;

मधुर गान औ, नाट्य छोड़ कर
खो गयी शैवलिनि निद्रा में,
ईश्वर के कर-जलज-युग्म में
विश्राम लिया अखिल विश्व ने।"[1]

यह बिम्ब अनेक लघु विचारात्मक बिम्बों का समुदाय है। नभ के नील सरोवर में चन्द्रमा का राजहँस की भाँति विहार करना, वायु-वीचियों का पत्रों या नदी की लहरों में छिप जाना, मधुर गान तथा नाट्य को छोड़कर शैवलिनी का निद्रा में खो जाना, ईश्वर के जलज-हस्तों में संपूर्ण विश्व का विश्राम लेना आदि लघु किन्तु आकर्षक बिम्बों ने अतीव सौन्दर्य की सृष्टि की है।

हिन्दी तथा तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रभावोत्पादक तथा संक्षिप्त बिम्बों का आधिक्य है। कविवर पंत का निम्नांकित प्रभावोत्पादक बिम्ब द्रष्टव्य है—

"नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि मुखधर
नीरव अनिमिष, एकाकिनि।"[2]

यह बिम्ब कल्पना-प्रसूत होते हुये भी अत्यन्त स्पष्ट, मांसल तथा प्रभावोत्पादक है। नील गगन रूपी शतदल पर वह शारद हासिनि चाँदनी अपने कोमल करतल पर चन्द्रमा रूपी मुख रखकर अकेली नीरव तथा निर्निमेष होकर बैठी हुई है। कभी-

---

१. नीलाभ्र सरसि लो निण्डु जाबिल्लि।
रायंचे वले बिहार मु सल्मु चुंडे
कम्म तेम्मेरलु शाखापत्र मुलनो
कल्लोलिनी तरंगमुलनो डागे;
नाट्यंबु मधुर गानंबुनु मानि।
गाटंपु निद्दुर गांचे शैवलिनि,
सर्वेश्वरुनि हस्त जलज युग्ममुन।
विश्व में हायिगा विश्रान्दि जेंदे।"
—श्री देबुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० २७।

२. सुमित्रानन्दन पन्त : चाँदनी। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १८८।

कभी पंतजी की कल्पना-शक्ति इतनी सशक्त तथा सान्द्र हो जाती है कि कवि एक या दो शब्दों में ही पूर्ण प्रभावोत्पादक बिम्ब को अत्यन्त बारीकी के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी "**बादल**" कविता में ऐसे बिम्बों की भरमार है—

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव
वारि वसन, वसुधा के मूल
× × ×
सलिल भस्म, मारुत के फूल।"

बादलों को सागर की धवल मुसकान के रूप में, जल के धूम के रूप में, गगन रूपी पथ की धूल के रूप में, वायु रूपी नदी के फेन के रूप में, उषा रूपी वृक्ष के रूप में पल्लवों के रूप में, जल के वस्त्र-परिधान के रूप में, वसुधा रूपी वृक्ष के मूल के रूप में, वायु के पुंजीभूत भस्म के रूप में तथा मारुत रूपी लता के फूलों के रूप में कवि ने बिम्ब-ग्रहण कराया है।

तेलुगु के कवियों में भी प्रभावोत्पादक बिम्ब पाये जाते हैं। परन्तु इन कवियों की कल्पना की अपेक्षा हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की कल्पना अत्यन्त सशक्त है। शिवशंकर शास्त्री के दो बिम्बों का उल्लेख किया जाय—

"आश्चर्य चकित करते मुझ को लगता है तेरा आनन
सरसी की लहरों पर डोलायमान नीरज समान ![1]

"जब खड़ी तू सखी-जन के बीच में
दीखता था नहीं तेरा मुख-कमल
किसलयों की ओट में स्थित पुष्प-सा।"[2]

कवि अपनी प्रेयसी के मुख को सरोवर की लहरों में डोलायमान कमल के रूप में तथा सखियों के बीच में अस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने वाले मुख को किसलयों की

---

१. "अब्धजमु कोल्पि तोचे नीयाननम्मु,
सरसिपै देलियाडेडि जलज मटलु"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री। हृदयेश्वरी। पृ० ८।

२. "नीवु स्वजनांतरितवुगा निलिचि युंड
कान रादाये नीमुख कमल मय्यो
पर्णमुल माटु बडिन पुष्पम्मु बोले।"
—तल्लावझ्झुल शिवशंकर शास्त्री। "हृदयेश्वरी"। पृ० १२—१३।

ओट में छिपे हुये पुष्प के रूप में देखता है। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में भाव-चित्रण का सौन्दर्य अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ।

(ग) **कर्म-सौन्दर्य का चित्रण :—** कर्म सौन्दर्य का चित्रण प्रबन्ध-काव्यों में ही अधिकतर पाया जाता है। प्रगीतों में भी उसका चित्रण कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। आदर्श की ओर अटूट विश्वास के साथ बढ़ना तथा त्यागशीलता का कर्म के द्वारा प्रकट करना आदि के चित्रण में सौन्दर्य का समावेश हो जाता है, **"कामायनी"** में श्रद्धा एवं इडा का त्याग, **"राम की शक्ति पूजा"** में राम की कर्तव्य-परायणता और तेलुगु के काव्यों में **"कन्यका"**, **'पूर्णम्मा"**, **"स्नेहलता देवी"** तथा **"नलजारम्मा"** के महान त्याग में कर्म-सौन्दर्य का महान चित्रण हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में चित्रण-कला को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। किन्तु कलात्मक चित्रण में हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की अपेक्षा अत्यधिक कलात्मकता दिखाई है।

५. छन्द, लय, और संगीत :—

किसी काव्य के कला-पक्ष के विवेचन में उस काव्य के छन्द, लय तथा संगीत आदि अभिव्यक्ति के वाह्य उपकरणों का विवेचन आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है।

भाषा की अपनी एक स्वाभाविक लय होती है और कविता इस लय में कुछ ऐसी विशेषता उत्पन्न करती है जिससे वह गद्य की भाषा से भिन्न हो जाती है। प्रधान रूप से कविता की यह विशेषता इसी कारण उत्पन्न होती है कि वह सामूहिक भावनाओं की वैयक्तिक तथा उत्कृष्ट अभिव्यक्ति होती है। कवि अपनी भावनाओं को एक विशिष्ट पद्धति के द्वारा प्रकट करता है और पाठक भी उसी पद्धति के द्वारा उसकी भावनाओं को उसी रूप में ग्रहण करता है। इसी प्रक्रिया को संवेदनशीलता की प्रेषणीयता कहते हैं जिसमें पाठक या सामाजिक अपने "अहं" की भावना को सामूहिक भावनाओं में विलीन कर व्यक्तिगत धरातल से ऊपर उठ जाता है। इस दशा तक पहुँचने के लिए कविता का एक महान उपकरण लय है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रयुक्त छन्द-विधान का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है—१. लय और छन्द का सामान्य विवेचन, २. छन्दों के प्रकार, लय-तत्व और संगीत।

(क) **लय और छन्द का सामान्य विवेचन :—** लय और उसके विशिष्ट तथा मर्यादित रूप छन्द का आधार आवृत्ति और आशान्विति है। कविता में ही नहीं,

गद्य में भी एक लय होती है जो उच्चारण तथा व्याकरण के नियमों से अनुशासित होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार गद्य का छन्द परिवर्तनशील, विच्छिन्न अन्त-विरामी तथा अनियमित है। विभिन्न वाक्यों में समयावधान भिन्न होती है और वाक्य असमान होते हैं, वस्तुतः इसमें शिथिल छन्द का आभास मात्र होता है।[1] भाषा की लय को प्रत्येक व्यक्ति बाल्यावस्था से ही संस्कार रूप में ग्रहण करता है। इसी तरह प्रत्येक भाषा की अपनी लय, अपना उच्चारण तथा अपने स्वराघात होते हैं। वास्तव में लय भाषा के शरीर की नाड़ी की गति के समान है जो शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में बदलती रहती है। लय, छन्द और तुक की सीमायें गद्य के लिए बन्धन हैं। कविता की लय और उसके छन्द बुद्धि की अपेक्षा भावना की तीव्रता से तथा वर्णन की अपेक्षा चित्रण से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। छन्द के महत्व को सभी विद्वानों ने अत्यन्त प्राचीन काल में ही स्वीकार किया है। आदि कवि वाल्मीकि के मुख से वाणी छन्द के रूप में ही प्रकट हुई थी। गहन रूप से सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य को प्रकृति ने ही छन्द का दान दिया है। निर्झरों का निनाद, पत्तों का मर्मर-संगीत, पवन की सनसन, बादलों की रिमझिम, पक्षियों का गायन आदि मनुष्य के लय-संस्कार बनाने में अवश्य सहायक हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भाववेग ने आदिम मानवों को लयच्छन्द प्रदान किया होगा, जिसे उन्होंने वाग्विकास तथा कला-प्रियता के साथ-साथ अनुशासन करके साहित्यिक छन्द का रूप प्रदान किया है। कविवर पन्त छन्द को मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति मानते हुए लिखते हैं— "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्ण रूप हमारे अन्तर प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है।"[2]

छन्द-शास्त्र पद्य-रचना का व्याकरण है। यह शास्त्र गण, मात्रा, वर्ण लय योजना पर विचार कर छन्द को पुष्ट करता है। छन्द शास्त्र के ज्ञान के विना भी छन्द-रमना सरल है, पर विवेचनात्मक ज्ञान के अभाव में उसके गुण-दोषों पर प्रकाश डाला नहीं जा सकता।

---

1. "In prose, too, rhythm is felt to be intermitted, not sustained and regularly continuous as in verse. It is changing in character, not homogeneous, the time interval vary in........different sentences, they are more than approximately equal in fact only in a loose sense rhythmical, where in poetry rhythm is systematic"

—Egerton Smith : The Principles of English metre, P. 19.

२. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का प्रवेश। पल्लव। पृ० २१।

छन्द का उद्भव अःखन्ड रूप में होता है और उसका ग्रहण भी श्रोता अखण्ड रूप में ही करता है। अतः छन्द का सम्पूर्ण वैभव, उसकी स्वर-लहरी तथा गद्य पर-निवृत्ति के प्रभाव को देखने के लिए उसे सुनना चाहिए या गाना चाहिए। जब छन्द स्वर तथा भाव के सहारे मन के द्वारा गृहीत होता है तभी तक उसका छन्दसत्व है, मस्तिष्क या बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने में उसका रमणीय रूप समाप्त हो जाता है। छन्द का स्वरूप अन्तःकरण से सम्बन्वित है। कवि के मानस में सहज रूप से स्पन्दन चला करता है, जो भाव के जगने पर स्वतः आवेग का रूप धारण कर लेता है।

लय और छन्द का सम्बन्ध यह है कि भाषा की लय जब काल एवं स्वराघात के साम्य और अन्विति द्वारा नियन्त्रित होती है तो उसी का नाम छन्द है। छन्द का अर्थ ही है बन्धन। भाषा में शब्द तो यों भी स्वच्छन्द नहीं होते, अर्थ के द्वारा नियंत्रित होते हैं। कविता में तो उन्हें अपनी स्वतंत्र लय को कविता के समन्वित लय में डुबो देना पड़ता है। इन शब्दों को स्वर और भाव की मैत्री में पूर्ण रूप से योग देना पड़ता है। अतः कविता के शब्द बन्धन-ग्रस्त होते हैं। परन्तु इस बन्धन से ही संगीत की सृष्टि होती है जिसका आधार है स्वरमैत्री, आरोह-अवरोह आदि। कविता के अन्तर्गत निहित संगीत या लय की छन्द के भीतर ही पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति हो सकती है। इस सन्दर्भ में कविवर पन्त की धारणा दृष्टव्य है—

कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते,—जिसके बिना वह अपनी ही बन्धन-हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियंत्रित साँसें नियंत्रित हो जातीं, तालयुक्त हो जातीं, उसके स्वर में प्राणायाम, रोमों में स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध झंकारें एकवृत्त में बँध जातीं, उनमें पूर्णता आ जाती है।[१] पंत जी का कथन अत्यन्त युक्तिसंगत है। छन्द-बन्धन के अभाव में भाषा की लय अनियंत्रित होकर अपना प्रभाव खो देती है। कविता एक सामाजिक वस्तु होने के कारण उसमें छन्द-विधान का होना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में छन्द कवि एवं पाठक दोनों के मन में रहता है। लय के भीतर गति, यति, ताल, आरोह, अवरोह के नियमों द्वारा छन्द का विधान होता है। परन्तु उसका प्रभाव श्रोता अपने मन के संस्कारों में पड़े हुए छांदिक सांचे के अनुसार ग्रहण करता है।

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : प्रवेश। पल्लव। पृ० २४।

(ख) छन्दों के प्रकार—लय और छन्द की दृष्टि से छन्दों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. वर्णिक छन्द, १. मात्रिक छन्द तथा ४. मुक्त छन्द।

इन तीन प्रकार के छन्दों का प्रयोग हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में मिलता है। उनका विवेचन किया जाय।

(अ) वर्णिक छन्द—गायत्री आदि वैदिक छन्दों के क्रमानुसार लघु-गुरु-आयोजन को वृत्त कहते हैं। यदि छन्द के चरणों में क्रम और वर्ण-संख्या एक समान हो तो उसे वर्णिक वृत्त कहते हैं। वर्ण वृत्त के तीन भेद हैं—१. सम, १. अर्द्धसम और ३. विषम।

वर्ण-वृत्तों की अक्षर-गणना लघु-गुरु-वर्णों के आधार पर होती है। लघु और गुरु मात्राओं के दो भेद हैं। किसी अक्षर के उच्चारण में व्यतीत होने वाले समय से उस अक्षर की मात्रा का बोध होता है। दीर्घ मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में लघु मात्रा के अक्षर के उच्चारण की अपेक्षा दुगुना समय लगता है। वर्ण-वृत्तों की अधिकता संस्कृत में दिखाई पड़ती है। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के छन्द-विधान पर संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रभाव रहा। परन्तु हिन्दी पर संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का अधिक प्रभाव नहीं रहा। तेलुगु के सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य में वर्ण-वृत्तों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि मूल तेलुगु के छन्द एक तरह से लुप्त भी हो गए थे। तेलुगु भाषा की प्रवृत्ति ही हिन्दी भाषा की प्रवृत्ति से भिन्न है। संस्कृत तथा तेलुगु भाषा के शब्द स्वरान्त हैं तो हिन्दी भाषा के शब्द व्यंजनांत हैं। ठीक अर्थ में संस्कृत तथा तेलुगु की भाँति हिन्दी के शब्द जैसे लिखे जाते वैसे पढ़े नहीं जाते। खड़ी बोली के काव्य-प्रांगण में प्रवेश करने के पश्चात सभी अक्षरों के ठीक उच्चारण की ओर आग्रह बढ़ा। इतना होने पर भी खड़ी-बोली के सभी शब्दों का उच्चारण व्यजनांत ही है, जैसे "राम" लिखकर "राम्" पढ़ा जाता है। हिन्दी की अपेक्षा तेलुगु-भाषा में संस्कृत के समासों को यथावत् ग्रहण करने की तथा उन्हें पचाने की अद्भुत क्षमता है। हिन्दी तो अपनी प्रवृत्ति के अनुसार संस्कृत के समासों को तोड़-मरोड़ कर उसके शब्दों को अपने रंग में रंग कर ग्रहण करती है। शायद इसी कारण हिन्दी में वर्ण-वृत्तों का अभाव (प्रियप्रवास को छोड़कर) स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में विश्वनाथ सत्यनारायण, रायप्रोलु सुब्बाराव, दुव्वूरि रामिरेड्डी, कृष्णशास्त्री एवं नायनि सुब्बाराव आदि कवियों ने वर्ण-वृत्तों का कहीं-कहीं प्रयोग किया है। परन्तु हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वर्ण वृत्तों का प्रयोग नहीं किया है। वास्तव में हिन्दी का उच्चारण-संगीत, संस्कृत के उच्चारण-संगीत से भिन्न है। पन्त जी के अनुसार भौगोलिक स्थिति, शीत, ताप जलवायु, सभ्यता आदि के भेद के कारण संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं के उच्चारण संगीत में भी विभिन्नता आ जाती है। छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के

साथ घनिष्ट सम्बन्ध है।[1] पन्त जी की यह धारणा अत्यन्त युक्ति-संगत है। हिन्दी भाषा की सहजात प्रवृत्ति में संस्कृत के विशालकाय समास समाविष्ट नहीं किए जा सकते। यद्यपि हरिऔध जी ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगाकर प्रिय-प्रवास में वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया तथापि उन वर्ण-वृत्तों के सौन्दर्य को पाने के लिए हिन्दी पाठक को हिन्दी के स्वाभाविक व्यंजनांत उच्चारण को त्याग कर पाठ करना पड़ेगा। इसी कारण प्रियप्रवास के छन्दों के माधुर्य को एक संस्कृत या तेलुगु का विद्यार्थी अधिक सरलता के साथ पा सकता है।

वर्ण-वृत्तों में एक ही प्रकार के गुणों को बार-बार दुहराने के कारण एकरसता आ जाती है। इसके अतिरिक्त छन्द की पूर्ति के लिए भर्ती के शब्दों का भी उपयोग करना पड़ता है। अतः हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में वर्ण-वृत्तों का प्रयोग नहीं हुआ तो तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में उनका प्रयोग मिलता है।

(आ) मात्रिक छन्द :—मात्रिक छन्दों में संगीत का गुण अधिक मात्रा में वर्तमान रहता है। वास्तव में मात्रिक छन्दों का विकास लोक गीतों के माध्यम से हुआ है। लोक-गीतों में जन-समुदाय की नैसर्गिक भावनाओं की लयात्मक अभिव्यक्ति होती है। इन्हीं धुनों के आधार पर संस्कृत के महाकवि जयदेव ने अपने गीत-गोविंद को मात्रिक छन्दों में ही लिखा। हिन्दी और तेलुगु के काव्य-साहित्यों के लिए भी मात्रिक छन्द कोई नवीन छन्द नहीं है। मात्रिक छन्दों का प्रयोग हिन्दी के प्राचीन महाकवियों ने अत्याधिक मात्रा में किया। वास्तव में हिन्दी भाषा की लय, उसकी आत्मा मात्रिक छन्दों में ही अपने अस्तित्व को बनाये रख सकती है। तेलुगु के अधिकांश प्राचीन कवियों ने यद्यपि संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को ही अपनाया, तथापि वैष्णव कवियों तथा शैव कवियों ने जन-जीवन के साथ सम्पर्क रखकर मात्रिक छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया। उस समय दरबार या राजा के आश्रय में रहने वाले कवि कुछ पण्डितों के लिए वर्ण-वृत्तों में अपना संस्कृत-पांडित्य दिखाते थे। परन्तु भक्त-कवियों ने अधिकतर जनवादी होने के कारण मात्रिक छन्दों को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

आधुनिक काल में आकर हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मात्रिक छन्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करके उस जनवादी परम्परा को और भी आगे की ओर अग्रसर किया। आधुनिक युग में हिन्दी तथा तेलुगु का काव्य मात्रिक छन्दों से जितने समृद्ध और सम्पन्न हो गए हैं, उतने पूर्ववर्ती कालों में कभी नहीं रहे। अनेक नवीन मात्रिक छन्दों का निर्माण भी इन कवियों ने किया है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों का मात्राओं के क्रम से

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव का "प्रवेश" पल्लव। पृ० १७।

आयोजित कर अध्ययन करना समीचीन होगा। हिन्दी और तेलुगु के उद्धरणों के आधार पर मात्रिक छन्दों की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

वस्तुतः मात्रा का सम्बन्ध ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण से है। सामान्यतः मनुष्य बिना विशेष परिश्रम के दो ही प्रकार के उच्चारणों का अभ्यासी रहा है। उच्चारण के इन दो भेदों ने ही छन्द की लय के निर्माण में सहयोग दिया है। भारोपीय और द्रविड़ परिवार की भाषाओं के छन्दों में यही दोनों मान-दण्ड (लघु-दीर्घ) मूलतः कार्य कर रहे हैं। इन्हीं मौलिक उच्चारण-पद्धतियों के आधार पर विभिन्न भाषाओं का छन्द-विधान हुआ है। जनपदों से और लोक-गीतों के माध्यम से अपने विकास को प्राप्त करने वाले मात्रिक छन्दों ने आधुनिक काल में आकर एक निश्चित रूप-रेखा को प्राप्त कर लिया। उन मात्रिक छन्दों में सम मात्रामूलक प्रवाह ही स्वस्थ और प्रौढ़ रूप से आगे बढ़ा। विश्व का कोई भी छन्द ध्वनि-मैत्री से रहित नहीं हो सकता। मात्रामैत्री या मात्रा-लय का यह स्वाभाविक लक्षण है कि वह सम संख्या की शब्द-मात्राओं के योग से प्रवाहित होता है। विषम मात्रिक शब्द में विषम मात्रिक शब्द जोड़ने से समप्रवाह आ जाता है—दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

२ ४ २२ ४ २ २ ६
१. तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित—२४ मात्राएँ।

३ ५ ३ ५ ३ ५
२. लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर—२४ मात्राएँ।

प्रथम पंक्ति सम-संख्या की मात्राओं के शब्दों से बनी है तो दूसरी पंक्ति विषम मात्रिक शब्दों के जोड़ने से बनी। परन्तु दोनों पंक्तियों में सम-प्रवाह आ गया है। अतः मात्रिक छन्दों की यह विशेषता है कि जब तक मात्रिक समता चलती है तब तक लय तथा प्रवाह अपने आप चलते हैं। यदि छन्द के बीच में विषमता आयेगी तो छन्द अवश्यमेव यति ग्रहण करेगा, क्योंकि विषमता के कारण प्रवाह अखन्ड नहीं रह सकता, जैसा कि दोहा आदि छन्दों में होता है।

हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों के मात्रिक छन्दों पर विचार करने के पूर्व मात्रिक छन्द के दो महत्वपूर्ण तत्वों का अनुशीलन करना आवश्यक है। वे हैं यति और अन्त्यानुप्रास या तुक।

छन्द की लय में यति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यति के अन्तर से छन्द की लय में एक आमूल नवीनता आ उपस्थित होती है। जिह्वा के अभीष्ट विश्राम

को यति कहते हैं। विच्छेद या विराम इसके अन्य पर्याय हैं। यति दो प्रकार की होती हैं--(१) पूर्णक यति, (२) लयात्मक यति। चरण के अन्त में पूर्णक यति होती है और मध्य में लयात्मक यति। लयात्मक यति के द्वारा चरण में लय की रक्षा होती है और छन्द सुगठित होता है। पूर्णक यति तो सभी छन्दों में होती है, परन्तु लयात्मक यति के विभिन्न छन्दों में विभिन्न नियम होते हैं।

हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी काव्य में पूर्ण यति तथा लयात्मक यति का पूर्ण रूप से प्रयोग मिलता है। दोनों भाषाओं के कवियों को पूर्णक यति मान्य है, क्योंकि बिना इस यति के चरण पूर्ण नहीं होता। दोनों भाषाओं के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है—

"प्रथम रश्मि का/आना रंगिणि/तूने कैसे पहचाना/"

यहाँ पूर्णक यति अंत में स्पष्ट दीखता है।

"ऍंत कालमु/गडचे नीकड/
निंत युल्ला/सम्मु कनुगोनि/
नेत्र पर्व/वय्ये गद नी/नेटि रुपमुनन/"

इस उदाहरण के तीसरे चरण में पूर्णक यति है। उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में लयात्मक यति के स्थान भी द्रष्टव्य हैं। पदान्तर प्रवाही अतुकान्त भावछन्दों में अर्थ और भाव के अनुकूल अर्ध-विराम और विराम का प्रयोग भी होता है। मुक्तक छन्द में भी पूर्णक यति का प्रयोग मिलता है। हिन्दी और तेलुगु के काव्य के चरणों में अन्तर्यति का भी विधान हुआ है। उदाहरणार्थ इन दोनों उद्धरणों को लिया जाय--

"नीचे जल था/ऊपर हिम था/
एक तरल था/एक सघन/" —प्रसाद।

"अरमोगिड्चन/कन्नुगवतो/
चेदरि याडेडि/मुगुरुलतो/" —गुरजाड़ अप्पाराव।

हिन्दी और तेलुगु के उपर्युक्त उदाहरणों में सात मात्राओं के बाद यति का होना द्रष्टव्य है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अन्तर्यति को भी विशेष महत्व प्राप्त हुआ है—

"फिर वही गद्दिवग्न चिन्तन/
फिर वही पृच्छा चिरन्तन/
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है ?/"

—"उर्वशी : दिनकर।

"नीवु तोलि प्रोद्दु नुनुमंचु तीव सोनवु/
नीवु वर्षा शंरत्तुल निविड संग
ममुन बोडंमिन सन्ध्याकुमारि/वीवु"–ऊर्वशि : कृष्णशास्त्री ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में अर्थ-यति का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

अन्त्यानुप्रास या तुक को काव्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। चरण के अन्त में निश्चित क्रम से स्वरव्यंजनमूलक ध्वनि-समूह के साम्य-संयोग को अन्त्यानुप्रास या तुक कहते हैं। अनुप्रास का अर्थ है बारम्बार वर्णों की आवृत्ति। चरणान्त में प्रयुक्त होने के कारण इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं। हिन्दी कविता के लिए तुक प्राण सदृश है। इस भाषा के संगीत में तुक को अत्यन्त प्राधान्य प्राप्त हुआ है। तुक एक तरह से हिन्दी कविता के चरणों का प्राण है। उसकी प्रकृति में ही तुक समा गया है। परन्तु संस्कृत तथा तेलुगु के काव्य में तुक के लिए अधिक स्थान नहीं है। संस्कृत तथा तेलुगु की लय माधुरी समास-प्रधान पंक्तियों में अपने आप प्रकट होती है। तुक या अन्त्यानुप्रास का विधान तेलुगु कविता में प्रयत्न पूर्वक नहीं होता। फिर भी कहीं-कहीं इसकी छटा भी दिखाई पड़ती है। तेलुगु के आधुनिकतम कवियों में अन्त्यानुप्रास का मोह अधिक दिखाई दे रहा है। हिन्दी और तेलुगु के मुक्त छन्दों में अन्त्यानुप्रास की योजना कहीं-कहीं हुई है। उदाहरण देकर स्पष्ट किया जाय—

"पाटलीपुत्र का बौद्ध-श्री का अस्तरूप,
वह हुई और भू, हुए जनों के और भूप,
वह नव रत्नों की प्रभा-सभा के सुदृढ़ स्तम्भ,
वह प्रतिभा से दिङ्नाग-दलन,"[1]

"कविता । ओ कविता :
नायुवकांशल नवपेशल सुमगीतावरणंलो,
निनु नेनोक सुमुहुर्तंलो
अति सुन्दर सुस्यन्दन मदुन............"[2]

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों में अन्तरन्त्यानुप्रास का सुन्दर विधान हुआ है।

यति और अन्त्यानुप्रास के इस संक्षिप्त विवेचन के पश्चात हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त कुछ मात्रिक छन्दों पर प्रकाश डाला जाय।

---

१. निराला : सहस्राब्दि । अणिमा पृ० ३६ ।
२. श्रीरंगं श्रीनिवास राव : कविता : ओ कविता । महाप्रस्थान । पृ० ३१।

(१) १० मात्रायें :—दीप छन्द दस मात्राओं का है और इसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

विजन वन प्रान्त था,
प्रकृति मुख शान्त था।"—श्रीधर पाठक।

तेलुगु में अत्याधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवि नारायण रेड्डी ने दस मात्राओं के छन्द को भिन्न लय एवं यति के साथ इस प्रकार निभाया हैं—

श्री पर्व/ताग्रम्मु	१० मात्रायें
सिंहला/गतं बौद्ध	,,
भिक्खुवुल/विज्ञान	,,
पीठकम्मगुनाडु।	,,

पाँच मात्राओं के पश्चात् यति का होना द्रष्टव्य है।

(२) १२ मात्रायें :—तारक छन्द का प्रयोग पंत ने ग्राम्या में किया है और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवि अडवि बापिराजु ने भी अपने गीतों में प्रयोग किया है।

"जंगम जग-प्रांगण में	१२ मात्रायें
जीवन संघर्षण में	,,
नव युग परिवर्तन में"[1]	,,

"अरचि अरचि पिलुवलेनु	१२ मात्रायें
तरिचि तरिच वेदक लेनु	,,
परचि येगुरु कांक्षललो"[2]	,,

(३) १४ मात्रायें :—चौदह मात्राओं के मात्रिक छन्दों में मानव छन्द हिन्दी में प्रसिद्ध है जिसका प्रयोग प्रसाद जी ने "आँसू" काव्य में किया है। इस छन्द के चारों पदों में एक साथ तीन-तीन चौकल न पड़ें, वहाँ इस हाकलि छन्द को मानव कहेंगे—

"शशि मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।"

---

१. पंत : ग्राम्या। पृ० ६७।
२. बापिराजु : वैतालिकुलु। पृ० ७७।

जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये।"[1]

हाकलि छन्द भी १४ मात्राओं का ही है।

तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कवियों में गुरजाड़ अप्पाराव ने "**मुत्याल सुरमु**" नामक छन्द का निर्माण चौदह मात्राओं को आधार बनाकर किया। इस छन्द के चार—चरण होते हैं। प्रथम तीन चरणों में प्रत्येक चरण में ३, ४/३, ४ मात्रायें रहती हैं और तीन चरण एक ही लय में गतिमान होते हैं। सात मात्राओं के पश्चात् यति होती है। चौथा चरण छोटा होता है और उसका अंत गुरु के साथ होता है—

"मेच्च नंटा/वीवु, नीविक/ ७+७ मात्रायें
मेच्च कुंटे/मिंचि पोयेनु;/ „
कोय्य बोम्मले/मेच्चु कल्लकु/ „
कोमललुलु सौरेक्कुना ?"[2] १२ मात्रायें

हिन्दी में ए ऐ दो ही अक्षर हैं, परन्तु तेलुगु ए का लघु रूप भी है। अतः उपर्युक्त छन्द के तृतीय चरण में "ले" लघु ही है, गुरु नहीं। हिन्दी का मनोरमा छन्द भी ७+७ मात्राओं के आधार पर बना है—

"जो कहा रुक/रुक पवन ने ७+७ मात्रायें
जो सुना झुक/झुक गगन ने"[3] „

(४) २० मात्रायें :—हिन्दी में बीस मात्राओं के भुजंगप्रयात छन्द उपलब्ध होता हैं। प्राचीन, भुजंग प्रयात के गुरु स्थान में दो लघुओं का उपयोग होता है।

"घटा है न फूली समाती गगन में (५+५+५+५ मात्रायें)
लज्जा आज फूली समाती न वन में"[4] „

तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में कृष्णशास्त्री ने अपने एक गीत के लिये इस छन्द का प्रयोग किया है—

"पगडाल चिगुराकु तेरचाटु तेटिनै ५+५+५+५ मात्रायें
परुवंपु विरिबेंडे चिन्नारि सिग्गुनै"[5] „ „

---

१. प्रसाद, "आँसू"। पृ० १६।

२. गुरजाड़ अप्पाराव : मुत्याल सरालु। पृ० २।

३. महादेवी वर्मा : दीप-शिखा। पृ० १७।

४. स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, राखी की चुनौती :

५. कृष्णशास्त्री: श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु। पृ० ६।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु में भी मात्रिक छन्दों का प्रयोग मिलता है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में २० मात्राओं से बढ़कर लम्बे मात्रिक छन्दों का प्रयोग नहीं मिलता। परन्तु हिन्दी में तो इकतीस मात्राओं तक मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ छन्दों का उदाहरण प्रस्तुत किया जाय—

(१) "हम मारुत के मधुर झकोर" (८+४+।) चौपाई।
(२) "ग्रंथि हृदय की खोल रहा हूँ"—१६ मात्रायें। अरिल।
"जग मग जग मग, हम जग का मग—१६ मात्रायें चौपाई।
(३) "वह मधुर मधु/मास था जब/गंध से"—(७+७+५ मात्रायें) पीयूषवर्ष।
(४) "विपुल वासना/विपुल विश्व का/मानव शतदल" (८+८+८) रोला।
(५) "स्वर्गंगा में जल विहार तुम/करती बाहु मृणाल" (१६+११ मात्रायें) सारसी।
(६) "श्रद्धा रूठ गई तो फिर क्या,/उसे मनाना होगा" (१६+१२ मात्रायें) सार।
(७) "प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,/तूने कैसे पहचाना" (१६+१४ मात्रायें) ताटंक।
(८) "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर/बैठ शिला की शीतल छाँह" (१६+१५ मात्रायें) वीर।

इस प्रकार मात्रिक छन्दों के कितने ही सूक्ष्म भेद-प्रभेदों का प्रयोग हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में मिलता है।

(५) **मुक्त छन्द** :—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लय के आधार पर मुक्त-छन्द का निर्माण किया। हिन्दी में प्रयुक्त ऐसे छन्द को व्यंग्य में रबर छन्द या कंगारु छन्द भी कहा गया। इस छन्द का आधार लय है। संयमित तथा बन्धन युक्त लय ही छन्द है। मुक्त-छन्द में यह बन्धन टूट जाता है। लय छन्द के नियमों द्वारा नियंत्रित नहीं रहती, अपितु भावनायें इसका नियंत्रण करती हैं। अतः भाव और भाषा का सामंजस्य मुक्त छन्द में पूर्ण रूप से निभाने का अवसर मिलता है। छन्दपूर्ति के लिये जो व्यर्थ शब्द प्रयुक्त होते हैं, उनका मुक्त छन्द में बहिष्कार किया जाता है। छंद और तुक के अनुशासन से मुक्ति मिल जाने पर भावनाओं को स्वच्छन्द रूप से व्यक्त होने और अपने लिये उपयुक्त शब्द उपस्थित करने का अवसर मिलता है। इसी कारण उसमें कवि की सुविधा के अनुकूल तथा भावानुकूल पंक्तियाँ छोटी-बड़ी होती हैं। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

"वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता :
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चला आ रहा लकुटिया टेक,"[1]

---

१. निराला : भिक्षुक। अपरा। तृतीय संस्करण। पृ ५७।

"नीवे निट्टूर्पु, नीवे, कन्नीरु, विश्व
वेदनामूल्य भाग्य मीवे, निजम्मु
ने गलम्मार पाडुकोनिन यखात
शोक गीतम्मुलं दीवे शोक गीतिवि ।
उर्वशी । प्रेयसी ।"[१]

इन दोनों कविता-खण्डों में मुक्त छन्द की लय को अभिव्यक्ति मिली है । परन्तु तेलुगु के छन्द में लय गद्य-लय के अधिक निकट है ।

(ग) लय-तत्व और संगीत :—काव्य और संगीत का घनिष्ट सम्वन्ध है । संगीत का आधार स्वर है जो मात्रा और ताल द्वारा नियंत्रित होता है । संगीत में शब्द का उतना महत्व नहीं होता जितना नाद का । संगीत केवल नाद के द्वारा ही प्रभाव उत्पन्न करता है । काव्य में शब्द और अर्थ का सामंजस्य नाद-तत्व के द्वारा प्रकट किया जाता है और संगीत में नाद-तत्व की ही प्रधानता रहती है, शब्दार्थ का महत्व नहीं होता । ये दोनों इतने निकटवर्ती हैं कि कभी-कभी दोनों एक रूप होकर गीति काव्य की सृष्टि करते हैं । गीति काव्य में काव्य और संगीत का सम्वन्ध सब से अधिक घनिष्ट दिखाई पड़ता है ।[२] हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी-युग में गीति-काव्य का प्रचलन होने पर काव्य में संगीत-तत्व का प्राधान्य हो गया । स्वच्छन्दतावादी काव्य में जो संगीत दिखाई पड़ता है वह शास्त्रीय संगीत न होकर कवियों द्वारा निर्मित उनका अपना संगीत है । उन्होंने शब्द और भाव को अपने संस्कारों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया है । हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी-कवियों में निराला ने शास्त्रीय तथा पाश्चात्य संगीत के अनुसार गीतों की सृष्टि की है । हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने अपनी कविताओं को मात्रिक छन्द में अभिव्यक्त किया और उनके गीतों में प्रयुक्त संगीत भाषा की लय के अनुरूप है । संगीत की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी काव्य में महादेवी, निराला, विश्वनाथ सत्यनारायण, नण्डूरि सुब्बाराव, वंगारम्मा के गीत अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़े हैं । महादेवी अपने गीत की प्रथम पंक्ति को या दो पंक्तियों को टेक के रूप में नियोजित करती हैं और पुन : उसी की लय में मिलने वाली पंक्तियों का अन्त्यानुप्रास एक ही होता है । उदाहरणार्थ एक गीत द्रष्टव्य है—

१. कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृ० ११८ ।
२. "In song, the poetry is the content of music, the music is the form of the poetry."
—George Thomson : Marxism and Poetry. Page 19.

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद भी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में।

× × ×

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवासिनी भी हूँ।

× × ×

दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।

× × ×

नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ

× × ×

अधर भी हूँ और स्मिति की चाँदनी भी हूँ।"[1]

गीत की प्रथम पंक्ति के साथ इन सभी पंक्तियों की स्वरमैत्री यहाँ द्रष्टव्य है और गाते समय इन पंक्तियों के पश्चात् प्रथम पंक्ति प्रभावान्विति के लिये दुहरायी जाती है। इसी प्रकार हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी गीतकार श्री रामगोपाल परदेसी के गीतों में भी टेक के साथ स्वर मैत्री अत्यन्त उच्च कोटि की बन पड़ी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है--

"मेरा जप तप डोल रहा है

× × × ×

धीरे-धीरे चुपके-चुपके कौन मुझे यह बोल रहा है

× × × ×

शायद पास कहीं पर कोई घूँघट अपना खोल रहा है

× × × ×

लगता मेरा ही स्वर मेरे कानों में रस घोल रहा है।"[2]

विश्वनाथ सत्यनारायण जी के "किन्नेरसानि-पाटलु" में संगीत का सुन्दर समावेश हुआ है--

---

१. महादेवी वर्मा। आधुनिक कवि १। छटा संस्करण। पृ० ५४।
२. बोलता हुआ सच : रामगोपाल परदेसी। प्रथम संस्करण। पृ० २५।

"लय पैंचुतु मध्य	१० मात्रायें
लय दिचुतू पाट	,,
रयमेंचु तू किन्ने	,,
रटुसोलि इटुसोलि	,,
तेलिनीटि मेनितो	,,
तलिराकु मेनितो	,,
ओय्यारमुलु पोंयेने	१२ मात्रायें
किन्नेरा	६ मात्रायें
अय्यारे यनि पिंचेने ।"[१]	१२ मात्रायें

इसमें लय की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के गीतों में कला-सौष्ठव उच्चकोटि का मिलता है।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी में मात्रिक छन्दों की प्रधानता है तो तेलुगु में वार्णिक तथा मात्रिक—दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। दोनों स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं में मुक्त-छन्द का प्रयोग मिलता है। परन्तु यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अपनी भाषाओं की सीमाओं में हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जितने नवीन छन्दों का निर्माण किया है, उतने छन्दों का निर्माण तेलुगु के कवियों ने नहीं किया है। हिन्दी के छन्दों में वैविध्य, एवं गठन तेलुगु छन्दों की अपेक्षा अधिक है।

अन्त में निष्कर्ष यह है कि हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं का कला-पक्ष अत्यन्त समृद्ध है। अपने मन की भावनाओं, कल्पनाओं, अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यंजना प्रदान करने के लिए इन भाषाओं के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कला के विभिन्न उपकरणों का सफल प्रयोग किया है।

६. काव्य के रूप

काव्य या कविता व्यवहृत साधारण भाषा का ही उत्कृष्ट रूप है। यह उत्कृष्टता एवं विशिष्टता काव्य के छन्द, तुक, लय, गति, यति, ग्रास, मात्रा, अलंकार आदि रूप-विधान-सम्बन्धी आवश्यकताओं के कारण आ गयी है। उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं ने काव्य के वाह्य रूप के निर्माण में सहयोग दिया है। कवि विषय-वस्तु को अपने मनोनुकूल अभिव्यक्ति देने के लिय काव्य के एक विशिष्ट रूप का

---

१. विश्वनाथ सत्यनारायण। किन्नेरसानि पाटलु। पृ० २५।

प्रयोग करता है। अपने काव्य को वांछित रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए कवि विषय और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार काव्य के रूप को चुन लेता है। विश्व की काव्य-परम्परा में अनेक कवियों ने समय-समय पर नवीन काव्य-रूपों की उद्भावना की है और कवियों की चित्तवृत्ति एवं उनके दृष्टिकोण में भिन्नता होने के कारण अनेक काव्य-रूपों का जन्म हुआ है। स्वच्छन्दतावादी युग तक आते-आते काव्य-रूपों का अधिक निकास हो चुका था। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में निम्न-लिखित काव्य रूपों का प्रयोग मिलता है—

१. महाकाव्य, २. प्रबन्ध-काव्य, ३. गीति-काव्य, ४. गीति काव्य के कुछ अन्य रूप।

इन सभी काव्य-रूपों को हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी कविता में प्रमुख स्थान मिला है, अतः उनका विवेचन यहाँ परमावश्यक है—

(क) **महाकाव्य :**— महाकाव्य ही ऐसा काव्य रूप है जिसके द्वारा जीवन का समग्र और अखण्ड चित्र उपस्थित किया जा सकता है। महाकाव्य की रचना का मुख्य उद्देश्य एक युग के जातीय जीवन को उसकी समग्रता में अभिव्यक्त करना है। उसमें मानव जीवन के सभी अंगों का साम्यक विवेचन होता है। महाकाव्यकार अपनी जातीय संस्कृति को महाकाव्य में अंकित करने के साथ उसे एक स्वतन्त्र कला-कृति के रूप में ढाल देता है। समय के बदलने के साथ महाकाव्य की परिभाषा में भी परिवर्तन आया। प्राचीन महाकाव्य में वस्तु-वर्णन, चरित्र चित्रण तथा जातीय जीवन का चित्रण अधिक हुआ है तो आधुनिक महाकाव्यों में भावना, कल्पना एवं विचारधारा का उदात्त रूप प्रकट होता है। होमर का "**इलियड**" वाल्मीकि का "**रामायण**" तथा व्यास का "**महाभारत**" प्राचीन परिभाषा के अनुसार महाकाव्य हैं तो आधुनिक "**महाकाव्य**" की परिभाषा के अनुसार दाँते की "**डिवाइन कामेडी**"; मिल्टन का "**पेरडाइस लास्ट**" तथा प्रसाद की "**कामायनी**" महाकाव्यों की परिधि में आते हैं।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में केवल एक ही महाकाव्य का दर्शन होता है और वह. प्रसादजी का "**कामायनी**" महकाव्य। प्रसाद जी का यह महाकाव्य, अत्यन्त विलक्षण है। इसका कारण यह है कि विश्व के किसी अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि ने महाकाव्य नहीं लिखा। यद्यपि शैली ने अपने "**प्रोमीथियस अन्बाउण्ड**" को एक महाकाव्य का स्वरूप देने की चेष्टा की, तथापि उसका अन्त तक निर्वाह नहीं हुआ और अन्त में वह काव्य अधूरा ही रह गया। परन्तु प्रसादजी जैसे स्वच्छन्दतावादी कवि हैं जिनमें भावना एवं कल्पना के साथ चिंतनशीलता तथा गम्भीरता का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। सामान्यतः स्वच्छन्दतावादी कवि अपने

क्षणिक संवेगों तथा अनुभूतियों को व्यक्त किया करते हैं। विश्व के किसी भी स्वच्छन्दतावादी कवि में सफल महाकाव्य लिखने की क्षमता दिखाई नहीं देती, क्योंकि महाकाव्यकार एक विलक्षण कोटि का कवि होता है।[1] यहाँ तक कि रवीन्द्र जैसे कवियों ने भी अपने को इस काव्य-रूप से अपने को बचा लिया है। परन्तु प्रसाद ने अपने जीवन की सम्पूर्ण साधना को लगाकर जैसे महाकाव्य का निर्माण किया, जिस को विश्व साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया है। प्रसाद के महाकाव्य **"कामायनी"** में रूपक कथा की प्रधानता है और उसकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावादी है। कुछ परम्परावादी आलोचक कामायनी को महाकाव्य नहीं मानते। परन्तु उनकी धारणा अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण की परिचायिका है। कामायनी में अन्य महान कला-कृतियों की भाँति परम्परा और प्रयोग का संतुलन मिलता है। उसमें इतिहास पुराण, रूपक, दर्शन तथा मनोविज्ञान का योग काव्य के साथ संतुलित रूप में हुआ है; अतः उसमें अनेक मूल्यों तथा अर्थों का उन्मीलन पाया जाता है।[2]

अतः प्रसादजी की **"कामायनी"** निर्विवाद रूप से एक महान तथा विलक्षण महाकाव्य है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावाद में महाकाव्य के काव्य-रूप का नितान्त अभाव है।

(ख) प्रबन्ध काव्य :—प्रबन्ध-काव्य में कथा-तत्व एवं वस्तु-योजना को पर्याप्त स्थान मिल जाता है। कवि घटना-चक्र या कथानक का आधार लेकर उसके माध्यम से अपनी भावनाओं को वाणी देता है। अतः प्रबन्ध-काव्य में कथा-सूत्र का होना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं

---

1. "The epic poet is the rarest kind of arist"

—The Epic. Page. 41.

2. "It is in epic poem unique of its kind. If we try to asses it entirely on the basis of recognised canons of epic poetry coming down from ancient times we may feel a little disappointed. . But it is hardly necessary to cling to old notions and forms for with the progress of time old forms are likely to be modified and new ones likely to emerge. Every great work combines tradition and experiment. Kamayani combines history, mythology, metaphysics and human psychology and thus presents several layers of meaning and admits of diverse interpretations,"

— The Hindi Review: Vol. IV Feb., 1959, No. 1. Editorial.

के कुछ प्रमुख कवियों ने प्रबन्ध-काव्यों की सृष्टि की है। उनमें जयशंकर प्रसाद के "प्रेम-पथिक", "महाराणा का महत्व" निराला के "तुलसीदास", "राम की शक्ति-पूजा" सुमित्रानन्दन पन्त का 'ग्रन्थि" तथा रायप्रौलु सुब्बाराव के "ललित", "तृण कंकणमु", "स्नेहलता देवि" दुव्वूरि रामिरेड्डी का "नल्जारम्म अग्नि प्रवेशमु", "वनकुमारि", गुरजाड़ अप्पारावजी का "लवणराजु कल" आदि उल्लेखनीय हैं। इन सभी स्वच्छन्दतावादी प्रबन्ध-काव्य की प्रधान विशेषता यह है कि उनमें भारतीय साहित्य-शास्त्र द्वारा निर्धारित प्रबन्ध-काव्य सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं किया गया। प्रथमतः इन कवियों ने अपनी इच्छा के अनुसार कथानकों की कल्पना की। उन्होंने देवता, ब्राह्मण तथा क्षत्रिक नायकों के स्थान पर साधारण व्यक्ति को भी नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद जी के "महाराणा का महत्व" तथा निराला जी के "राम की शक्ति-पूजा" को छोड़कर उपर्युक्त सभी प्रबन्ध-काव्यों में नायक और नायिका सामान्य परिवार के हैं। इन स्वच्छन्दतावादी प्रबन्ध-काव्यों की अन्य विशेषता यह है कि इन कवियों की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति इन काव्यों में अधिक उभर आयी है। इन प्रबन्ध-काव्यों की तीसरी विशेषता यह है कि व्यक्तिवादी होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रवृत्ति आत्माभिव्यंजक थी, अतः प्रबन्ध-काव्यों में इन कवियों ने प्रगीत-मुक्तकों की शैली का प्रयोग किया। इस प्रकार अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार कुछ परिवर्तन प्रस्तुत करते हुये भी हिन्दी और तेलुगु के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इस काव्य-रूप को (प्रबन्ध-काव्य) अपनाया।

(ग) **गीति काव्य**—हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रगीत-मुक्तकों तथा गीतों का प्राधान्य है। ये दोनों काव्य-रूप गीति-काव्य के अन्तर्गत ही आते हैं। भारत में गीति-काव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप से चल रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय कवि अपनी अनुभूतियों को भावमय संगीत में ही अभिव्यक्त करता आया है। काव्य के साथ संगीत का योग अत्यन्त प्राचीनकाल में ही हो गया था। गीति-काव्य में संगीतात्मक तत्व (लय-तत्व) के विषय में आगे विचार किया जायगा। गीति-काव्य में कवि की आत्मा की और उसके वैयक्तिक "अहं" की पूर्ण रूप से अभिव्यंजना होती है। गीतिकाव्य आत्माभिव्यंजक होता है।[1] सभी काव्य-रूपों में नाटक सर्वाधिक

---

1. "In the lyric this finite i.e., the subject, the ego of the poet predominates. The lyric is the most subjective, individualized genre."
   Rene Wellek : A History of Modern Criticism: 1750-1950.
   (The Romantic Age. Page 78.)

वैयक्तिक काव्य-रूप है। गीत और प्रगीतों में कवि की दृष्टि अपनी चित्तवृत्ति एवं भावना की गहराई से सदैव सम्बद्ध रहती है। भारतीय साहित्य-शास्त्र में श्रव्य-काव्य को प्रबन्ध और मुक्तक काव्य के रूपों में विभक्त किया गया। पुन: मुक्तक-काव्य के अन्तर्गत ही गेय काव्य (गीति काव्य) को भी समाहित किया गया। परन्तु ध्यान देने का विषय यह है कि मुक्तक-काव्य तथा गीति-काव्य में उतना ही स्पष्ट अन्तर है जितना अन्तर स्वयं मुक्तक और प्रबन्ध-काव्य के बीच वर्तमान है। मुक्तक-काव्य छंद के नियमों से इतना आवद्ध है कि संगीतात्मकता अपने आप समाप्त हो जाती है। नीतिपरक तथा शृंगारी मुक्तकों में सर्वथा निर्वेयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है तो गीति-काव्य वैयक्तिक अनुभूतियों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। अत: गीति-काव्य वह है जिसमें कवि की निजी भावनाओं, अनुभूतियों तथा कल्पनाओं का अकृतिम प्रवाह हो, जिसमें कवि के वैयक्तिक सुख-दुख, हास–अश्रु तथा उल्लास-विषाद आदि की तरलता हो, जहाँ कवि अपने को भावुक सहृदयों के समक्ष संगीतात्मक लय के द्वारा प्रस्तुत कर रहा हो। उस समय कवि की वाणी में एक धारा, एक संगीत, एक स्वर तथा एक रस की श्रवन्ती उमड़ पड़ती है। "प्रगीत-काव्य में कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता। प्रगीतों में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिविम्बित होता है। वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है।"[१] अत: वैयक्तिकता तथा संगीतात्मकता गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व हैं। अबाध कल्पना, असीम एवं विशुद्ध भावात्मकता तथा गहरी संवेदना उसमें पूर्ण रूप से पायी जाती है।

हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में गीतिकाव्य के दो प्रधान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, और वे हैं प्रगीत मुक्तक ("ओड") और गीत ('सांग")। इनमें से गीत-शैली भारतीय पद्धति पर तथा प्रगीत मुक्तक की शैली पाश्चात्य पद्धति के आधार पर विकसित हुई हैं।

प्रगीत काव्य तथा गीतिकाव्य का प्रारम्भिक रूप लोक-गीतों में दिखाई पड़ता है। काव्य की परिधि में आकर भी ये गीत गेय ही बने रहे। आरम्भ में इन गीतों में संगीत-तत्व की प्रधानता तथा काव्यात्मकता कम होती थी। इसी कारण उनमें नाद-सौन्दर्य पर अधिक तथा अर्थ योजना पर कम ध्यान दिया जाता था। परन्तु जब काव्य से संगीत पृथक हो गया तो गीत अपने स्वतन्त्र रूप में प्रकट हुआ। गीतों में स्वर के विस्तार तथा संकोच का मोह, जो प्राय: संगीत में पाया जाता है, कम होता गया। स्वच्छन्दतावादी गीति-काव्य का मुख्य लक्षण यह है कि इसमें संगीत-तत्व भावनाओं का अनुचर बनकर गीतिकाव्य में व्यक्त हुआ। अत: स्वच्छन्दतावादी गीति-

---

१. नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य। द्वितीय संस्करण। पृ० २४।

काव्य में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से संगीत-तत्व की प्रधानता रही है। परन्तु प्रगीत मुक्तकों में गेयता का कोई बन्धन नहीं है। गीत और प्रगीत में अन्तर यह है कि गीत में संगीत तत्व की प्रमुखता है तो प्रगीत में उस तत्त्व का उतना महत्व नहीं दीखता। अतः संगीत तत्व के मात्रा-भेद के कारण ही गीत और प्रगीत के रूप-विधान में अंतर आ जाता है। प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी गीतों में प्रथम पंक्ति टेक के रूप में प्रस्तुत की जाती है और तीन-चार पंक्तियों के पश्चात पुनः एक ऐसी पंक्ति आ जाती है जिसका स्वरैक्य टेक के साथ होता है। इस प्रकार टेक की व्यवस्था प्रगीत में नहीं होती। स्वच्छन्दतावादी प्रगीत में गांभीर्य के साथ मंथर गति का प्राधान्य रहता है तो गीत में संगीत की तरलता के साथ विह्वलता भी वर्तमान रहती है। अतः हिन्दी और तेलुगु के गीत-काव्य को प्रगीत और गीत के रूप में विभक्त कर अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

(ब) प्रगीत :–हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अधिकतर प्रगीत ही लिखे हैं। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला तथा दिनकर ने विशेष रूप से इस काव्य-रूप का प्रयोग किया है। तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रगीत-शैली का विकास कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री तथा नायनि सुब्बाराव में पूर्ण रूप से हुआ है। हिन्दी के कवियों में मुख्यतः पंत और निराला में प्रगीत का पूर्ण उत्कर्ष लक्षित होता है। पंत की कविताओं में **"बादल"**; **"छाया"**, **"उच्छ्वास"**, **"परिवर्तन"**, **"अप्सरा"** तथा निराला की कविताओं में **"यमुना के प्रति"**, **"तरंगों के प्रति"**, **"स्मृति"** आदि प्रगीत-काव्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। कृष्णशास्त्री की **"कृष्ण पक्षमु"**, **"प्रवासमु"** तथा **"उर्वशी"** आदि रचनायें, नायनि सुब्बाराव की **"सौमटनि प्रणय यात्रा"** वसवराजु अप्पाराव की **"लैला-मजनू"** कविता शिवशंकर शास्त्री की **"हृदयेश्वरी"** तथा वेदुल सत्यनारायण शास्त्री की **"दीपावली"** में प्रगीत-काव्य का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी प्रगीतों में गेय-तत्व की प्रमुखता पायी जाती है। तेलुगु के प्रगीतों की अपेक्षा हिन्दी के प्रगीतों में कलाकारिता तथा छन्द विधान का बन्ध उच्च कोटि का लगता है। प्रगीतों की विभिन्न पंक्तियों में छन्द परिवर्तन भी लक्षित होता है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी प्रगीत का एक अंश द्रष्टव्य है—

"सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर।
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवन धर।
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्ताकर।
विहग वर्ग के गर्भ विधायक, कृषक बालिका के जलधर।"[1]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : बादल। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ८२।

पन्तजी के इस प्रगीत के अंश में आत्मपरक शैली ध्यान देने योग्य है। आत्मपरक प्रगीत-शैली देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री में भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उनके प्रगीत का एक अंश द्रष्टव्य है जहाँ स्वयं कवि अपनी वेदना को वाणी देता है—

"कंट गुरिसिन कार्चिच्चु मन्टयेल्ल
कालि नुसियै नशिंचे वांछालवाले :
ऐ रेरुंगुदु रानि एँ ऐडारि दार्ल
निंकेनों चुक्क तडि जाड येनि लेक

करुण पट्टुन नी विच्चगानि चेयि
चाचि कोनिनाड मृत्यु घोषम्मे मरचि ;
वाट्टि बयलुन नौक मोड्डु चेट्टुबोले
ऐत्तिनदि करमैत्ति नट्ले कृशिंचे :"[1]

कतिपय हिन्दी और तेलुगु के प्रगीतों में एक ही छन्द का निर्वाह अन्त तक नहीं हुआ है। फिर भी उनको लय-तत्व में विशेष परिवर्तन दिखायी नहीं देता। कुछ प्रगीतों में तो मुक्त-छन्द का भी प्रयोग मिलता है। इसके लिए हिन्दी और तेलुगु के कुछ प्रगीतों की पंक्तियाँ, जो मुक्त-छन्द में लिखी गयी हैं, उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं—

"दीवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास ;
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु जरा गम्भीर,— नहीं है उन में हास-विलास।"[2]

नीवु तोलि प्रोद्दु नुनुमंचु तीव सोनवु
नीवु वर्षाशरत्तुल निबिड संग
ममुन वौडमिन सन्ध्याकुमारि, वीवु
तिमिर निश्वासमुल मासि कुमुलु शर्व
री वियोग कपोक पालिकवु, नीवें,'[3]

---

१. देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० १०९।
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : सन्ध्या सुन्दरी। अपरा। तृ० सं०। पृ० १२।
३. देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ११८।

हिन्दी और तेलुगु के प्रगीतों में अधिकतर सम्बोधन-प्रगीत हैं। ऐसे प्रगीतों में कवि आलम्बन को सम्बोधित कर उसके प्रति अपनी भावनाओं तथा कल्पनाओं को वाणी देता है। ऐसे सम्बोधन-प्रगीतों में पन्त की "छाया", "अप्सरा" निराला की "यमुना के प्रति" दिनकर की "हिमालय के प्रति" तथा कृष्णशास्त्री की "उर्वशी" आदि कवितायें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रगीत के काव्य-रूप का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है।

(अ) गीत :—गीतिकाव्य की सामान्य विशेषताओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि गीतिकाव्य संगीतात्मक लय में प्रयुक्त ऐसे सार्थक शब्दों की योजना है जिसमें तीव्र वैयक्तिक एवं संवेदनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिलती है। अतः आत्म-परक अनुभूतियों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीति-काव्य है। हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य में गीत को उच्चतम स्थान प्राप्त हुआ है।

गीतिकाव्य के सामान्य विवेचन में गीति-काव्य के भाव-तत्व तथा लय-तत्व पर विचार किया गया है। हिन्दी और तेलुगु के गीति-काव्य में रागात्मक तत्व तथा लय-तत्व का, (जिसमें संगीत का आग्रह रहता है) सुन्दर सामंजस्य मिल जाता है। दोनों भाषाओं के उदाहरण राग तत्व तथा लय तत्व के सामंजस्य का स्पष्टीकरण हो जाता है। कविवर निराला ने अपने जीवन के निराशापूर्ण क्षणों को इस प्रकार व्यक्त किया है :

"स्नेह-निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।

× × ×

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा ;
मैं अलक्षित हूं, यही
कवि कह गया है।"[१]

इसमें कवि की निराशाजन्य दुखानुभूति का प्रकाशन अत्यन्त सुन्दर एवं तरल लय के द्वारा हुआ है। निराला जी की ही भाँति रामगोपाल परदेसी जी ने भी अपनी वैयक्तिक निराशाजन्य दुखानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रवाहमान लय के द्वारा की है। यथा—

"गीत पढ़कर यह कभी
तुम आँख में आँसू न लाना
मैं दुखी हूँ बात यह तुम
हर किसी को मत बताना
क्योंकि जीने के लिए उर में अभी अरमान बाक़ी
चार भाई बीच केवल एक मेरी जान बाकी।"[२]

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा। तृतीय संस्करण। पृ० १३५।
२. बोलता हुआ सच : श्री रामगोपाल परदेसी। प्रथम संस्करण। पृ० ५४।

कविवर विश्वनाथ सत्यनारायण के "किन्नेरसानि पाटलु" की नायिका पाषाण बने हुए अपने पति को छोड़कर वह जाने में अनन्त दुख का अनुभव इस प्रकार करती है—

"करिगि किन्नेरसानि वरदलै पारिंदि
तरुणि किन्नेरसानि तरकल्लु कट्टिंदि
पडति किन्नेरसानि परगुल्लु पेट्टिंदि"[1]

"पडति किन्नेरसानि विडलेक तिरिगिंदे
मुगुद किन्नेरसानि वगचेंदि तिरिगिल
वेलदि किन्नेरसानि गलगला तिरिगिंदि"[2]

इसमें संगीतात्मकता तथा रागात्मकता का संतुलन प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार भाषा और शब्द-चयन, शैली-तत्व, अलंकार-विधान, कलात्मक-चित्रण, छन्द तथा काव्य-रूपों की दृष्टि से भी हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादों में समानता के साथ भिन्नता भी वर्तमान है।

१. विश्वनाथ सत्यनारायण। "किन्नेरसानि पाटलु"। पृ० ११।
२. वही। पृ० १३।

सप्तम अध्याय

हिन्दी और तेलुगु के कुछ प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

१. सुमित्रानन्दन पंत और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री :—

सुमित्रानन्दन पन्त और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री भारतीय स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के दो उज्जवल नक्षत्र हैं, जिनकी काव्य-प्रतिभा ने क्रमशः हिन्दी एवं तेलुगु के काव्य-क्षेत्रों को आलोकित किया। इसके अतिरिक्त ये कवि-कलाकार भारतीय स्वच्छन्दतावाद तथा विश्व-साहित्य में अमर स्थान प्राप्त करने योग्य हैं। परन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि इन दोनों कवियों में असाधारण समानता हर एक क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। इनके व्यक्तित्व से लेकर कृतित्व तक, जीवनी से लेकर विचारधारा तक समानतायें ही दृष्टिगोचर होती हैं। ये दोनों कल्पनाशील तथा भावुक कवि-कलाकार हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के मूर्धन्य कवि होने के साथ-साथ उनके प्रतिनिधि कवि भी हैं। इन दोनों कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि विश्व-भर में एक-दूसरे के बीच इतनी समानतायें रखने वाले दो भिन्न साहित्यों के कवि या कलाकार शायद ही नहीं मिलते। इसी कारण इन स्वप्नद्रष्टा तथा आकाश में उड़ान भरने वाले कवि-विहंगों की तुलना हर एक दृष्टि से रोचक एवं आवश्यक भी प्रतीत होती है।

(क) जीवनी :—सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म सन् १९०० में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था और कृष्णशास्त्री का जन्म सन् १८९७ में आँध्र प्रदेश के चन्दनपालेम में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ। बाल्यावस्था से ही दोनों कवियों को साहित्यिक एवं प्राकृतिक वातावरण प्राप्त हुआ। पन्तजी के बड़े भाई उन्हें बाल्यावस्था में ही ग़ज़लें एवं कविता करने के लिए प्रोत्साहन देते थे और कालिदास के मेघदूत को पढ़-पढ़कर उन्हें सुनाते थे। शास्त्रीजी के पिता और पिता के बड़े भाई स्वयं महान पण्डित एवं कवि भी थे और वे शास्त्री जी को बाल्यावस्था में ही काव्य-रहस्यों से अवगत कराते हुये परीक्षार्थ अपनी कविताओं को

भी उनके समक्ष रख देते थे। शायद इसी कारण से सात वर्ष की आयु में ही अपने बड़े भाई के प्रोत्साहन से पन्त ने एक सुन्दर गज़ल लिख दी थी था तो सामर्लकोट में ठीक उसी आयु में शास्त्रीजी ने "नन्द नन्दन इन्दिरानाथ वरद" पद्य लिख दिया। हाई-स्कूल के जीवन में दोनों कवि अपने आगामी कवि-जीवन के निर्माण में लगे हुए थे। दोनों कवियों का कालेज जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण इसलिए रहा कि उन्हें अच्छे पथ-प्रदर्शक मिल गये थे। पन्त की काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर प्रोफेसर शिवधार पाण्डेय ने उन्हें अंग्रेजी काव्य के अध्ययन करने की सलाह दी और समय-समय पर उन्हें प्रोत्साहित किया तो शास्त्रीजी को काव्य-रहस्यों से अवगत कराने वाले रघुपति वेंकटरत्नम्नायुडु ने कवि में अंग्रेजी-साहित्य में रुचि उत्पन्न कर दी। दोनों कवियों को कीट्स एव शैली की कविताओं ने अधिक आर्कषित किया।

सन् १९१६ के पश्चात् पन्त और शास्त्री के वैयक्तिक जीवन को दुःख एवं निराशा ने ग्रसित कर लिया। एक ओर जब पन्त जी ने अपने भग्न-प्रणय एवं तज्जन्य निराशा को "ग्रन्थि", "उच्छ्वास" तथा "आंसू" में व्यक्त किया है तो शास्त्री जी ने अपनी धर्मपत्नी के निधन से अधिक दुखी होकर वेदना एवं निराशा को "कन्नीरु" (आँसू) में घनीभूत कर दिया। इन दोनों कवियों के काव्य में करुणा एवं वेदना ने इस प्रकार एक निश्चित स्थान प्राप्त कर लिया। ये दोनों कवि अत्यन्त स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द होने के कारण किसी भी नौकरी में अधिक समय तक नहीं रह सके। अपनी तरुणाई के दस वर्ष पन्तजी कालाकांकर में साधना कर रहे थे तो दस वर्ष तक शास्त्रीजी सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश में भ्रमण कर काव्य-पाठ किया करते थे और अपनी काव्य रचना को भी जारी रखते थे। इस समय तक दोनों कवियों को अपने साहित्यों में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो चुका था। इन दोनों कवियों को फिल्मी संस्थाओं ने आर्कषित किया और मित्रों के अनुरोध पर इन्होंने दो महत्वपूर्ण फिल्मों में काम किया। पन्त ने "कल्पना" के लिये कथा एवं गीतों की रचना की है तो कृष्णशास्त्री ने "मल्लीश्वरी" के लिये। दोनों उत्कृष्ट कोटि के कलाखण्ड समझे जाते हैं। इन कवियों को फिल्मी जगत का विलासपूर्ण वातावरण नहीं रुचा। सन् १९५० के पश्चात् इन दोनों कवियों की नियुक्ति आकाशवाणी में हो गई। पन्त जी आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र में हिन्दी प्रोड्यूसर हैं तो शास्त्री जी हैदराबाद केन्द्र में तेलुगु प्रोड्यूसर हैं। आकाशवाणी में इन दोनों कवियों के पदार्पण के पश्चात नयी स्फूर्ति का संचार हो गया। इन कवियों ने रेडियो के प्रसार के लिये अनेक गीत एवं गीत-नाट्यों की रचना की। इस समय पन्त जी इलाहाबाद तथा शास्त्री जी मद्रास में हैं। अब भी इनकी प्रतिभा सृजनशील है।

(ख) व्यक्तित्व :—पंत और शास्त्री के व्यक्तित्वों में आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों का व्यक्तित्व अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक है। इनको

देखने से जैसा प्रतीत होता है कि वे स्वच्छन्दतावादी कवि न होते तो और कुछ नहीं हो सकते । केवल उनके काव्य में ही नहीं, अपितु उनके व्यक्तित्व में भी कविता साकार हो गयी है । इन कवियों की बड़ी-बड़ी आँखें और लम्बे लहराते हुये बाल, उनके "क्लीन शेव्ड', चेहरे के सौन्दर्य को द्विगुणीकृत करते हैं । पंतजी ने अपने केशों के संबंध में जो कुछ कहा है वह शास्त्रीजी के लिये भी सत्य प्रतीत होता है ।[1] उनके आकर्षक व्यक्तित्व में कोमलता के साथ आर्द्रता, स्वच्छन्दता के साथ आदर्श-भावना, चिंतनशीलता के साथ सूक्ष्मदर्शिता का दर्शन एक साथ होता है । अनेकों कवियों ने उनके व्यक्तित्व का अनुकरण करने की चेष्टा की, परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली । ये दोनों महाकवि ऐसे हैं, जिन्होंने अपने जीवन को काव्य-मय बनाया एवं काव्य में अपने जीवन को उतार दिया । इसी कारण ये दोनों कवि अपने असंख्य मित्रों के प्रेम एवं श्रद्धा के पात्र बने हुये हैं ।

(ग) कृतियाँ :—पंतजी ने स्वच्छन्दतावाद का नेतृत्व करते हुये क्रमशः **"वीणा", "ग्रंथि", "ज्योत्स्ना"** (गीति-नाट्य), **"युगान्त"** आदि महत्वपूर्ण काव्य-ग्रंथों की रचना की । ये सभी रचनायें लगभग सन् १९१४ से लेकर सन् १९३३ तक लिखी गयीं थीं । ठीक इसी समय के अंतर्गत शास्त्रीजी ने **'कन्नीरु", "कृष्ण पक्षमु", "प्रवासमु", "ऊर्वशि", "श्रावणि", "कार्तिकि", "महति"** आदि काव्यों की सृष्टि की । यद्यपि पंतजी ने अपने काव्य-जीवन को अन्य प्रवृत्तियों में भी ढाल दिया तथापि उनकी सहज चेतना मूलतः स्वच्छन्दतावादी ही रही है । इस तरह इन दोनों कवियों ने अपनी इन काव्य-कृतियों के अंतर्गत अपार भावराशि का संचय किया है ।

(घ) कल्पना और सौन्दर्य :—पंतजी और शास्त्री मूलत : कल्पना एवं सौन्दर्य के कवि हैं । कल्पना और सौन्दर्य परस्पराश्रित होने के कारण उनका अस्तित्व एक साथ देखा जा सकता है । एक ओर कल्पना सौन्दर्यपूर्ण बिम्बों की उद्भावना करती है तो दूसरी ओर वह स्वतन्त्र न रहकर भावाश्रित एवं भावानुगामिनी भी होती है । पंत के काव्य में कल्पना अधिकतर सौन्दर्य के अंकन में सहायक हुई है तो शास्त्रीजी के काव्य में वह अधिकतर भावों की अनुगामिनी-सी लगती है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि पंत में कल्पना भाव-प्रेरित नहीं होती और शास्त्री में यह सौन्दर्य विधायिनी नहीं होती । भेद केवल मात्रा का ही है ।

---

१. "घने लहरे रेशम के बाल
धरा है सिर पर मैंने देवि ।
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार
स्वर्ग का सुरभित भार ।"--पंत : पल्लविनी । पृ० ८० ।

अपनी उर्वर कल्पना के सहारे इन कवियों ने सुन्दर बिम्बों की सृष्टि की। प्राकृतिक वातावरण में दो अशरीरी नारियों की रूप-कल्पना पंत और शास्त्री दोनों ने की। पंत ने आशा-सुन्दरी की कल्पना की तो शास्त्री ने निशा-सुन्दरी की। इन दोनों सुन्दरियों की शोभा द्रष्टव्य है। उषाकाल में खिले हुए फूलों के उद्यान में सुरभिवेणी में भ्रमर-पुष्प को गूंथकर, पराग की साड़ी पहन कर तथा तुहिन-कणों के मुकुट को पहनकर मुकुलों के हृदय-सम्पुटों को खोलने वाली आशा-सुन्दरी की सौम्य, कोमल मूर्ति को पंत ने इस प्रकार साकार कर दिया है—

"देवि! ऊषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, चल तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को।"[1]

शास्त्रीजी की निशा-सुन्दरी के काल्पनिक बिम्ब को तुलना के लिये प्रस्तुत किया जाय। पंख धारण कर पधारने वाली रजनी-बाला काजल सी साड़ी से अपना श्रृंगार करती है, जिस तिमिरांचल के झोंके से बिखरी हुई उडुमणि विषादपूर्ण द्युतियाँ बिखेरती है—

"काजल-सी साड़ी से कर श्रृंगार
पाँखें धारण कर आती है रजनी
जिसके तिमिरांचल के झोंके से
उडु-मणि जो बिखर गयी है,
वही विषादमयी द्युतियाँ टपकाती है।"[2]

पन्त के बिम्ब में उषाकाल का मनोहारिणी चित्र अंकित हुआ है तो शास्त्री के बिम्ब में रजनी की शोभा के साथ नक्षत्रों की विषादमयी द्युतियों का टपकना एक विचित्र भाव-मिश्रित सौन्दर्य की सृष्टि करता है।

इन दोनों कवियों की कल्पना कभी सूक्ष्म एवं कभी मांसल, कभी कोमल एवं कभी विराट रूप धारण कर लेती है। फिर भी शास्त्री की अपेक्षा पन्त में

---

१. "ग्रंथि" से : सुमित्रानन्दन पंत : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४६।
२. "रेक्कलं दाल्चि परतेंचु रे लतांगि
कारू काटुक चीर सिंगार मोदव
चीकटि चेरंचु विसरुन जेदरि योक्क,
युडुमपि विषादपूरित द्युतुलु राल्चु।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ६१।

कल्पना का वैभव तथा सौन्दर्य-चित्रण की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। पन्त कल्पना के माध्यम से सौन्दर्य-सृष्टि करते हैं तो शास्त्री कल्पना के माध्यम से भावों का स्पष्टीकरण।

दोनों कवियों की सूक्ष्म-कल्पना उनकी निरीक्षण-शक्ति का परिचय देती है। उनके मनोनेत्रों के सम्मुख हर एक वस्तु एवं भावना मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। पन्त सन्ध्या के समय ग्राम प्रान्त का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पत्रों के ओठों पर सम्पूर्ण वन की मर्मर ध्वनि उसी प्रकार सो गयी है जिस प्रकार मूक वीणा के तारों में स्वर सुषप्त रहते हैं—

"नीरव सन्ध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।"[1]

शास्त्री की कल्पना भी सूक्ष्म होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ी है। शास्त्रीजी कहते हैं कि उसकी प्रेयसी की आँखों में सन्ध्या के अवसान के समय में नीमःवृक्षाग्र-शाखा के पत्रों के बीच के कुटिल मार्ग में निवास करने करने वाले अन्धकार की रेखाओं की फुसफुसाहट कभी-कभी सुनाई पड़ती है—

"सन्ध्या के अवसान समय में
नीम वृक्ष-अग्रिम शाखा के
पत्र-मध्य स्थित कुटिल पथों में फैले
तिमिर-जाल की फुसफुस ध्वनियाँ
कभी सुनाई पड़तीं उसकी आँखों में॥[2]

पन्त और शास्त्री :—दोनों ने अपने सूक्ष्म काल्पनिक बिम्बों के निर्माण में सूक्ष्म ध्वनि-ज्ञान का परिचय दिया। कभी-कभी उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति अत्यन्त मांसल तथा सौन्दर्य-मण्डित बिम्बों की उद्भावना करती है। इन कवियों की कल्पना

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण १८१।

२. "सन्ध्यावसान
समयमुन नीपपादप शाखिकाग्र
पत्र कुटिल मार्गमुल लोपल वसिंचु
इरुल गुसगुसल् वानिलो निपुड्ड नपुड़
दिन बड्डुचु नुण्डु;"

—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० १२५।

इतनी सशक्त है कि उनकी प्रत्येक पंक्ति में चित्र साकार हो उठता है। पन्त की 'छाया' एवं "बादल" आदि कविताओं में कल्पना का ही साम्राज्य दीखता है। कवि का कल्पनाशील मन छाया एवं बादल को विभिन्न चित्रों में देखने लगता है। छाया कवि के लिए "वातहता विच्छिन्न लता" की भाँति एवं "रति श्रान्ता ब्रज वनिता" की भाँति दिखाई पड़ती है तो कभी "धूलि धूसरित मुक्त कुन्तला" नारी के समान, नल से परित्यक्ता दमयन्ती के समान, सूखे पत्तों को गोद में भरकर संतुष्ट रहने भिखारिणी के समान दृष्टिगोचर होती है। "बादल" को कवि अपनी कल्पना की आँखों से निहार कर उसके बिम्बों में नया जीवन भर देता है। परियों के बच्चों के समान बादलों का सुन्दर श्वेत पंखों को पसार कर, चन्द्रमा के सुकुमार हाथ पकड़कर हर्ष उल्लास के साथ चाँदनी में पैरना, व्योग-विपिन में पल्लवित प्रभात का बसन्त के समान खिलना और उस समय वायु की धारा में तमाल तरु के काले पत्तों के समान बादलों का गिरना आदि सौन्दर्य वर्धक चित्र कवि की अपरिमेय कल्पना शक्ति के परिचायक हैं। कवि बादलों को अपनी कल्पना में अनन्त भंगिमाओं में देखने लगता है और हर एक पंक्ति में दो बिम्ब साकार हो उठते हैं—

"हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल;
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर
सलिल भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल
दिन के तम, पावक के तूल।"[1]

'ग्रन्थि", "पल्लव" तथा "गुञ्जन' पन्त के कल्पना-वैभव के अक्षय भण्डार हैं। शास्त्री की कल्पना भी अतिशय सौन्दर्य की सृष्टि करती है। नील सरोवर में राजहंस की भाँति विहार करने वाला चन्द्रमा, कोयल के कन्ठ में उलझा हुआ वसन्त का गीत, अपने वियोग में शुष्कता को प्राप्त होनेवाली विरहिणी निर्झरिनी के उदर में सिमटा हुआ अम्बुधि का रव इत्यादि बिम्ब उनकी महान कल्पना-शक्ति के प्रमाण हैं। पुकार अनल बनकर स्तब्धता को जलाना, बादलों के काजल (काले) धूम का छा जाना, ईश्वर के जलज हस्तों में विश्व का विश्रान्ति पाना, श्यामल अम्बर की सरसी में प्रणय-लीला-विहार में विलासिनी तारिकाओं का मगन हो हो जाना, सौरभ का प्रणय-मलयानिल की वीथियों में झूलना आदि बिम्ब भी कवि-कल्पना निर्मित हैं।

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "बादल" से। पल्लविनी; तृतीय संस्करण। पृ० ८५।

इन दोनों कवियों की कल्पना अत्यधिक सूक्ष्म एवं कोमल होते हुए भी कभी-कभी विराट एवं भयंकर चित्रों को भी अंकित कर देती हैं। पन्त की "परिवर्तन" कविता में और शास्त्री की कतिपय कविताओं में ऐसी कल्पना दृष्टिगोचर होती है। दोनों कवियों के दो उदाहरण इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं। परिवर्तन रूपी वासुकि का विराट तथा भयंकर चित्र कवि पन्त की अपरिमेय कल्पना-शक्ति का स्पष्ट प्रमाण है—

"अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर।
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर।
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल दिङ्मण्डल।"[1]

शास्त्रीजी पूछते हैं कि प्रलयकाल के उग्र तथा भयंकर मेघों के कन्ठ से निकलने वाले गम्भीर घन-गर्जन में दामिनी का अस्तित्व क्यों है[2] तथा विकृत एवं क्रूर क्षुधा से जर्जरित और मृत्यु-कठोर, विकट-पाँडुर, शुष्क वदन की दंष्टाग्नि में मुस्कुराहट क्यों है ?[3]

इन दोनों कवियों ने अपनी आदर्श नारियों की कल्पना कर उनसे अपने काव्य-वैभव की वृद्धि की है। कल्पना के बल पर उन्होंने नारी-प्रतिभाओं को अलौकिक सौन्दर्य से विभूषित किया है। उनकी चर्चा आगामी शीर्षक के अन्तर्गत की जायेगी।

(ङ) भावना-पक्ष :--पन्त और शास्त्री दोनों अत्यन्त भावुक कवि हैं। उनकी भावुकता जीवन और प्रकृति के हर एक अंश के साथ तादात्म्य प्राप्त कर

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : "परिवर्तन" से। पल्लविनी। तृतीय संस्करण।
पृ० ११६—१२०।

२. प्रलयकाल महोग्र भयद जीमूतोरु
गल घोर गंभीर फेलफेलार्भटुल लो
मेर पेला ?"--श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृतुलु : पृ० ५६।

३. "विकृतः क्रूर क्षुधा क्षुभित मृत्यु कठोर
विकट पांडुर शुष्क वदन दंष्ट्राग्नि लो
नव्वेला ? --देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री--पृ० ५६।

लेती है। इन दोनों कवियों के भावना-पक्ष की तुलना निम्नलिखित पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत की जाती है—(१) विस्मय की भावना, (२) विद्रोह की भावना, (३) प्रेम-भावना तथा नारी, (४) रहस्य भावना, (५) भक्ति-भावना।

(१) **विस्मय की भावना** :—चिरन्तन काल से मानव, सृष्टि के रहस्यों को जानने का चिर अभिलाषी रहा है। आदिम मानव की प्रवृत्ति शिशु की प्रवृत्ति से अधिक मिलती रही होगी। इसका कारण यह है कि वह शिशु की भाँति सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिए आतुर रहता है। सृष्टि के व्यापार उसे विस्मय की भावना में डुबो देते हैं। पन्त और शास्त्री शिशु के भोलेपन को अपनाकर सृष्टि की हर एक प्रक्रिया को विस्मय के साथ देखते हैं। पन्त छाया को देखकर विस्मय से पूछ उठता है कि तुम कौन हो ?—

> **"कौन कौन तुम परिहृत वसना**
> **म्लान मना, भू पतिता सी ?"[१]**

कविवर पन्त बाल-विहगों से विस्मय के साथ पूछ उठते हैं कि तुमने प्रथम रश्मि का भू पर उतरना किस प्रकार पहचाना है और इतना सुन्दर गाना किस प्रकार सीख लिया है ?—

> **"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि; तू ने कैसे पहचाना ?**
> **कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनि; पाया, तूने यह गाना ?"[२]**

पन्त में बाल-भावुकता के आधिक्य के कारण विस्मय की भावना का प्राचुर्य मिल जाता है। शास्त्री में कहीं-कहीं विस्मय की भावना प्रकट होती है। शास्त्री प्रश्न करने लगते हैं कि पुष्प-वल्लरियाँ सौरभ क्यों बिखेरती हैं ? चन्द्रमा चाँदनी क्यों छिटक देता है ? पानी क्यों बहता है और वायु क्यों झोंके मारती है ?

> **"पुष्प-बल्लरी सौरभ क्यों बिखेरती है ?**
> **क्यों छिटका देता है चाँद चाँदनी को ?**
> **बहता क्यों सलिल ? वात क्यों झोंके भरती है ?"[३]**

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १७।
२. वही। पृ० २१।
३. "सौरमुलेल चिम्मु पुष्पव्रजंबु ?
चन्द्रिकल नेल वेदजल्लु जंदमाम ?
ऐल सलिलम्बु पारु ? गाडेपल बिसरु ?"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु : पृ० ३२।

शास्त्रीजी कभी विस्मय से पूछ उठते हैं कि वसन्त में किसलयों को खाकर आम्र डाली पर क्यों कोइल गाता हैं ?

"मधुमास की बेला में खा खा कर पल्लव
आम्र शाखा पर क्यों कोइल गाता है ?"[1]

(२) **विद्रोह की भावना :**—स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा अपने में विद्रोह-भावना का वहन करती है । पंत और शास्त्री में विद्रोह की भावना अनेक रूप धारण करती है । निम्नलिखित दो रूपों में विद्रोह की भावना इन कवियों में प्रकट हुई है—

(च) सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह-भावना, (छ) कला एवं काव्य-रुढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना ।

(च) सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह :—दोनों कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों एवं बन्धनों के प्रति विद्रोह प्रकट किया । दोनों कवि अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का प्रथमत : परिचय देते हुये प्रतीत होते हैं । दोनों ज्योति-विहंग इस समाज की रूढ़ियों से मुक्त होकर कल्पना-पंखों पर अम्बर-वीथियों में उड़ानें भरने लगते हैं । उन्हें समाज की कालिमा से कोई सम्बन्ध नहीं । जब संसार में विद्वान हँसने लगते हैं, तो पंत अपने को संबोधित कर कह उठते हैं—

"हँसते हैं विद्वान,
गीत खग, तुझ पर सब विद्वान ।
दूर छाया-तरुवन में वास,
न जग के हास अश्रु ही पास; "[2]

कवि पंत स्वयं कह उठते हैं कि प्राणों में गान भरते समय उन्हें न अपना ध्यान है, न जगत् का—

"आज मेरे प्राणों में गान ।
मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा, न जग का ध्यान ।"[3]

---

१. "सावि गुन्न कोम्मनु मधुमास वेल
बल्लवमु मेक्कि कोइल पाडु टेल ?"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु : पृ० ३२ ।

२. सुमित्रान्दन पंत : "गीत खग" कविता : पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० १४१ ।

३. सुमित्रानन्दन पंत : "गीत विहंग" से । पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० १४२ ।

शास्त्रीजी भी अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचय इस प्रकार देते हैं--

"हँसने दो उन को, लाज मुझे क्यों ?
केवल मेरी इच्छा मुझ में,
भय से कम्पित हो जाऊं क्यों ?
स्वप्न-विहग-पंखों पर चढ़कर
तारक-मणियों में तारा बन
खो जाऊँगा मधुर गान में ।
हँसने दो उन को, लाज मुझे क्यों ?"[1]

इन दोनों कवियों की उपर्युक्त स्वच्छन्द भावना, (जो स्वयं सामाजिक विद्रोह का एक रूप है) सामाजिक बन्धनों को काटने की शक्ति रखने वाले कठोर विद्रोह के रूप में परिणत हो जाती है । कविवर पंत जड़ समाज की रूढ़ियों तथा बन्धनों को नाश करने के लिये कोकिल को पावक-कण बरसाने का अनुरोध करते हैं---

"गा कोकिल, बरसा पावक कण ।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन ।"

"झरें जाति कुल वर्ण-पर्ण-घन,
अंध नीड़-से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्र-गत-द्वेष-रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण ।"

शास्त्रीजी भी क्रूर एवं कुटिल दास्य शृंखलाओं को तोड़ने के लिये भयंकर गायन करते हैं, जिस की गूँजें जगत् और आकाश में व्याप्त हो जाती हैं--

---

१. "नव्वि पोदुरु गाक नाकेटि सिग्गु ?
ना इच्छये गाक नाकेटि वेरपु ?
कल विहंगम पक्षमुल देलियाडि
तारिका मणुललो दारनै मेलसि
मायमय्येदनु ना मधुर गानमुन ।
नव्विपोदुरु गाक नाकेटि सिग्गु ?
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु :देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री--पृ० ९ ।

२. सुमित्रान्दन पंत : 'पल्लविनी" तृतीय संस्करण—पृ० २२८ ।

"मेरे कंठ-स्रवित स्वच्छन्द गान-झरनों से
भर गया विश्व गूँज उठा अम्बर तल।
विच्छिन्न हुई दास्य-शृंखलायें
जो दूर, कुटिल, कल्पित औ, दुर्दान्त हैं :"[1]

इस प्रकार दोनों कवि सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह प्रकट करते हुये दिखाई पड़ते हैं।

(छ) **कला एवं काव्य-रूढ़ियों के प्रति विद्रोह :**—इन दोनों कवियों ने परम्परागत काव्य-रूढ़ियों का विरोध किया। इन्होंने इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर भावुकता को प्रधानता दी। इन के काव्य में नवीन भावनाओं, नवीन सौन्दर्य-बोध एवं नवीन विचारों का संचार हुआ है, जिन में परम्परागत काव्य-रूढ़ियों को शिथिल करने की अपार क्षमता है। अपने उन्मुक्त भाव-जगत् एवं कल्पना-जगत् की विशेषता के कारण दोनों कवियों ने अपने साहित्यों में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। काव्य-क्षेत्र में किये गये इन कवियों के विद्रोहों को उनके आलोचनात्मक निबन्ध भी समर्थन करते हैं।

पंत और शास्त्री अत्यन्त जागरुक कवि-कलाकार हैं। काव्य के अनेक रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि निरन्तर बनी रही है। उन में कवि भावना का शृंगार करता है तो कलाकार भाषा में निखार ला देता है। दोनों कवियों ने अपनी-अपनी भाषा में नवीन छन्दों की सृष्टि की। लय और गति का दोनों कवियों ने सफलता-पूर्वक प्रयोग किया। परम्परावादी काव्य के अनेक बाह्य नियमों और छन्दों के अनावश्यक बन्धनों को दोनों कवियों ने अस्वीकार किया है।

(ज) **प्रेम-भावना और नारी :**—पंत और शास्त्री मूलतः पावन प्रेम के कवि हैं। इन कवियों में प्रेम-भावना अपने पावनतम रूप में व्यक्त हुई है। वास्तव में प्रेम मनुष्य के रागात्मक हृदय की बाह्य प्रतीति मात्र है। यह प्रेम अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है, जैसे मातृ-प्रेम, भ्रातृप्रेम, देश-प्रेम, दाम्पत्य-प्रेम, प्रेयसि-प्रिय का प्रेम इत्यादि। केवल यहाँ प्रेम शब्द के सीमित अर्थ में (प्रेयसि-प्रिय की तथा पति-पत्नी की प्रणय-भावना तक ही) प्रयोग कर, दोनों कवियों के काव्य-जगत में उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला जाय।

---

१. "क्रौर्य कौटिल्य कल्पित कठिन दास्य
शृंखलेमुलु तमंतने चेदरिपोव
गगनतलमु मामोंगग गंठभेत्ति।
जगमुनिंड स्वेच्छागान झरुल निन्तु।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु : देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री। पृ० ८।

स्त्री-पुरुषों के बीच जो नैसर्गिक आकर्षण है वह परिचय के साथ प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। पंत और शास्त्री-दोनों ने अपनी प्रेयसियों का मनोहर चित्र अंकित कर दिया है। उनके रूपगत एवं मानसिक सौन्दर्य पर दोनों कवि रीझ उठते हैं। पंत की "ग्रंथि", "आँसू", उच्छ्वास", "भावी पत्नी के प्रति", ''अप्सरा'', "नारी रूप" आदि कविताओं में उनकी नारी-भावना अत्यन्त सुन्दर रूप से व्यक्त हुई है। शास्त्री की नारी-भावना उनकी "उर्वशि" नामक कविता-संग्रह में व्यक्त हुई है। इन दोनों कवियों की प्रेयसियों की रूप-कल्पना विचारणीय है--

पंत एवं शास्त्री दोनों की नारी मूर्तियों में पर्याप्त साम्य दिखाई पड़ता है। पंत एक किशोर नवयौवना को अपने स्नेह की अधिकारिणी समझता है। कवि का कथन है—

"सरल शैशव की सुखद-सुधि सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।"--"आँसू"।

शास्त्री की प्रिया भी एक अनाथ बालिका है, जिस में यौवन पूर्ण रूप से उभर आया है--

"वह अनाथ बाला ही मेरी प्रिया है।"[1]

दोनों कवि अपनी उन प्रियतमाओं के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन करते दिखाई पड़ते हैं। पंत की प्रिया का चित्ताकर्षक एवं मनोहारी रूप ''ग्रंथि'' में अंकित हुआ है। नायिका के मुख का सौन्दर्य यहाँ द्रष्टव्य है—

"लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सींप-से।"[2]

शास्त्री अपनी प्रेयसी (अपने काव्य की नायिका) के लज्जाशील सौन्दर्य को इस प्रकार अंकित कर देते हैं--

"वह देखा करती स्वप्न सदा; उसके
तन का लावण्य एक नयन वन
स्वयं अपने को निहारता है"

---

१. "आ अनाथ बालिक प्रियरालु नाकु"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु : श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री—पृ० १२७।

२. सुमित्रानन्दन पंत : ''ग्रंथि'' से। पल्लविनी। तृतीय संस्करण--पृ० ३८।

"उस के यौवन के द्वारों पर डगमग हो
छिप जाता प्रेम लाज के अवगुंठन में"[1]

दोनों कवि अपनी नायिका के मुख-सौन्दर्य के वर्णन के लिए एक ही प्राकृतिक विम्व उपस्थित कर देते हैं। पन्त की नायिका के मुख-चन्द्रमा पर वाल-रजनी की भाँति काली अलक मटक कर डोलती है तो शास्त्री की नायिका के इन्दु-बदन पर से कितने ही बार हटाने पर भी नील-मेघों के उच्छ्वासों-सी प्रतीत होने वाली अलकें डरकर कहीं भी नहीं हटतीं—

"वाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में;"[2] —पन्त

"कितने बार सँवारने पर भी
दृष्टि पथ से जो कभी हटती नहीं
बिखरेंगी क्या प्रिया की ऐसी अलकें
विवश हो नील-मेघ-उच्छ्वासों-सी ।"[3] —शास्त्री

दोनों नायिकाओं का मुख-सौन्दर्य अप्रस्तुत की योजना से अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

दोनों कवियों ने अपनी नायिकाओं या प्रेयसियों के (काल्पनिक ही सही) मानसिक सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। पन्त की नायिका मुग्धा है और वह लज्जाशील, एवं संकोचशील भी है। उन्हीं के शब्दों में—

---

१. "आमे स्वप्नालु कनु नेप्पु; डामे मेनि
तलिरु लावण्य मोक्क नेत्रमुग विरिसि,
वेरगु चूपुल तनुदाने यरसिकोनुनु ।
"आमे प्रार्थिंपु वाकिलुलन्दु वलपु ।
तडवडि यडंगु सिग्गु दोन्तरल तेरल ।"
——"उर्वशि" से : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु : दे० कृष्णशास्त्री—— पृ०१२७ ।

२. सुमित्रानन्दन पंत : "ग्रन्थि" । पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० ३८ ।

३. "ऐन्निमारुलु सर्वरिंचु कोन्न चूपु
तोलगवेमो यलमुनेमो नेल मोगान
चेदरुने वेदरि देदरि चेलिय कुरुलु
जालिगा नीलमेघनिश्वासमु लट्टु ।"
"उर्वशी" से : श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृतुलु—पृ० १३७ ।

"कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव
सरल संकेतों में संकोच
मृदुल अधरों में मधुर दुराव।
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास ;
चाँदनी का स्वभाव में सास
विचारों में बच्चों के साँस।"[1]

उपर्युक्त वर्णन में किशोरी का आकर्षक एवं स्नेहमय व्यक्तित्व अपनी आन्तरिक सुषमा के साथ नयनों के सम्मुख थिरक उठता है। शास्त्री के अपनी नायिका को उर्वशी कहने पर भी, वह उसकी प्रेयसी के अतिरिक्त और कोई नहीं है। उसका मानसिक सौन्दर्य उसकी चेष्टाओं द्वारा व्यक्त हुआ है अतः उसके स्वभाव का आभास "उर्वशी" की पंक्ति-पंक्ति में मिल जाता है। शास्त्री जी ने अपनी प्रेयसी की कल्पना उर्वशी के रूप में की है। कवि उसकी अनन्त भंगिमाओं एवं हृदय की भावनाओं का व्यक्तिकरण करता है। "उर्वशी" कवि की प्रेयसी होते हुए भी चिरन्तन विश्व-प्रिया प्रेम-स्निग्ध नारी भी है। वह "चिरवियोगिनी भी हूँ मैं, चिर प्रेयसी भी हूँ"[2] कहकर अपनी चिरन्तनता का परिचय देती है। कवि उसके विरह में व्याकुल हो उठता है अतः शास्त्रीजी की "उर्वशी" उनकी एक अनमोल सृष्टि एवं एक मधुर भावना है। पंत के काव्य में और दो नारी-मूर्तियों का चित्रण मिलता है। कवि की भावुक कल्पना-प्रसूत "भावी पत्नी" तथा "अप्सरा" अपने दिव्य अलौकिक सौन्दर्य तथा आकर्षण से आपूरित हैं। पन्त ने इन मूर्तियों में आदर्श नारी की कोमल कल्पना को साकार कर दिया है। शास्त्री की "उर्वशी" एवं पन्त की "भावी पत्नी" उन कवियों की काल्पनिक प्रेयसियाँ हैं। परन्तु पन्त की "भावी पत्नी" से कहीं अधिक शास्त्री की "उर्वशी" उनके जीवन के यथार्थ को सार्थक कर लेती है। पन्त और शास्त्री की इन नारी-मूर्तियों में अन्तर यह है कि पन्त जहाँ "भावी पत्नी" के शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्य का चित्रण एक कुशल शिल्पी की भाँति करता है, वहाँ शास्त्रीजी "उर्वशी" के सौन्दर्य को उत्प्रेक्षाओं से व्यक्त करते हैं और उसके साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध प्रकट करते हैं। पंत की "भावी पत्नी" में यौवन के उभार के साथ उसके मुग्धा नववधू का रूप अंकित हुआ है। उसके अन्तर में अपने प्रिय से मिलने की उत्कट अभिलाषा रहती है। शास्त्रीजी की प्रेयसी "उर्वशी" एक करुणा की मूर्ति है। वह कवि को चिरन्तन वियोग में डाल देती है। कवि सौन्दर्य एवं करुणा की मूर्ति एवं

१. सुमित्रानन्दन पन्त ; "आँसू" से। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ७७–७९।
२. "भावी पत्नी के प्रति" : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी तृ० सं०। पृ० १४५।

आराध्य देवी "उर्वशी" की स्नेहपूर्ण सहानुभूति के भार से दब जाता है। पन्त की भावी पत्नी "लाज में लिपटी उषा समान" दिखाई पड़ती है तो शास्त्री जी की "उर्वशी" वर्षा एवं शरद ऋतुओं के संगम में प्रकट होने वाली सन्ध्या-कुमारी[1] के समान दृष्टिगोचर होती है। पन्त की भावी पत्नी "मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार, अधोमुख अरुण सरोज"[2] के समान लज्जाशील है तो शास्त्री जी की "उर्वशी" की आँखों में अनन्त अम्बर की नील छायायें फैली हुई हैं[3] पन्त की अप्सरा और शास्त्रीजी की "उर्वशी" में समानता के साथ भिन्नता भी लक्षित होती है। दोनों स्वर्ग की अप्सरायें होते हुये भी कवियों की कल्पना में नया जन्म लेकर इस जगत की हो गयी हैं। पन्त की अप्सरा कवि की स्वतन्त्र सृष्टि है। वह तटस्थ द्रष्टा होकर उसकी विभिन्न भंगिमाओं का चित्रण एक कुशल शिल्पी की भाँति करता है। इसके विपरीत शास्त्रीजी की "उर्वशी" स्वर्ग की अप्सरा होते हुये भी कवि की प्रेयसी है और उसके साथ कवि का रागात्मक सम्बन्ध प्रमुख रूप से पाया जाता है। परन्तु दोनों अप्सरियाँ इन्द्र लोक में अपना नाट्य-वैभव दिखाकर इन कवियों की कल्पना में पुनः साकार हो उठती हैं। पंत की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनकी अप्सरा तथा शास्त्री जी की 'उर्वशी' के लिये भी उपयुक्त लगती हैं—

"तुम्हें खोजते छाया वन में
अब भी कवि विख्यात,"[4]

"अप्सरा" एवं "उर्वशी" के व्यक्तित्वों को दोनों कवियों ने अत्यन्त वायवीय बना दिया है। उनके सौन्दर्य में स्वप्न की सुकुमारता, नक्षत्रों की उज्ज्वलता अवश्य वर्तमान है, परन्तु उनमें पार्थिकता या मांसलता का सर्वत्र अभाव दीखता है। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों ने अपनी इन आदर्श नारी मूर्तियों को प्राकृतिक लिवास पहना दिया है। दोनों ने इस अवसर पर सूक्ष्मतम कल्पना से काम लिया है। पन्त की अप्सरा युवती के उर में रहस्य बनकर प्रतिक्षण मन हरती है, स्वर्गंगा में जल-विहार

---

१. "नीवु वर्षाशरत्तुल निबिड संग
 मधुन बोडमिन सन्ध्या कुमारि ......"
 —"उर्वशी" से-श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्र कृतुलु—पृ० १११।

२. "भावी पत्नी के प्रति" से : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी : तृतीय संस्करण पृ० १४२।

३. "आमे कन्नुललो नन्नताम्बरम्पु।
 नीलि नीडलु कलवु;"
 —"उर्वशी" से : श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु : पृ० १२५।

४. "अप्सरा" से : सुमित्रानन्दन पन्त —पल्लविनी" तृतीय संस्करण —पृ० १६७।

करती है और उसके बाहु-मृणालों को पकड़ कर इन्दु-विम्ब के असंख्य रजत-मराल तैरते हैं। उसके पश्चात् कवि की अप्सरा और भी सूक्ष्म एवं रहस्यमय बनती चली गयी है। कवि के ही शब्दों में--

"तुहिन बिन्दु में इन्दु रश्मि सी सोई तुम चुपचाप
मुकुल शयन में स्वप्न देखती निज निरुपम छवि आप;
चटुल लहरियों से चल चुम्बित मलय मृदुल पद चाप,
जलजों में निद्रित मधुपों से करती मौनालाप।"[1]

शास्त्रीजी की "उर्वशी" वर्षा एवं शरत् ऋतुओं के संगम में निकलने वाली सन्ध्या कुमारी है, वह तिमिर-निश्वासों से त्रस्त एवं शिथिल होने वाली रजनी के वियोग-पाण्डुर कपोल के समान है।[2] वह निशा के नील ओठों पर उच्छ्वास बनकर फैलती है, नवल प्रभात के अंचल में परिचित वचन-सी छा जाती है।[3]

इस प्रकार पन्त की "अप्सरा" एवं शास्त्रीजी की "उर्वशी" उनकी सौन्दर्य-प्रिय एवं कल्पनाशील प्रतिभा की अमर सृष्टियाँ हैं।

पन्त और शास्त्री की प्रेम-भावना में समानता दिखाई देती है। दोनों कवियों ने अपने काव्य में स्वच्छन्द प्रेम का अंकन किया है। इन कवियों में प्रेम भावना अपने पावनतम रूप में व्यक्त हुई है। पन्त और शास्त्री की प्रेयसियाँ (काल्पनिक ही सही) उन पर प्रेम की वर्षा करती हैं। पन्त की प्रेयसी नाव-दुर्घटना से बचाकर उसकी सेवा करती है। कवि से उसका प्रेम हो गया है और कवि भी उस पर मुग्ध हो गया। उस किशोरी के हाव भावों से उसका प्रेम प्रकट हो जाता है—

"शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से।"[4]

---

१. "अप्सरा" से : सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० १६८

२. "नीवु वर्षाशरत्तुल निबिड संग
मबुन वोडमिन सन्ध्या कुमारि, वीवु
तिमिर निश्वाससुलु सूसि कुसुलु शर्व
रीवियोग कपोल पालिकवु........
—"उर्वशी" से श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु" दे० कृ० शास्त्री। पृ० ११८

३. "निशिनीलि पेदविपै निट्टूर्पगाग्रांकि
तोलि प्रोद्दु चेरगुलो पलुकेरितग सोकि....."—वही-पृ० १२१।

४. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ३७--३८

शास्त्री की प्रेयसि उर्वशी भी कवि से प्रेम करती है। कवि के वियोग में वह अत्यन्त विकल है। वह स्वयं कहती है—

"प्रथम वियोगिनी भी हूँ मैं
प्रथम प्रेयसी भी हूँ मैं
औ' चिरन्तन काल तक भी मैं तुम्हारी हूँ।"[1]

कवि का भी कथन है कि प्रेयसी उर्वशी ने अनुराग की दृष्टि से देखकर उसमें प्रेम भावना का संचार किया है।

पन्त और शास्त्री अपनी प्रेयसियों से अनन्य अनुराग रखते हैं। दोनों कवि प्रेम की तीव्रता का अनुभव करते हैं। यह स्वाभाविक है कि प्रेमी अपने हृदय को अपनी प्रिया को अर्पित कर देता है और प्रेम करने के पश्चात वह अपने में खोया-सा रह जाता है। पन्त का भी यही कथन है कि कोई प्रेम के मार्ग में चलकर अपने हृदय को साथ नहीं ला सकता। यह स्वयं कवि का स्वानुभव-जन्य निष्कर्ष है—

"रसिक वाचक। कामनाओं के चपल,
समुत्सुक, व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण वीथी में, विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला ?"[2]

उसके पश्चात् कवि प्रेम के स्वभाव पर विचार करता है। वह उसे अत्यन्त निरीह और भोला समझता है। इसका कारण स्वयं कवि यों बताते हैं—

"और भोले प्रेम। क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।
पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे, हृदय को छीन कर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में।"[3]

---

१. "तोलि वियोगिनि नेने।
तोलि प्रेयसिनि नेने।
आनाटि कीनाटि केनु नीदानने।"
—""उर्वसि" से : दे० कृष्णशास्त्री। श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० १२१।
२. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४०।
३. वही—पृ० ४५।

शास्त्री अपनी प्रिया के प्रेम में इतना पागल हो गया है कि उनका हृदय निरन्तर प्रियतमा की निकटता चाहता है और कवि के मुँदे हुये नयनों में मुस्कुराती हुई मूर्ति खड़ी हो जाती है—

"मुँदे नयनों में मेरे, विश्व-मोहिनी
मनोहारिणी मूर्ति खड़ी मुसकानें बिखेरती ।"[1]

पंत की धारणा है कि विश्व भी प्रिया के पावन स्थान को कभी भर नहीं सकता । यदि प्रिया के प्रेम से व्यक्ति वंचित हुआ तो विश्व का सम्पूर्ण विभव उस कमी की पूर्ति नहीं कर सकता । कवि प्रेम को महान गौरव का स्थान प्रदान करता है । उनके शब्दों में—

त्रिभुवन की भी श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को ।"[2]

शास्त्री का भी कथन ठीक यही है । वे कहते हैं, "हे ! प्रिया हमें सार्वभौमिक विषयों की आवश्यकता क्यों ? हम एक दूसरे के हृदयों के शासक बनेंगे । पावन प्रेम-साम्राज्य के अधिकारी बनने के पश्चात् लघु वैभवों का क्या मूल्य है ?—

"चाहिए हमें क्यों सार्वभौमिक वैभव ?
बनेंगे हम एक दूसरे के उर के शासक ।
पावन प्रेम-राजन्-प्रभुता के सम्मुख
लघु विभवों का क्या अस्तित्व रहा ?"[3]

पंत और शास्त्री में कभी-कभी आदर्श एवं अतीन्द्रिय प्रेम-भावना (Platonic love) का दर्शन होता है । वे विश्व के हर एक अणु में तथा व्यापक कर्म में प्रेम-तत्व की प्रधानता पाते हैं । इनके अनुसार प्रेम-भावना से ही सारा विश्व परिचालित होता है । कविवर पंत प्रेम के अस्तित्व को सर्वत्र पाते हैं—

---

१. "कनुलु मूसिन, लोक मोहन मनोज्ञ
मूर्ति चिरुनव्व् जिलुकुचु म्रोल निलुचु"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु । पृ० ३८ ।

२. "आँसू" से : सुमित्रानन्दन पंत । पल्लविनी । तृतीय संस्करण– पृ० ७९ ।

३. सार्वभौम भोगमुलेल चान, मनकु ?
एलिकल मौदु मन्योन्य हृदयमुलकु ।
प्रविमल प्रेम साम्राज्य पट्टभद्र
भाग्यमुंगन्न जिरुत सम्पद लवेल ?"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृष्ठ ३२ ।

"कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस सा सब के उर में ।
यही तो है बचपन का हास
खिले यौवन का मधुर विलास
प्रौढ़ता का वह बुद्धि विकास
जरा का अंतर्नयन प्रकाश ;
जन्मदिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास !"[1]

शास्त्री कहते हैं कि प्रेम-भावना विश्व की हर वस्तु में तथा उसके क्रिया-कलापों में व्यक्त होती है। हर एक वस्तु के मूल में प्रेम-तत्व ही कार्य करता है। कवि प्रकृति के हर एक दृश्य में प्रेमाभिव्यक्ति का ही दर्शन करता है। कवि अपनी प्रेयसी से यों कहता है—

"पुष्प-वल्लरी-सौरभ क्यों बिखेरती है
क्यों छिटका देता चाँद चाँदनी को ?
बहता क्यों सलिल ? बात क्यों झोंके मरती है ?
हृदय मेरा क्यों तुझे है प्रेम करता ?"[2]

इन दोनों कवियों की उपर्युक्त प्रेम-विषयक धारणा पर अंग्रेजी कवि शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

(४) रहस्य भावना :—पन्त और शास्त्री में रहस्यात्मकता अधिक नहीं मिलने पर भी कहीं-कहीं उसकी झलक अवश्य मिल जाती है। परन्तु उनकी रहस्य भावना अत्यन्त स्वाभाविक है और वह परम्परा-प्राप्त रहस्यवाद (Mysticism) से सर्वथा भिन्न है। ये दोनों कवि विश्व-व्याप्त किसी अव्यक्त एवं अज्ञात सत्ता के रहस्यात्मक संकेतों के प्रति अत्यन्त जागरुक रहे हैं। दोनों कवि अपने संवेदनशील हृदय से यह अनुभव करते हैं कि कोई अव्यक्त रहकर उनका दिशा संकेत कर रहे हैं। पन्त की "वीणा" में तथा शास्त्री की "प्रवासमु" में रहस्यात्मकता मिलती है। 'मौन-निमन्त्रण' कविता में पन्त की रहस्यात्मक वृत्ति का प्रकाशन हुआ है। विभिन्न सुरम्य प्राकृतिक वर्णनों के पीछे कवि कुछ रहस्यमय संकेतों को पाता है। ज्योत्स्नामयी निशा में नक्षत्रों से निमन्त्रण देने वाले को, पावस के सघन घन-प्रसूत सौदामिनी से इंगित करने वाले

---

१. "उच्छ्वास" से : सुमित्रानन्दन पंत। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ६७।
२. "सौरभमु लेल चिम्मु बुज्पब्रजम्बु ?
चन्द्रिकलनेल वेदजल्लु जंदमाम ?
ऐल सलिलम्बु पारु ? गाड्पेल विसरु ?
ऐलि नाहृदयम्बु प्रेमिंचु निन्नु ?' —देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ३२।

को, मधुमास के सौरभ द्वारा संदेश भेजने वाले को, क्षुब्ध सागर की लहरों से बुलाने वाले को, तुमुल तम में खद्योतों के द्वारा पथ दिखलाने वाले सुख-दुख के सहचर को कवि जान नहीं पाता कवि के ही शब्दों में—

"स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान ;

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझ को मौन ।"[1]

शास्त्रीजी पूछते हैं कि इस निशीथ में उड़कर छाया की भाँति रुककर, मूक-आँखों को भार सदृश लगने वाली दृष्टियों से कौन मुझे पुकारते हैं ? —

"इस निशीथ में उड़कर, छाया-सी रुककर
दृष्टि-भार से दबे मूक नयनों से
पुकारते हैं कौन मुझे ?"

इसी तरह दोनों कवियों के काव्य में रहस्य की सामान्य भावनायें प्राप्त होती हैं ।

(५) भक्ति-भावना :—पन्त और शास्त्री—इन दोनों कवियों में ईश्वर पर अपार विश्वास है । दोनों कवि कभी-कभी अपनी आत्म-शान्ति के लिये ईश्वर की शरण में जाना चाहते हैं । लौकिक प्रेम में विफल होकर दोनों कवि अनन्त वेदना एवं विरह-जन्य दुख का अनुभव करते हैं और ईश्वर के सम्मुख अपनी अभिलाषायें व्यक्त करते हैं । परन्तु दोनों कवि भक्त के रूढ़ अर्थ में भक्त नहीं । ईश्वर केवल उनकी मानसिक भावनाओं के प्रकाशन के लिए एकमात्र आलम्बन है । वह इन कवियों के आत्म-समर्पण की वेदी है और उनके सुख-दुख का सहचर भी है । पंत ऐसे ईश्वर से जग के उर्वर आँगन में ज्योतिर्मय जीवन बरसाने की प्रार्थना करते हैं—

---

१. "मौन निमन्त्रण" से : सुमित्रानन्दन पन्त । "पल्लविनी" तृतीय सं० । पृ० १११ ।

२. "ऐव रोहो, ईनिशीथि नेगसि, नीड बोले निलिचि ।
पिलुतु रेवरो, मूगकनुलु मोयलेनि चुपुलतो
ऐव रोहो ! ऐव रोहो ।"

—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु । पृ० ११२ ।

"जग के उर्बर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन ।
बरसो लघु लघु तृण तरू पर
है चिर अव्यय, चिर नूतन ।"[1]

शास्त्रीजी भी जीवन में अनन्त पीड़ा का अनुभव कर, उसे ईश्वर के सम्मुख विह्वल होकर प्रकट करते हैं। कवि वेदना की मार से चीख उठता है, जो ईश्वर के भक्त-गीत के रूप में परिणत हो जाती है।[2] कवि भगवान के पद-पंकजों के स्पर्श से आँसू को जान्हवी के समान पावन बनाने की अभिलाषा व्यक्त करता है—

"कलुष दुर्दान्त पक-कुहर से
उमड़ी मलिन अश्रु-धारा मेरी
जो वह स्वामि ! तुम्हारे पदतल
में पाती गंगा की शोभा ।"[3]

इस प्रकार पंत और शास्त्री में भक्ति-भावना की झलक भी पायी जाती है। इस दिशा में इन कवियों पर रवीन्द्र का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(६) अनुभूति-पक्ष :—पन्त और शास्त्री अत्यधिक संवेदनशील कवि हैं। अनेक मार्मिक अनुभूतियाँ इन कवियों की अमर वाणी में व्यक्त हुई हैं। इन्होंने अपने जीवन के हास-अश्रु, आशा-निराशा एवं सुख-दुख की अनुभूतियों को प्रकट किया है। स्वभाव की दृष्टि से अनुभूति को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—(क) सुखात्मक अनुभूति, (ख) दुखात्मक अनुभूति। मानव-जीवन की सभी अनुभूतियाँ संवेदनायें तथा वृत्तियाँ इन दोनों शीर्षक के अन्तर्गत आ जाती है। पन्त और शास्त्री के काव्य में इन दोनों प्रकार की अनुभूतियों के अध्ययन की आवश्यकता है।

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृतीय संस्करण पृ० १३६।

२. "ने नेदो भक्त कविनि कानु।
मीरनुकुनेंत भक्तुण्णी कानु।
ऐप्पुडो हृदयावेदन भरिंच नप्पुडु केक पेडतानु।
आदि कीर्तन अवुतुन्दि।"
—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री "आन्ध्र प्रभा" (साप्ताहिक) १०-७-६३। पृ० ६।

३. "कलुदुर्दान्त पंकसंकलित कुहर
मुल जनिंचु मदीयाश्रु मलिन धार
स्वामि, भवदीय पाद देशमुन वारि
परम पावन जाह्नवी प्रीतम गाँचु।"
—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ७५।

(क) सुखात्मक अनुभूति :--सुखात्मक अनुभूति मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है—मिलन की अनुभूति एवं सौन्दर्यानुभूति ।

(१) मिलन की अनुभूति :—नारी और पुरुष के बीच जो मिलन है, वह दोनों में अपार सुख का संचार करता है। एक दूसरे के बाहुपाशों में आबद्ध नारी-नर सम्पूर्ण विश्व की भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर एक दिव्य एवं सुखद लोक में पहुँच जाते हैं। ऐसी सुखात्मक मिलन की अनुभूति का वर्णन कवियों ने अत्यन्त मनोहर रूप में किया है। इस अनुभूति का वर्णन पन्त में कहीं-कहीं मिलता है। कभी कवि विश्व के स्त्री-पुरुषों के स्वभाविक मिलन का अंकन करता है[1] तो कभी अपनी मिलनानुभूति को विह्वल होकर प्रकट करता है कवि अपनी "प्रथम मिलन" नामक कविता में लिखता है कि मंजरित आम्रवन की छाया में प्रथम बार कवि और उसकी प्रेयसी का मिलन इस प्रकार हुआ था—

"मर गए गन्ध से मुग्ध प्राण ।
तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद ।"[2]

परन्तु शास्त्री के काव्य में मिलन-जन्य सुखानुभूति का अंकन अधिक नहीं मिलता ।

(२) सौन्दर्यानुभूति :—विश्व का हर एक प्राणी सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हो जाता है। सौन्दर्य का मुख्य गुण आकर्षण है। इस तरह का आकर्षण मानव में सुख संचार करता है। इस प्रकार की सुखानुभूति स्वभाव से अत्यन्त दिव्य एवं उदात्त होती है। विशेष रूप से सौन्दर्य दो माध्यमों के द्वारा प्रकट होता है और वे हैं नारी और प्रकृति। पन्त और शास्त्री ने उपर्युक्त दोनों के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका अंकन किया है।

---

१. निखिल जब नरनारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव बार;
अधर-उर से उर-अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान ।"
—सुमित्रानन्दन पन्त । "भावी पत्नी के प्रति" कविता से । पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० १४६ ।

२. सुमित्रानन्दन पंत : "भावी पत्नी के प्रति" कविता से । पल्लविनी—तृतीय संस्करण । पृ० १४४ ।

(क) नारी :--पन्त और शास्त्री नारी के स्वर्गिक सौन्दर्य से अत्यन्त अभिभूत हुए हैं। उसके सौन्दर्य के दर्शन से जो आनन्द और सुख का उन्होंने अनुभव किया है, वह उनकी वाणी में व्यक्त हुआ है। कविवर पन्त ने "ग्रन्थि" में अपनी प्राण-प्रिया मुग्धा किशोरी के सौन्दर्य को देखकर अत्यधिक सुख एवं आनन्द का अनुभव किया है। कवि के ही शब्दों में उसका सौन्दर्य द्रष्टव्य है--

"लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से।
(इन गढ़ों में-रूप के आवर्त-से--
घूम फिर कर, नाव-से किस के नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटक कर
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?)
सुभग लगता है गुलाब सहज सदा,
क्या उषामय का पुनः कहना भला ?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेब की चिर सरसता, सुकुमारता ?"[1]

इस प्रकार कवि पन्त नारी-सौन्दर्य के विविध पहलुओं के दर्शन से उत्पन्न सुखानुभूति में डूब जाता है। "भावी पत्नी के प्रति" "अप्सरा" में भी कवि नारी के पावन एवं रहस्यमय सौन्दर्य पर रीझ उठता है। शास्त्री भी अपनी "उर्वशी" के सौन्दर्य को निहार कर अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है। प्रेयसी "उर्वशी" के सौन्दर्य से कवि इतना अभिभूत हो जाता है कि उसके सौन्दर्यांकन के हेतु कवि को लौकिक उपकरण अनुपयुक्त लगते हैं। अतः वह उत्प्रेक्षा का सहारा लेकर कह उठता है कि "उर्वशी" तुम त्रिभुवन के स्वामी के असंख्य दिव्य रत्नसमूह पर शासन करने वाले वज्रों के हार हो[2] कवि यह भी कह देता है कि उसकी सुन्दर मूर्ति के चरणों से स्रवित होने वाली करुणा के मधुकण के मिलने पर कवि तीन लोकों के सुख को एक

---

१. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी। तृ० सं०। पृ० ३८--३९।

२. "त्रिजगतीपति कोटीर दिव्यरत्न
राजि नेलु वजाल तुराइ बीवु"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु-श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री— पृ० ११७।

गांठ में समेट कर फेंक देने के लिए नहीं हिचकता।[1] इस तरह पन्त और शास्त्री नारी-सौन्दर्य पर मुग्ध हुये हैं और उनके काव्य की मूल प्रेरणाओं में यह पहलू विशेष स्थान प्राप्त करता है।

(२) प्रकृति :—अनादि काल से प्रकृति मानव की चिर सहचरी रही है। मानव प्रकृति के बीच रहकर अनन्त आनन्द का अनुभव करता है। मानव के संवेदनशील हृदय ने प्राकृ.ि.क सौन्दर्य को काव्य में भी चित्रित कर दिया है। पन्त और शास्त्री ने भी प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका चित्रण अपने काव्य में किया है। प्रकृति के सुषमापूर्ण दृश्यों को देखकर दोनों कवि असीम सुख का अनुभव करते हैं। वे उन दृश्यों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। पन्त प्रकृति के हर एक अणु के साथ समरसता प्राप्त करता है। कवि प्रकृति के सुरम्य दृश्यों को छोड़कर कहीं और जाना नहीं चाहता। वह आनन्द विभोर होकर वसन्तऋतु की प्राकृतिक शोभा का चित्रण इस प्रकार करता है—

"डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण, व्रतति-कुन्ज, तरुपात,
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात
गुन्ज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम-गात।
खोलने लगी, शयित चिरकाल,
नवल कलि अलस पलक दल जाल,
बोलने लगी, डाल से डाल
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल बाल।"[2]

कृष्णशास्त्री भी प्राकृतिक वस्तुओं में विलीन होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मिटाना चाहता है। प्रकृति का सौन्दर्य उसे मोह लेता है। उससे कवि में सुख एवं हर्ष का संचार होता है। कवि की कामना है—

---

१. "उर्वशी ! प्रेयसी ! नेडो, युष्मदीय
चरणं करुणामधुकणम्मे दोरकु नेमो,
मूडु लोकाल सुख मोक्क मुडि निमिडिच
क्सिरलेनो कालांतमे वेतुक प्राक।"
—श्री कृष्णशास्त्री–देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ११९।

२. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लविनी। तृतीय संस्करण—पृ० १५५—१५६

"पात में पात बन, फूल में फूल बन
डाल में डाल बन, कोमल किसलय बन
छिप जाऊँ मैं इस कानन में ?"[1]

पन्त और शास्त्री ने प्राकृतिक सौन्दर्य-जन्म सुखानुभूति को अपने काव्य में अनेक अवसरों पर व्यक्त किया है।

(ख) दुखात्मक अनुभूति :– दोनों कवियों के काव्य में दुःख की अनुभूति को विशेष स्थान प्राप्त हो गया है। पन्त और शास्त्री में दुखानुभूति की अभिव्यक्ति तीन प्रकार से हुई है। प्रथमतः दोनों कवियों ने असीम सत्ता के सम्मुख निराशा एवं दुख का प्रकाशन किया है। "वीणा" के कवि पन्त में "कृष्ण-पक्षमु" के कवि शास्त्री में ऐसी दुखानुभूति मिल जाती है। द्वितीयतः दोनों कवियों ने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से निराशा एवं दुख को अभिव्यक्त किया है। इन्होंने अनेक स्थलों पर दुखानुभूति को व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ पन्त ने अपनी "परिवर्तन" कविता में प्रकृति के माध्यम से दुखानुभूति की अभिव्यंजना की—

"अचरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश"[2]

शास्त्री भी अपने दुख की अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं तो प्रकृति की सभी वस्तुयें उस पर सहानुभूति दिखाती हैं। कवि का कथन है कि निशा के उदर में अन्धकार की छाया की भाँति, तन के उर में उलूक के गीत की भाँति वह भी अपने विषाद में छिप गया है।[3]

---

१. "आकुलो नाकुनै पूवुलो बूवुनै
कोम्मलो गोम्मनै नुनुलेत रेम्मनै
ई यडवि दागि पोना ?"
—श्री दे० कृ० शास्त्री—श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृतुलु—पृ० ५।

२. "परिवर्तन" से : सुमित्रानन्दन पंत। "पल्लविनी" तृ० सं०—पृ० ११९।

३. "रेयि कडुपुन चीकटि चायवोले,
तमसु टेडद दिवांघ गीतमु विधान
....................."
नाविषादम्मुवो दागिनाड नेने।"
—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु। पृ० ११०।

परन्तु इन दोनों कवियों की दुखात्मक अनुभूति का मूल स्रोत प्रणय-निराशा है। पन्त और शास्त्री अपने वैयक्तिक प्रेम में विफल होकर आँसू बहाते हैं। शास्त्री का काव्य आद्यन्त दुख के आँसुओं से गीला है तो पन्त के काव्य में दुखानुभूति समय-समय पर व्यक्त हुई है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि पन्त-काव्य की मूल प्रेरणा भी करुण एवं दुख की अनुभूति ही है, यद्यपि और स्थानों में आवेश एवं सुखात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है। पन्त और शास्त्री की प्रणय-निराशा एवं दुखानुभूति में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। पन्त कहना है कि उसके समक्ष ही प्रियतमा का ग्रन्थि-बन्धन हो गया—

"हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"[1]

शास्त्री के स्वच्छ प्रणय की सलिल-धारा से सिंचित फूलों की स्नेहलता सौरभ बिखेरने के पूर्व ही वात-हता होकर धरणी पर गिर पड़ी है।—कवि के ही शब्दों में—

"स्वच्छ प्रणय की जल-धारा से
पुष्पों की स्नेह लता पालित
गिरी धरणि पर वातहता हो
बिना बिखेरे सौरभ............"[2]

पन्त और शास्त्री प्रणय की विकलता पर रोदन करने लगते हैं और पीड़ा के भार से दबे हुये विकल हृदयों से आंसू की धाराएँ उमड़ पड़ती हैं। दोनों कवि अपने हृदयों से किसी निर्जन कानन में बैठकर अश्रु बहाने के लिये कहते हैं—पन्त का उद्‌गार है—

---

१. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी। तृतीय संस्करण। पृ० ४२।

२. "स्वच्छमैंनट्टि प्रणयंपु सलिल धार
बोसि पेंचिन स्न्रहंपु वूलतीव
तावुलनु जिम्मु नलरुल दाल्चकुण्ड
गालिताकुन नेलप वालेनकट।"

—श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृतुलु—पृ० ४५।

"पर हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
मग्न भावी को डुबा दे आँख-सी ।"[1]

शास्त्री ने भी ठीक इसी भावना की अभिव्यक्ति की है—

"एकान्त यवनिका के अन्तर में
सिसकी भर कर रोऊँगा—
दुर्भर दुख की विषम-गीति में
बिन विराम के फूट पड़ूँगा ।"[2]

दुख की अनुभूति में दोनों कवि सुधबुध खो देते हैं । उन्हें सम्पूर्ण विश्व दुख के भण्डार के रूप में दिखाई पड़ता है । पंतजी कहते हैं कि संसार का यही नियम है । एक ओर मधुप कमल में विंध कर तड़पता है तो दूसरी ओर चातक जलकण के लिये तरसता है । इसके लिये कवि किसी को भी दोषी नहीं ठहराता और यह कह कर सान्त्वना पाता है कि संसार में यही नियम है और उसका यही न्याय है—

"कौन दोषी है ! यही तो न्याय है ।
वह मधुप बिन्धकर तड़पता है, उधर
दग्ध चातक तरसता है--विश्व का
नियम है यह, रो अभागे हृदय रो ।"[3]

कृष्णशास्त्री की दुखानुभूति अनन्त एवं अपरिमेय है । प्रणय-निराशा-जन्य दुख से कवि का जीवन विषाक्त बन जाता है और वह जीवन से ही विरक्त हो जाता है । वह दुख के भार को वहन कर नहीं सकता ।[4] वह अत्यन्त दीन बनकर छाया की

१, "ग्रन्थि" से । सुमित्रानन्दन पन्त । पल्लविनी । तृतीय संस्करण । पृ० ४३ ।

२. "... . नेकान्त यवनिकाभ्यन्तरमुन
नेक्कि वेक्कि रोदिन्तुनु–विसुगुलेक
विरति लेक दुर्भरशोक विषम गीतु
लेड्चि वैतु; एलुगेत्ति येड्चि वैतु !"–देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ६६ ।

३. "ग्रन्थि से : सुमित्रानन्दन पन्त--पल्लविनी--तृतीय संस्करण—पृ० ४८ ।

४. "... ....निक जीविप नेल सखुड़ ?
यलपे विष मै दुच्छजीवनमु विषमु"
—श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृतुलु—पृष्ठ ४३ ।

भाँति सिमटकर ठूँठ या पत्थर बनना चाहता है।[1] कवि कभी-कभी दुख की दाहक अनुभति से दूर भागना चाहता है। वह सान्ध्य-समीरण से याचना करता है कि रात एवं अन्धकार के साथ दुख भी मेरे पास दौड़कर आ रहा है। अतः तुम मुझे अपने कोमल पंखों पर लेकर किसी नित्य तेजोमय आनन्द-धाम में ले जाओ।"[2] कभी-कभी कवि अपने को अनन्त भयद शोक के तिमिर-लोक का स्वामी मानता है। वह कण्टक-मुकुट धारण कर अर्ध-रात्रि के समय बादल-दल के बीच गोष्ठी का आयोजन कर दारुण उलूकों की रुदन-ध्वनियों से ताल मिलाते हुए उमड़ते हुए दुखद गीतों का आलाप करने लगता है।[3] कवि की दुर्दान्त विरह-वेदना एवं दुखानुभूति आकाश को भेदकर चल जाती है तो उस पर तारे और अन्धकार भी करुणा दिखाते हैं।[4] शास्त्री में दुख अनेक रूपों में प्रकट हुआ है।

---

१. "एनो दीनुडने नीडनैने नोदिगि
प्रोडनै राइनै निल्चिपोडु नकट"--श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु-पृ० ४२।

२. "ओयि सन्ध्यासमीरणा, रेयि तोड
गारुचीकटि तोड़ दुःखम्मु कूड
परुवु परुवुन नाकोरकरुगु देंचु;
नीदु मुनुलेत रेपकल भीव वडिग
नेत्ति कोनि पोवरादे नन्नेच्चडिकेदि
नित्य तेजो मयानन्द निलयमुनकु।"
--श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु-पृष्ठ ६०।

३. -- ए ननन्त
शोक भीकर तिमिर लोकैक पतिनि।
कंटक किरीट धारिनै, काल रात्रि
मध्यवेलल, जीमूत मन्दिरंपु
गोलुवु कूटाल, नेकांत गोष्टि दीर्चि
दारुण दिवांध रोदध्वनुल श्रुतुल
बोंगे युप्पोंगि युप्पोंगि पोरलि गोवु
नाविलाप निबिड गीतिकावली.............."
--श्री देवुलपल्लिकृष्णशास्त्री कृतुलु—पृष्ठ ६३।

४. अन्त ना गोन्तुलो "हा प्रिया" यनु केक
अन्तन्त दिवि केगे, अन्तन्त दिगिपोये;
तारले कनुविञ्चि तममुले श्रुतिविच्चि
आरवमु विनि नन्नु गनि जालि नोन्दायि।"
--श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृ० ६२।

पन्त और शास्त्री वेदना, निराशा एवं दुख से जर्जरित होकर वेदना के स्वरूप पर विचार करने लगते हैं। वेदना की अनुभूति से स्थायी सम्पर्क स्थापित कर लेने के पश्चात् वेदना में एक प्रकार की आत्म-शान्ति एवं सुख इन कवियों को मिलने लगता है। वेदना-जन्य सुख का दोनों कवियों ने चित्रण किया है। पन्त के शब्दों में—

"आज मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूं
वेदना के इस मनोरम विपिन में"[1]

शास्त्री के लिये प्रणय-निराश-जन्य दुख एक अनन्त उपजीव्य बन जाता है और वह कभी उससे दूर रहना भी नहीं चाहता। कवि अपनी काल्पनिक तथा मनःप्रसूत उर्वशी की रूप-कल्पना वेदना-सुख की साकार मूर्ति के रूप में करता है।

"मेरे जलते उर में छिपकर कितने ही कल्पों से
मर्म वेदना का सुख, जो है मुझे प्रीति प्रद प्राणों से
बन कर तेरी नीरव प्रतिमा आर्द्र अपूर्व करुणा से
रजनी मेरी ! अभी करेगी बातें कोमलतर मुझ से।"[2]

शास्त्री अपनी प्रेयसी उर्वशी को "विश्व-वेदना का अमूल्य भाग्य"[3] कहता है। पन्त और शास्त्री ने दुखानुभूति, वेदना एवं आँसुओं की पीड़ा के स्वभाव का चित्रण भी किया है। पन्त वेदना के स्वरूप पर प्रकाश यों डालता है—

"वेदने ! तुम विश्व की कृश दृष्टि हो,
तुम महा संगीत, नीरव हास हो,
है तुम्हारा हृदय माखन का बना
आँसुओं का खेल भाता है तुम्हें।"[4]

---

१. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त। पल्लविनी—तृतीय संस्करण। पृष्ठ ५३।

२. "इन्नि कल्पालु कालु नायेद नडंगि
नाकु प्राणमे यगु वेदना सुखम्मु
इदे पलुर्कंरिचु, ना सखी इपूड्डु नीय—
पूर्व करुणार्द्र नीरव मूर्ति यगुचु—"

—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री कृतुलु—पृष्ठ ११८

३. "विश्व वेदना मूल्य भाग्य मीवे"

—श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि कृतुलु—पृष्ठ ११८।

४. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लविनी। तृ० सं० पृष्ठ ४८।

अन्त में पन्त वेदना को विश्व की अगम चरम सीमा तथा क्षितिज की परिधि भी मानता है—

"वेदना—कितना विशद यह रूप है ।
यह अन्धेरे हृदय की दीपक शिखा !
रूप की अन्तिम छटा । इस विश्व की
अगम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि—सी ।"[1]

शास्त्री दुख की निर्दयता पर इस प्रकार विचार करता है—

"स्वप्न-सा अन्तर में डोलकर
रजनी का घूँघट हटाकर
चिर मिलन की चाह लेकर
रे ! दुख ! क्यों तुम झाँकते हो ?
करते न क्यों तुम कुछ दया भी ?[2]

स्वतन्त्ररूप से दुख की अभिव्यक्ति केवल शास्त्री जी में मिलती है । पन्त के काव्य में स्वतन्त्र रूप से दुख या निश्चय की अभिव्यक्ति का नितान्त अभाव है ।

१०. उपसंहार :—सुमित्रानन्दन पन्त और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री आधुनिक भारतीय काव्य-गगन के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं । अपनी सीमाओं में उन्होंने जो काव्य-जगत का निर्माण किया है, वह चिरन्तन काल तक काव्य-क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने की सामर्थ्य रखता है । इन कवि-कलाकारों, भावी स्वप्न-द्रष्टाओं, आदर्शवादियों एवं आकाश में कल्पना की उड़ान भरने वाले ज्योति-विहगों की लेखनी से प्रसूत काव्य अनन्त काल तक अपनी कोमलता, प्रांजलता एवं मधुरता के बल पर काल के दुर्दान्त थपेड़ों को सहते हुये सहृदयों के हृदयों में प्राण-शक्ति का संचार करता रहेगा ।

---

१. "ग्रन्थि" से : सुमित्रानन्दन पन्तः पल्लविनी तृ० सं०—पृ० ४-

२. "............नीबेल स्वप्न
मदुल लोलीन कलचि, चीकटि मुसुंगु
नोत्तिगिल द्रोसि, बदलनि पोत्तु गोरि
तोंगि तोंगि चूचेद बय्यो दुःखमा यौ
किंचुकैननु जालि कोंहिच वेसि ?
—श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्रि कृतुलु—पृ० ५९ ।

२. जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण :—

आधुनिक काल में जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के महान आलोक स्तम्भ हैं। इन दोनों महाकवियों की विराट प्रतिभा ने साहित्य के हर एक क्षेत्र को स्पर्श कर उनमें नयी प्रभा भर दी है। ये दोनों कवि स्वच्छन्दतावाद की परिधि में आते हैं, फिर भी उस वाद के क्षीण तार उन्हें बाँध रखने में सर्वथा असमर्थ हुए। उन्होंने गीति काव्य, खण्ड-काव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी और आलोचना आदि सभी विधाओं में अपनी प्रौढ़ प्रतिभा की परिचय दिया है। इस प्रकार इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने आधुनिक भारतीय साहित्य में इनको एक स्वतन्त्र स्थान प्रदान किया है।

जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण भारतीय संस्कृति के अमर व्याख्याता हैं। इन दोनों के काव्य की आधारभूमि भारतीय संस्कृति ही है। प्रसादजी पर बौद्ध दर्शन एवं शैव-दर्शन का अत्याधिक प्रभाव है तो विश्वनाथ सत्यनारायण पर पुराणों एवं उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन कवियों में भारतीय इतिहास का अपार ज्ञान एवं उसके प्रति अनन्य श्रद्धा है। अपने विचारों एवं अपनी भारतीयता पर संपूर्ण विश्वास रखने वाले इन साहित्यिक मनीषियों एवं गम्भीर चिन्तकों पर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त गौण रूप में भी नहीं दिखाई पड़ता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव अन्य समकालीन कवियों पर होते हुये भी इन दोनों कवियों पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं रहा। भारतीय सांस्कृतिक दीप्ति एवं आत्म-सम्मान की भावना इन दोनों कवियों में समान रूप से पायी जाती है। दोनों कवि भावना के आवेग में बहते हुये भी गांभीर्य एवं संतुलन कभी नहीं खो बैठते। दोनों में अद्भुत अदम्य आत्म-विश्वास एवं अपने काव्य पर पूर्ण आस्था सर्वत्र पा जाते हैं।

परन्तु दोनों कवियों में पर्याप्त अन्तर भी है। जहाँ प्रसादजी अपने काव्य में देशकाल की सीमाओं को पारकर विश्वजनीनता प्राप्त कर लेते हैं, वहाँ विश्वनाथ देश और काल के बन्धनों से सीमित दिखाई पड़ते हैं। जहाँ प्रसादजी की विचारधारा एवं चिन्तन-प्रणाली का स्वाभाविक विकास पाया जाता है, वहाँ विश्वनाथ की विचारधारा निर्दिष्ट होते हुए भी उसके विकास की कोई दिशा स्पष्ट नहीं है। प्रसाद के काव्य का सहज विकास होता गया, परन्तु विश्वनाथ के काव्य का सहज विकास उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि विश्वनाथ ने अपनी काव्य-धारा को विभिन्न दिशाओं में मोड़ दिया और उन दिशाओं का स्वतन्त्र व्यक्तितत्व भी वर्तमान है। प्रसाद ने अपने समय एवं प्रान्त की सीमाओं को लांघकर विश्व-मानव की चिरन्तन समस्याओं पर प्रकाश डाला है तो विश्वनाथ ने आन्ध्र प्रान्त के प्रान्तीय वैभव के साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन किया है। विश्वनाथ का

"रामायण कल्पवृक्षमु" केवल राम चरित पर आधारित एक परम्परागत महाकाव्य है। प्रसाद अपनी गहन चिन्तनशीलता, दूरदर्शिता, संतुलित दार्शनिकता एवं जागरूकता के कारण विश्व के महान कवियों में आसानी के साथ गौरवमय स्थान प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु विश्वनाथ सत्यनारायण के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। इसका कारण यह है कि अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन करते हुये भी विश्वनाथ का दृष्टिकोण कभी प्रसाद की भाँति विशाल नहीं रहा। कुछ कविताओं को छोड़कर उनकी दृष्टि आन्ध्र के वातावरण के अतिरिक्त कहीं बाहर नहीं गयी। अपने काव्यों के लिए कथानक या सामग्री इतिहास या पुराणों से ग्रहण करते हुए भी दोनों कवियों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। ऐतिहासिक धरातल प्रसाद के लिए केवल निमित्त मात्र है और वे उसके माध्यम से उदात्त भावनाओं, मार्मिक अनुभूतियों या दार्शनिक विचारों को व्यक्त करते हैं। विश्वनाथ के कुछ काव्य इतिहास तथा पुराणों पर आश्रित हैं और उन में कवि की दृष्टि कथानक पर रहती है। उनमें वर्णनों तथा भावनाओं की भी कमी नहीं है। फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्रसादजी विश्वनाथ की अपेक्षा ऐतिहासिक कथानकों को एक विश्वजनीन अनुभूति एवं वस्तु के रूप में परिणत करने में अधिक सफल हुये हैं। जहाँ प्रसाद अपने काव्य में मानव-जीवन और उसकी अनन्त समस्याओं का अंकन कर उनके समाधान भी प्रस्तुत करते हैं, वहाँ सत्यनारायण अपने काव्य के माध्यम से कुछ सुन्दर वर्णनों एवं क्षणिक आवेगों के अतिरिक्त और कुछ देने में असमर्थ रहे हैं। जहाँ प्रसाद के काव्य में, दर्शन एवं मनोविज्ञान मिलकर एकाकार हो गये हैं, वहाँ विश्वनाथ के काव्य में केवल भावनाओं का संचार ही मिलता है। अत: यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्रसाद मानव-जीवन की गहराई में जितना पेठ सकते हैं उतनी सत्य-नारायणजी की पहुँच नहीं। प्रसाद अपने काव्य की चिरन्तता, विशालता, सूक्ष्मता एवं प्रौढ़ता के कारण भारत के क्षितिज़ को पारकर विश्व-साहित्य में एक अमर स्थान प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं। परन्तु विश्वनाथ का काव्य अपने प्रान्तीय दृष्टि-कोण के कारण आन्ध्रों के अतिरिक्त अन्यों के लिए अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध होता। अत: सत्यनारायण आन्ध्र प्रान्त के ही कवि हैं और उनके काव्य में अन्य प्रान्तों की जनता को आकृष्ट करने वाले गुणों का अभाव है। वे कभी भी अपने प्रान्त की सीमाओं से ऊपर नहीं उठ सके।

इन दोनों कवियों के बीच इतने वैषम्य के होते हुये भी विप्रलम्भ शृंगार के अंकन में इनमें असाधारण समानता दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से प्रसाद का "आँसू" तथा सत्यनारायण का "किन्नेरसानि पाटलु" तुलनीय हैं। इन दोनों कवियों के काव्य में शृंगार को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। शृंगार में मिलन एवं वियोग का चित्रण दोनों कवियों ने विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत ही किया है।

१. आँसू और किन्नेरसानि पाटलु :—प्रसाद के "आँसू" तथा "विश्वनाथ" के "किन्नेरसानि पाटलु" के कथानक में कोई साम्य न होते हुए भी उन के अंगीरस में पर्याप्त समानता मिल जाती है। दोनों काव्यों में विरह एवं मिलन का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत हुआ है। आँसू एक आत्माश्रयी विप्रलंभ काव्य होने के कारण यहाँ स्वयं कवि ही नायक है और किन्नेरसानि पाटुल में कवि नायक के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। "आँसू" में नायक अपनी अतीतकालीन स्मृतियों में डूबकर विह्वल क्रन्दन करने लगता है। उसकी स्मृतियों के माध्यम से ही नायिका का स्वरूप पाठकों या सहृदयों के समक्ष प्रकट हो जाता है। परन्तु नायिका कभी भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं होती। इसके विपरीत किन्नेरसानि पाटलु में नायिका स्वयं एक पात्र के रूप में दृष्टिगोचर होती है। "आँसू" में प्रणय तथा विरह की अभिव्यक्ति केवल नायक करता है तो किन्नेरसानि पाटलु में नायक और नायिका दोनों विरह-जन्य विह्वलता को प्रकट करते हैं। जहाँ प्रसाद ने प्रकृति को अपने काव्य में अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया है तो सत्यनारायण ने प्रकृति को प्रस्तुत के रूप में भी स्वीकार किया है।

"आँसू" तथा "किन्नेरसानि पाटलु" के नायक अपनी प्रिया के वियोग-भार से दब जाते हैं। दोनों चिरन्तन विछोह को सहन नहीं कर सकते। वियोगावस्था में दोनों करुणा-क्रन्दन करने लगते हैं। आँसू का नायक अतीत की स्मृतियों में डूबकर अनन्त पीड़ा का अनुभव करता है। वह कह उठता है—

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।"[१]

किन्नेरसानि पाटलु के नायक के रूठकर चलने वाली पत्नी का आलिंगन करने से वह उसके हाथों में ही पिघलकर सरिता बन जाती है। अपनी प्रिय पत्नी का इस प्रकार एक सरिता बनकर बह जाना नायक को अशनिपात की भांति प्रतीत हुआ। बिछुड़ने वाली पत्नी की वेणी पकड़कर रोकने की चेष्टा के असफल होने के पश्चात दुःखातिरेक में नायक यों कह उठता है—

"हे प्रिया! मुझ से दूर भागने वाली तुम्हारी वेणी को मैंने पकड़ लिया। परन्तु मेरे हाथ में वेणी के स्थान पर जल-धारायें ही उमड़ आयी हैं।"[२]

---

१. "आँसू" : जयशंकर प्रसाद। एकादश संस्करण पृ० १२।

२. "परुगेत्तेडु नीवेणी बन्धमु पूनिति चेतनु
करमुन वेणिकि बदुलुग काल्वगट्टे नीटि पोरल्।"
—विश्वनाथ सत्यनारायण। "किन्नेरसानि पाटलु" : पृ० ८।

नायक यों कहते हुये दुख के अतिशय भार से घनीभूत होकर पत्थर के रूप में परिणत हो जाता है। नायिका किन्नेरसानि भी अपने पति की पाहन मूर्ति का लहरों के हाथों से आलिगन करती है। वह उसे छोड़ कर जाना नहीं चाहती, परन्तु विवश होकर उसे प्राकृतिक नियम का अनुसरण कर बहना पड़ा। वह अपने इस प्रकार के आँसू एवं किन्नेरसानि पाटलु में विरह-जन्य दुख एवं निराशा का अंकन अनेक रूपों में मिलता है।

"आँसू" के नायक की भाँति किन्नेरसानि अपने पति को शिला के रूप में पाकर क्रन्दन कर उठती है। दोनों वियोग में असहाय पीड़ा का अनुभव करते हैं। दोनों अपनी अतीत कालीन सुख-मय मिलन की स्मृतियों में डूब जाते हैं। "आँसू" का नायक अपने प्रिया-समागम का सुन्दर चित्र यों प्रस्तुत करता है—

"परिरंभ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र-चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके।"[1]

किन्नेरसानि भी वियोगावस्था में अपने पति के साथ मिलन की घड़ियों का स्मरण कर विह्वल हो उठती है। वह कहती है कि नीले बादलों की भाँति लगने वाले तुम्हारे हाथ शायद ही मेरा आलिंगन करने तथा मेरे शरीर को स्पर्श-पुलकों से भरने आयेंगे।[2] मेरे मान को छुड़ाने के लिये तुम मेरे पैर दबाते हुये मुझे गोद में उठाकर अपने मस्तक को मेरे सीने से लगाने शायद तुम नहीं आओगे।[3] पुनः वह कह उठती

---

१. जयशंकर प्रसाद : "आँसू" एकादश संस्करण। पृ० २७।

२. "नीलि मब्बुल बोलु
निडिवि नी चेतुल्ल
नन्निक कौगलिचगरापु काबोलु
कडु प्रेम ती चेरगानीवु काबोलु
नेम्मदिग नायोडलु निमुरवु काबोलु।"

—किन्नेरसानि पाटलु"—पृ० १६।

३. "नेनु कोपगु नन्दि
नीप्रक्क नुंडगा
बलदन्न कोद्दि ना पदमु लोत्तवु नीवु
तेलचि कौगिटिलो तेचुकुन्ट नीवु
नारोम्मु तल चेर्चगा रावु काबोलु'

— किन्नेरसानि पाटलु—पृ० १६।

है कि किसलय-से कोमल अधरों से मेरे मुख पर चुम्बन करने नहीं आओगे । मेरे शरीर को सौन्दर्य-धाम कहकर सभी स्थानों पर चूमने शायद अब नहीं आओगे ।"[1] इस प्रकार सत्यनारायण ने वियोगावस्था में भी मिलन-शृंगार का समावेश किया है ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आँसू और किन्नेरसानि पाटलु में प्रसाद और सत्यनारायण ने करुण एवं शृंगार की भावनाओं का सहज एवं मर्मस्पर्शी अंकन किया है । ये दोनों काव्य विप्रलंभ-काव्य की परम्परा में विशिष्ट स्थान पाने के अधिकारी हैं ।

प्रेम-पथिक और गिरिकुमारुनि प्रेम गीतालु :—प्रसाद और सत्यनारायण दोनों मूलतः प्रेम और यौवन के कवि हैं । इन कवियों की प्रेम-भावना की झलक प्रेम-पथिक और गिरिकुमारुनि प्रेम गीतालु मे मिल जाती है । ये दोनों कृतियाँ कवियों के यौवन-काल में लिखी गई हैं । दोनों काव्यों में कवियों की अमलिन आदर्श प्रेम-भावना की प्रतिष्ठा की गयी है । प्रसाद के प्रेम-पथिक का विवाह उसकी हृदयेश्वरी एवं बाल्य सहचरी पुतली के साथ नहीं हुआ और वह अपनी प्रिया के विवाह के अवसर पर घर-बार छोड़कर भ्रमण करने लगा । वह वन, पर्वत एवं सरितायें पार करते हुये एक एकान्त कुटी के पास पहुँच जाता है । उस समय तक पुतली विधवा हो गई थी और वह भी उस कुटी में एकान्त जीवन व्यतीत कर रही थी । प्रिय और प्रेमिका एक दूसरे को पहचान लेते हैं और वहीं रहकर दोनों विश्वात्मा की प्रेम-प्राप्ति के लिये अपनी लौकिक प्रेम-भावना से ऊपर उठ जाते हैं । प्रेम-पथिक के पात्र जीवन के कटु अनुभवों के पश्चात यह स्वीकार कर लेते हैं कि विश्व-भर में दयानिधि ईश्वर के प्रेम का ही अस्तित्व है ।

> **"किन्तु न परिमित करो प्रेम, सौहार्द, विश्वव्यापी कर दो**
> **क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो ! देखो !**
> **उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वास मात्र में छायी है ।"[2]**

सत्यनारायण के गिरिकुमारुनि प्रेम गीतालु (गिरिकुमार के प्रेम-गीत) में गिरिकुमार के प्रणयोद्गारों को अभिव्यक्ति मिली है । गिरिकुमार कवि की भावनाओं का आश्रय है ।

---

१. "तलिराकु वन्टि मे
रतनि येर्रपेदवितो
तार्चि नांसोमु नद्दगरावु कावोलु
नायोडलु मिवुल नन्वपु कुप्प यनि चेप्पि
एल्लतावुलनु मुद्दिडरावु कावालु ।" —"किन्नेरसानि पाटलु" पृ० १७ ।

२. जयशंकर प्रसाद : प्रेम पथिक : चतुर्थ संस्करण । पृ० ३० ।

वह अपनी प्रेयसी के प्रति अनेक प्रणय-भावनायें प्रकट करता है। वह नायक के लिये एक सुधा-स्रवन्ती है। उसका आभास कवि को प्रकृति में मिलता है। उसके वास्तविक स्वरूप का आकलन करने के लिये कवि सारे विश्व को छान डालता है, पर उसे सफलता नही मिलती। अन्त में कवि उसे अपनी आत्मा में एक सूक्ष्म आकृति के रूप में पाता है। कवि के लिये वही आराध्य देवी है, वही साकार कवित्व-शक्ति है और वहीं प्रेयसी भी है। इस प्रकार कवि की लौकिक प्रेम-भाववा अन्त में देवी-आराधना में परिणत होकर अलौकिक हो जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों काव्य-कृतियों में प्रसाद तथा सत्यनारायण लौकिक प्रेम के धरातल से ऊपर उठकर दैवी तथा अलौकिक प्रेम-भावना के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये दिखाई पड़ते हैं।

(३) **उपसंहार**—जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण में केवल आनुषंगिक साम्य है वे अपने सम्पूर्ण कृतित्व में भारतीय संस्कृति का गुणगान करते हैं। दोनों कवियों में गम्भीरता तथा आत्म-विश्वास की भावना पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है। सत्यनारायण के काव्य में तेलुगुपन एवं आंध्रवातावरण के आधिक्य के कारण उनका महत्व उस प्रान्त तक सीमित है। इसके विपरीत प्रसाद अपने काव्य के कारण हिन्दी काव्य क्षेत्र के मूर्धन्य कवि होने के साथ अपने काव्य की विश्वजनीनता, गंभीरता, सूक्ष्मता, विशालता एवं चिरन्तनता के कारण भारत की सीमाओं को पारकर विश्व के महान साहित्यकारों की पंक्ति में खड़े होने की क्षमता रखते हैं। प्रसाद भारतीय कवि होते हुये भी विश्व-कवि हैं। उन्होंने मानव मात्र की चिरंतन भावनाओं एवं समस्याओं का चित्रण किया है। यह बात सत्यनारायण के विषय में उतने विश्वास के साथ नहीं कही जा सकती। अन्त में यही कहा जा सकता है कि प्रसाद एवं सत्यनारायण प्रकृति एवं स्वभाव की दृष्टि से एक-दूसरे के अत्यन्त निकट हैं।

३. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और बसवराजु अप्पाराव :—

महाकवि निराला की तुलना तेलुगु स्वच्छन्दतावाद के अमर कवि बसवराजू अप्पाराव के साथ की जा सकती है। इन कवियों के जीवन, व्यक्तित्व, एवं कृतित्व में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि परिमाण एवं विस्तार की दृष्टि से निराला के काव्य के सम्मुख अप्पाराव का काव्य तुल नहीं पाता, तथापि दोनों कवियों के कृतित्व एवं स्वभाव में समानता है। इन दोनों कवियों के बीच तुलना दो मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत हो सकती है—(१) जीवनी और व्यक्तित्व, (२) गीत-सृष्टि के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति। इन दोनों अंशों में इन कवियों की तुलना प्रस्तुत की जाय।

१. **जीवनी और व्यक्तित्व** :—निराला एवं अप्पाराव-दोनों का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। दोनों कवि मातृभाषाओं के साथ अन्य दो-तीन भाषाओं एवं उनके

साहित्यों से भली भाँति परिचित थे। दोनों कवियों का वैयक्तिक जीवन अत्यन्त विषादपूर्ण रहा। दोनों ने अथाह पीड़ा का अनुभव किया। दोनों कवियों का विवाह यौवन के आगमन के साथ हुआ। निराला की पुत्री सरोज की मृत्यु युवास्था में ही गयी तो अप्पाराव के वालक एवं वालिका की मृत्यु अत्यन्त अल्प आयु में हुई। दोनों कवियों का जीवन अत्यन्त अस्थायी रहा। निराला एवं अप्पाराव अत्यन्त स्वतन्त्र विचारधारा के कवि हैं। अत: दोनों कवियों ने नियंत्रण में रहना स्वीकार नहीं किया। निराला ने "**मतवाला**" पत्रिका का संपादन किया तो अप्पाराव "**आन्ध्र पत्रिका**" एवं "**भारती**" आदि पत्रिकाओं के लिये उप-सम्पादक के रूप में रहे। इन दोनों कवियों में भावना की तीव्रता इतनी अधिक रही है कि उन के मस्तिष्क के तार टूट गये और दोनों मानसिक अस्वस्थता एवं मनोचाँचल्य के शिकार वने। दोनों की मृत्यु भी उसी मानसिक वशा में हो गयी।

निराला और अप्पाराव अत्यन्त भावुक, सहृदय एवं सरल स्वभाव के कवि हैं। विश्व की हर एक वस्तु उन के अनुरागी हृदय के स्पर्श से नवनीत आलोक बिखेर देती है। भावना की तीव्रता, एवं स्नेह-प्रवणता ने इन दोनों कवियों को एक ही श्रेणी में रख दिया है।

२. गीत-सृष्टि के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति :—निराला की काव्य-सृष्टि की तुलना में अप्पाराव का कृतित्व परिमाण में कम अवश्य है। काव्य गुण के कारण उनकी रचनायें निराला की कतिपय रचनाओं के समकक्ष ठहरती हैं। परन्तु अप्पाराव की अपनी सीमायें हैं। निराला की तरह उसने कोई लम्बी रचना प्रस्तुत नहीं की। अत: गीतिकारों के रूप में दोनों में पर्याप्त साम्य मिलता है।

निराला और अप्पाराव ने अपनी हृदयगत भावनाओं एवं उद्गारों को प्रगीतों एवं गीतों के माध्यम से अधिकतर प्रकट किया है। अत्यन्त भाव-प्रवण एव स्वच्छन्द स्वभाव के कवि होने के कारण उन्होंने अपने उन्मुक्त व्यक्तित्व को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया। दोनों कवियों ने गीतों में मार्मिक अनुभूतियों का अंकन किया है। दोनों कवियों ने अपने वैयक्तिक जीवन के सुख-दुख को गीतों में साकार कर दिया। विश्व के दलित व्यक्तियों के प्रति इन कवियों की ममता अपार है। अपने सुख-दुख हास-अश्रुप्स एवं आशा-निराशा को सहज अभिव्यंजना देने वाले इन कवियों में भावुकता की मात्रा अधिक है। इनके गीत केवल इनकी भावनाओं के विस्फोट मात्र हैं। कभी ये कवि उत्साह एवं स्फूर्ति के साथ गाने लगते हैं तो और कभी दुख के भार से दबकर आँसू वहाते हैं। निराला का कथन है कि उनके जीवन की कथा केवल दुख की कथा है—

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।"[1]

अप्पाराव भी सामाजिक स्वार्थ से अत्यन्त दुखी हुआ । अपने पुत्र एवं बालिका के निधन पर कवि ने मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव किया । अधिकतर गीतों में दोनों कवियों का करुण-क्रन्दन ही दृष्टिगोचर होता है । परिस्थितियों से टक्कर खाकर उन में जब मानसिक शैथिल्य आ जाता है तो गीतों में भी उसी दशा की अभिव्यक्ति मिलती है । कविवर निराला ने जीवन नैराश्यपूर्ण वातावरण का कन यों अकिया है--

"स्नेह- निर्झर बह गया है ।
रेत ज्यों तन रह गया है ।
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा ।
बह रही है हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है ।"[2]

अप्पाराव भी अपने जीवन के श्लथ में एवं शिथिल क्षणों में ऐसे ही उद्गार प्रकट करते हैं । कवि का कथन है कि गीतों को गाते समय ही उनके प्राण निकल जायेंगे—

"जीवन-भार ढो न सका मैं
श्लथ विछत थकित हुआ मैं
फिर भय से मैं भाग पड़ूंगा
ऐकाकी वन किसी बाग में—
गीत गाते समय में ही प्राण मेरे चलेंगे क्या ?
प्राण मेरे जब चलेंगे तब गीत मुख में गूंजते क्या ?"[3]

निराला और अप्पाराव प्रकृति के आकर्षक दृश्यों के प्रति संवेदनशील रहे हैं । निराला के काव्य में प्रकृति का वैभव मिलता है तो अप्पाराव के काव्य में उसकी केवल झलक मात्र मिल जाती है ।

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा । तृतीय संस्करण । पृ० १४८ ।

२. वही—पृ० १३५ ।

३. "वतुकु वरुवु मोयलेक
चितिकि चिविकि डस्सि वाडि
पिकरुवुट्टि पारिपोइ
ओकडने ये तोटलोनो
पाट बाडु तुंडग न प्राणि दाटि येगेना ?
प्राणि दाटि येगुतुंड पाट नोट मोगेना ?"
---वसवराजु अप्पाराव गेयालु : बसवराजु अप्पाराव । पृ० ४ ।

वास्तव में भक्त न होते हुये भी निराला एवं अप्पाराव ने भक्ति-सम्बन्धी गीत लिखे। निराला में दार्शनिकता एवं भाव-विह्वलता तथा अप्पाराव में भक्ति-भावना की तीव्रता अधिक मात्रा में मिलती है। निराला ने "तुम और मैं" नामक कविता में उस अनन्त ईश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। अप्पाराव के कुछ गीत गोपी-कृष्ण संवाद के रूप में लिखे गये हैं। कवि गोपियों या राधिका के मुख से कृष्ण के प्रति प्रेमसिक्त वचन कहलवाते हैं। इसके अतिरिक्त भी ईश्वर को सम्बोधित कर अनेक श्रद्धाँजलियाँ कवि ने अर्पित की हैं। कवि भगवान के चरणों पर आत्म-समर्पण करते दिखाई पड़ते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि निराला और अप्पाराव की ईश्वर-सम्बन्धी धारणा से भी पर्याप्त साम्य है।

उपसंहार :—इस प्रकार महाकवि निराला एवं अप्पाराव में अंशत : साम्य दिखाई पड़ता है। परन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि निराला का कृतित्व अप्पाराव के कृतित्व से अधिक गम्भीर एवं विश्वजनीन है। वसवराजु अप्पाराव मूलतः तेलुगु कवि हैं और उनकी भावनाओं में आन्ध्र प्रांत की रीति-रिवाजों का सुन्दर चित्रण मिलता है। अतः उनकी कविता का प्रादेशिक महत्व अवश्य है। परन्तु निराला अपने सुगम्भीर पारदर्शी एवं उदात्त काव्य-सृष्टि के द्वारा विश्व के महान कवियों में स्थान प्राप्त कर सकते हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में कुछ ऐसी विशेषतायें वर्तमान हैं, जो सामान्यतः अन्य कवियों में बहुत कम पाई जाती हैं।

४. महादेवी वर्मा और चावलि वंगारम्मा :—

महादेवी वर्मा और वंगारम्मा आधुनिक काल में हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की प्रमुख कवियत्रिया हैं। दोनों कवियत्रियों ने अपनी गहरी अनुभूति एवं अतिशय कल्पनाशीलता के कारण अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त किया है। कुछ अंशों में इन में साम्य की रेखायें स्पष्ट रूप से परिलक्षत होती हैं। इन दोनों कवियत्रियों ने अमर गीतों की सृष्टि की है। केवल लघु गीतों को छोड़कर किसी अन्य काव्य-रूप पर उन्होंने कलम नहीं चलायी। अतः इन दोनों की गीति-सृष्टि के कुछ अंशों पर प्रकाश डाला जाय।

कला एवं संगीत की दृष्टि से ही नहीं, अपितु उन की काव्यत्मकता सरलता, सरसता, मार्मिकता एवं मधुरता के कारण उन के गीत अत्यन्त उच्च कोटि के बन पड़े हैं। दोनों ने अपने सहज प्रवाहमान गीतों में मृदुल भावनाओं एवं संवेदनाओं को व्यक्त किया है। उन गीतों के माध्यम से दोनों कवियत्रियों की अत्यन्त परिष्कृति कला-मर्मज्ञता का दर्शन होता है। इन कवियत्रियों के गीतों की तुलना निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है—

(१) प्रकृति-चित्रण एवं विम्ब-विधान (२) आध्यात्मिकता, (३) कलाकारिता।

प्रकृति चित्रण एवं बिम्ब विधान :— महादेवी तथा बंगारम्मा ने प्रकृति के अनेक वैभवपूर्ण चित्रों का अंकन किया है। दोनों कवयित्रियों ने प्रकृति में मानव-चेतना को आरोपित कर, उसके माध्यम से मानवीय चेष्टाओं एवं क्रिया-कलापों का चित्रण किया है। महादेवी के लिये प्रकृति एक क्रीड़ा स्थल है और वह उससे अनेक वास्तविक तथा काल्पनिक दृश्यों का चित्रांकन कर देती है तो बंगारम्मा प्रकृति की चेष्टाओं को नारी की स्वाभाविक किशोर भावनाओं के रंग में रंग देती है। महादेवी में भी भारतीय नारी के व्यक्तित्व को प्राकृतिक उपकरणों में अंकन करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

महादेवी के सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति छाई हुई है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि महादेवी अपने भावों को प्राकृतिक लिवास अच्छी भांति पहनाती है। यही बात बंगारम्भा के लिये भी कही जा सकती है। कभी-कभी महादेवी और बंगारम्मा कुछ प्राकृतिक बिम्बों में नारी-मूर्तियों का दर्शन करती हैं। महादेवी धीरे-धीरे क्षितिज से उतर आने वाली वासन्ती रजनी की रूप-कल्पना इस प्रकार करती है—

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त-रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम विछा दे चितवन से अपनी।"[1]

बंगारम्मा भी अपनी "नीड" (छाया) नामक गीत में मन्दार पुष्प को एक नारी के रूप में अंकित करती है। जल में अपनी छाया देखकर मन्दार पुष्प का अपने ही सौन्दर्य पर रीझ उठना तथा जल के निर्मल दर्पण में देखकर बदन पर तिलक लगाना आदि के कारण उस में नारीमूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है।

दोनों कवयित्रियाँ प्रकृति के सुन्दर बिम्बों का चित्रण कर अपनी काव्य-शोभा बढ़ाती हैं। वे अपने सहज लयमान पंक्तियों में स्थिर एवं निश्चल बिम्बों एवं गत्यात्मक बिम्बों को भी साकार कर देती हैं। ऐसे प्राकृतिक बिम्बों के निर्माण में

---

१. महादेवी वर्मा। आधुनिक कवि। भाग—१। छठा संस्करण। पृ० ४८।
२. "अन्दाल ताने चूसिदि
नीटिलो चंदालु ताने चेंप्पिदि
ना तोटि
वोडुन्न मंदार वोंगि वोट्टेट्टुकुनि
अन्दालु ताने चूचिदि।" -- "नीड" —वैतालिकुलु। पृ० १७७।

उनकी परिष्कृत सौन्दर्य-चेतना काम करती दिखाई पड़ती है। दोनों कवयित्रियों में स्थिर प्राकृतिक बिम्बों पर दृष्टिपात किया जाय।

महादेवी विद्युत के स्वर्णपाशों में बंध कर रोदन करने वाले जलधर को तथा अपने कोमल मानस की ज्वाला को गीतों से नहलाने वाले सागर को अकम्पित एवं स्थिर बिम्बों में इस प्रकार अंकित करती हैं :

"विद्युत् के चल स्वर्णपाश में बंध हँस देता रोता जलधर ;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर ;"[1]

वंगारम्मा कहती है कि पेड़ों से बड़े सांप सारे तालाब में रेंगते हैं।[2] इस बिम्ब का अर्थ यह है कि पेड़ों की छाया लहराते हुए जल में दिखाई पड़ती है और वे परछायियाँ रेंगते हुए सर्पों की भाँति दृष्टिगोचर होती हैं **"कार्तिक पूर्णिमा"** नामक कविता में कवियित्री प्राकृतिक वातावरण को यों चित्रित करती है—

"मूक पड़ा है सारा खग कुल,
वृक्ष देखते मौन धरे है।"[3]

महादेवी के गीतों में प्रकृति के गत्यात्मक बिम्ब भी देखने को मिलते हैं। इन बिम्बों में गति का प्रमुख स्थान रहता है। गत्यात्मक बिम्बों का अपना एक विशिष्ट सौन्दर्य है। महादेवी प्रातःकाल के वातावरण को गत्यात्मक बिम्बों के माध्यम से यों अंकित करती है—

"हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली,
लहरों का विछलन पर जब
मजली पड़ती किरणें भोली

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार
छलकी पलकों से कहती हैं "कितना मादक है संसार।"[4]

वंगारम्मा के गीतों में भी गत्यात्मक बिम्बों की कमी नहीं है। **"वह पर्वत"** नामक गीत में कवयित्री ने अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण गत्यात्मक बिम्बों का समावेश किया हैं। वह कहती है—

---

१. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १। छठा संस्करण : पृ० ६५।
२. "चेट्लंटि पामुले चेरुवेल्ल पाकेयि"— वैतालिकुलु। संपादक मुदुकृष्ण—पृ० १७७।
३. "पक्षुल्लु पलुक्के पडियुंडिनायि,
वृक्षालु चूचुचू वूरकुन्नायि।"—वैतालिकुलु। सं० मुदुकृष्ण। पृ० २०५।
४. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि—भाग १—छठा संस्करण। ४।

"सघन झाग में डूब गया है
औ' पर्वत अंतर्धान हुआ है
शायद—
वह अम्बर में सिमट गया है
या उसी स्थान पर अटक गया है !"[1]

इस प्रकार महादेवी और वंगारम्मा ने अनेक भव्य प्राकृतिक बिम्बों का आकलन कराया है। प्रकृति की अनेक चेष्टाओं में दोनों कवयित्रियों ने मानवीय भावनाओं का आरोप किया है। दोनों ने प्रकृति के कोमल एवं भव्य पहलू पर अधिक ध्यान दिया है।

२. आध्यात्मिकता :—महादेवी और वंगारम्मा ने आध्यात्मिक विषयों पर कलम चलायी हैं। महादेवी एक रहस्यवादी कवयित्री हैं और ईश्वर को सम्बोधित कर अनेक प्रणय-गीतों की रचना उसने की। निराकार ईश्वर के प्रति अलौकिक प्रणय-भावना ही महादेवी के गीतों का मूल स्वर है। अतः उसके गीतों में मिलन एवं विरह के चित्र भरे पड़े हैं। भगवान के चरणों पर वह अनेक गीतांजलियाँ अर्पित करती हैं। उस अलौकिक प्रियतम के विरह में वह असह्य पीड़ा का अनुभव करती है और उसकी यह पीड़ा उनके गीतों में साकार हो उठी हैं। इस दिशा में वंगारम्मा ने अधिक गीतों की रचना नहीं की, फिर भी अपने कुछ गीतों में ईश्वर को हृदयेश मानकर विरह-भावना को व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त उसने कृष्ण के विरह में तपने वाली राधा की विरह-व्यथा का भी सुन्दर चित्रण किया है। महादेवी और वंगारम्मा में प्रणय-भावना अलौकिक हो जाती है। उसमें निर्मलता एवं उदात्तता का सर्वत्र निर्वाह हुआ है। इस प्रकार इन कवयित्रियों के गीतों में उनकी आशाओं तथा आकांक्षाओं का चित्रण मिलता है।

महादेवी तथा वंगारम्मा अपने अलौकिक प्रियतम के यहाँ संदेश दूतों के द्वारा भेजती हैं। महादेवी पहले यह जान नहीं पाती कि अपने प्रिय को संदेश किस प्रकार भेजा जाय। वह कहती है—

---

१ "मंचुलो मुनिगिदि
मायमैपोइंदि
आकोंड
आकोंड
अक्कडे पडि गुंडेनो।— वैतालिकुलु। सं० मुदुकृष्ण—पृ० १९६।

"कैसे संदेश प्रिय पहुंचाती ।
....

छाया पथ में छाया से चल
कितने आते जाते प्रति पल
लगते उनके विभ्रम इंगित
क्षण में रहस्य क्षण में परिचित;
मिलता न दूत वह चिरपरिचित
जिसको उर का धन दे आती ।"[1]

वत्रियित्री कभी अपने प्रिय के आगमन के संकेत को आकाश की मुस्कुराहट में पाती है—

"मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?"[2]

इस तरह महादेवी अपने प्रियतम से मिलने के लिये प्रतीक्षा करती है। वंगारम्मा भी अपने अलौकिक प्रियतम के यहाँ संदेश सूर्य के द्वारा भेजती है। वह सूर्य से कहती है कि मैं केवल उनसे दया चाहती हूँ। मानस में भावों का अन्त होने के पूर्व तथा इन्द्रियों में भावनाओं के शिथिल होने के पूर्व उनसे कहो कि वे मुझे देखने आयें।[3] दूसरे दिन ही वह सूर्य से पूछती है कि प्रिय ने उससे क्या कहा है ? जब सूर्य कुछ उत्तर भी नहीं देता है तो वह कह उठती है कि स्त्रियाँ जात करने में भय का अनुभव करती हैं, परन्तु पुरुषों को कोई भय नहीं होना चाहिये।[4]

महादेवी एवं वंगारम्मा ने अपने अलौकिक प्रियतम के साथ मिलन के अनुपम चित्र अंकित किये हैं। महादेवी कहती हैं कि हे प्रियतम ! तुम मुझ से मिलकर कभी के एकाकार हो गये हो और अब तुम्हारा परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं है—

---

१. महादेवी वर्मा । आधुनिक कवि—भाग १—छठा संस्करण । पृ० ६१
२. वही । पृ० ६५ ।
३. "अतनि दयकोसमे आशिंचिनानु
मनसुलो भावालु मणगि पोकुन्ड
....,....   ....

चूमुलो भावालु सूक्षिपोकुण्ड
तूड रम्मनि चेप्पु सूर्युंडा पोइ ।"—कांचन विपंचि: चावलि वंगारम्मा ।
४. "मगुवलक भयमन्न मरि नम्मवच्चु
मगवारि केलय्य माटाड्डु भयमु ।"—वह कांचन विपंचि । चावलि वंगारम्मा :

"तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?
तारक में छवि प्राणों में स्मृति
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति
भर लायी हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या ?"[1]

बंगारम्मा भी यही कहती है कि उसने जो कुछ देखा है, वह सब उसमें ही विलीन हो गया और सब कुछ उसे शून्य के रूप में दृष्टिगोचर हुआ। मैं अपने नाथ में लीन हो गयी हूँ। केवल वही एक प्रियतम सत्य है, और शेष सब कुछ मिथ्या ही है—

"जो कुछ देखा मैंने वह मुझ में ही हुआ लीन
जिसे देखता था मैं वह सब मुझ को लगा शून्य
प्राणनाथ से मिल मैं उन से एकाकार हुई
सत्य वही केवल औ' मिथ्या हैं सारे अवशेष।[2]

महादेवी और बंगारम्मा ने अपने प्रियतम के विरह में अत्यन्त मार्मिक व्यथा का अनुभव किया है। विरह ही प्रेम की अत्यन्त जागृत एवं चेतन दशा है। ऐसे विरह का चित्रण महादेवी के सम्पूर्ण गीतों में पाया जाता है। वह कहती है—

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इस का अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।"[3]

महादेवी अपने प्रिय के विरह में आँसू की अविरल धारा बहाती है। बंगारम्मा अपनी वियोगवह्निदग्धा राधा के विरह की दशा का चित्रण यों करती है—

---

१. महादेवी वर्मा आधुनिक कवि—भाग १ छठा संस्करण। पृ० ५६
२. "नेनु गांचिन देल्ल नालोन गलिसे
चूचुचुं डिन देल्ल शून्य मनिर्पिचे
नानाथुलो नेनु लीन मै नाने
अतडोक्कडे निजं बखिलम्बु कल्ल।"—कांचन विपंचिः चावलि बंगारम्मा।
३. महादेवी वर्मा। आधुनिक कवि—भाग १— छठा संस्करण। पृ० ५३।

"उन्मीलित आँखों में, मुँदे पलकों में
केवल प्रियतम छाया है,
नहीं इसे मैं सहन करूँगो।"[1]

इस प्रकार दोनों कवयित्रियों ने अपनी आध्यात्मिक विरह-भावना की सम्यक् मात्रा में अभिव्यक्ति दी है। परन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि महादेवी का काव्य वंगारम्मा के काव्य की तुलना में अधिक विशाल एवं गहन है। महादेवी में पीड़ा तथा वंगारम्मा में आह्लाद की मात्रा अधिक है।

३. **कलाकारिता** :—कला की दृष्टि से महादेवी एवं वंगारम्मा के गीत अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के बन पड़े हैं। दोनों कवयित्रियों ने लय और संगीत को निभाने के लिये मात्रिक छन्दों का उपयोग सर्वत्र किया है। कहीं भी इन के गीतों में लय-भंग नहीं होता। गीत की हर एक पंक्ति में माधुर्य से सने शब्द ऐसे लगते हैं मानों वे एक माला में पुष्पों की भाँति पिरोये गये हों। हर एक शब्द भाव के प्रकाशन में सहायक सिद्ध हुआ है। सरलता, संगीतात्मकता एवं मधुरता इन दोनों कवयित्रियों के गीतों में कूट-कूट कर भर गयी हैं। वंगारम्मा की अपेक्षा महादेवी संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग करती हैं।

४. **उपसंहार** :—अन्त में केवल इतना कहा जा सकता है कि परिमाण में महादेवी के काव्य की तुलना में वंगारम्मा का कृतित्व अत्यन्त सीमित होते हुये भी उसकी रसमयता के कारण महादेवी के काव्य के पार्श्व में स्थान प्राप्त कर सकता है। वंगारम्मा के गीतों में तेलुगुवालों की रीति-रिवाज, रहन-सहन और शृंगार-सज्जा का चित्रण मिलता है तो महादेवी में सनातन भारतीय नारी के मन की चिरन्तन भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है।

१. "चूसिना तने कन्नुमूसिना तने निजमु।
चूडमेकने नेनु निलुवलेकुन्नानु।"—कांचन विपंचि : चावलि बंगारम्मा।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

हिन्दी

१. अनामिका, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ।
२. अनुसंधान का स्वरूप, डा० सावित्री सिन्हा ।
३. अपरा, तृतीय संस्करण, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ।
४. आंसू, जयशंकर प्रसाद ।
५. आकुल अन्तर, चौथा संस्करण, हरिवंशराय बच्चन ।
६. आधुनिक कवि—१, छठा संस्करण, महादेवी वर्मा ।
७. आधुनिक कवि—२, सातवां संस्करण, सुमित्रा नन्दन पन्त ।
८. आधुनिक कवि—३, डा० रामकुमार वर्मा ।
९. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियां, संपा० मोहनवल्लभ पन्त ।
१० आधुनिक काव्य धारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल ।
११. आधुनिक साहित्य, द्वि० संस्करण, नन्ददुलारे वाजपेयी ।
१२. आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव ।
१३. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य, डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल ।
१४. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, कैलास वाजपेयी ।
१५. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, डा० पुत्तुलाल शुक्ल ।
१६. आधुनिक हिन्दी-काव्य में निराशावाद, डा० शंभुनाथ पांडेय ।
१७. आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग (१९२०—५०), गोपालदास सारस्वत ।
१८. आधुनिक हिन्दी साहित्य, (१८५०-१९००), डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
१९. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्रीकृष्णलाल ।
२० आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
२१. उर्वशी, रामधारीसिंह दिनकर ।
२२. एकान्त संगीत, हरिवंशराय बच्चन ।

२३. कला और संस्कृति, वासुदेवशरण अग्रवाल ।
२४. कामायनी, जयशंकर प्रसाद ।
२५. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद ।
२६. काव्य की भूमिका, रामधारी सिंह दिनकर ।
२७ काव्य में अभिव्यंजनावाद, लक्ष्मीनारायण सुधांसु ।
२८. काव्य में उदात्त तत्व, द्वितीय संस्करण, डा० नगेन्द्र ।
२९. क्रान्तिकारी कवि निराला, डा० वच्चन सिंह ।
३०. खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना ।
३१. ग्रन्थि, सुमित्रानन्दन पन्त ।
३२. गुन्जन, सुमित्रानन्दन पन्त ।
३३. गुप्तजी का काव्य-विकास, डा० कमलाकान्त पाठक ।
३४. चिन्तामणि भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
३५. चित्ररेखा, रामकुमार वर्मा ।
३६. चिदंबरा, सुमित्रानन्दन पन्त ।
३७. छायावाद, डा० नामवरसिंह ।
३८. छायावाद की काव्य साधना, क्षेम ।
३९. छायावाद-युग, शम्भूनाथ सिंह ।
४०. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी ।
४१. ज्योत्सना, सुमित्रानन्दन पन्त ।
४२. डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध, डा० नगेन्द्र ।
४३. दीपशिखा, महादेवी वर्मा ।
४४. निराला : काव्य और व्यक्तित्व, धनंजय वर्मा ।
४५. निशा-निमत्रंण, हरिवंशराय वच्चन ।
४६. नीहार, महादेवी वर्मा ।
४७. पथिक, रामनरेश त्रिपाठी ।
४८. पल्लव, सुमित्रानन्दन पन्त ।
४९. पल्लविनी, तृतीय संस्करण ।
५०. प्रवासी के गीत, नरेन्द्र शर्मा ।
५१. प्रसाद काव्य, प्रथम संस्करण, डा० प्रेमशंकर ।
५२. पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा, प्रधान संपा० डा० नगेन्द्र ।
५३. पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त, लीलाधर गुप्त ।
५४. प्रेम पथिक, चतुर्थ संस्करण जयशंकर प्रसाद ।
५५. बोलता हुआ मच, रामगोपाल परदेसी ।

५६. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, डा० उदयभानुसिंह ।
५७. मिट्टी की ओर, रामधारीसिंह दिनकर ।
५८. यामा, महादेवी वर्मा ।
५९. युग और साहित्य, शान्ति प्रिय द्विवेदी ।
६०. युगान्त, सुमित्रानन्दन पंत ।
६१. रवीन्द्र कविता कानन, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ।
६२. रश्मि, महादेवी वर्मा ।
६३. रसज्ञ रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी ।
६४. राम चरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास ।
६५. रूपराशि, रामकुमार वर्मा ।
६६. रेणुका, रामधारीसिंह दिनकर ।
६७. रोमांटिक साहित्य शास्त्र, डा० देवराज उपाध्याय ।
६८. लहर, जयशंकर प्रसाद ।
६९. विचार और अनुभूति, डा० नगेन्द्र ।
७०. विचार और विवेचन, डा० नगेन्द्र ।
७१. विवेचनात्मक गद्य, महादेवी वर्मा ।
७२. वीणा-ग्रन्थि, सुमित्रानन्दन पंत ।
७३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम भाग, डा० गोविन्दवल्लभ त्रिगुणायत ।
७४. वही, द्वितीय भाग ।
७५. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर ।
७६. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त ।
७७. साहित्य का श्रेय और प्रेय ।
७८. साहित्य दर्शन, प्रथम भाग, शचीरानी गुर्टू ।
७९. साहित्यालोचन, डा० श्यामसुन्दरदास ।
८०. सुमित्रानन्दन पंत, नवम संस्करण, डा० नगेन्द्र ।
८१. सुमित्रानन्दन पंत, शचीरानी गुर्टू ।
८२. हिल्लोल, शिवमंगल सिंह सुमन ।
८३. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, डा० किरण कुमारी गुप्त ।
८४. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, गोविन्द राम शर्मा ।
८५. हिन्दी के स्वीकृत शोध-शोध प्रबन्ध, द्वितीय संस्करण, डा० उदयभानुसिंह ।
८६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवा संस्करण, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
८७. हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी, नन्द दुलारे बाजपेयी ।
८८. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा ।
८९. हिन्दी साहित्य में विविधवाद, डा० प्रेमनारायण शुक्ल ।
९०. हुंकार, रामधारीसिह दिनकर ।

तेलुगु

१. आन्ध्र रचयितलु, मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री ।
२. आन्ध्र वाङ्मय चरित्रमु, डा० दिवाकर्ल वेंकटावधानि ।
३. एंकि पाटलु, वाविल्ल रामस्वामि ।
४. हृदयेश्वरि, शिवशंकर शास्त्रि ।
५. एकान्त सेव, वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु ।
६. कवि प्रिया, शिवशंकर शास्त्रि ।
७. किन्नेर सानि पाटलु, विश्वनाथ सत्यनारायण ।
८. तेलुगु काव्य माल, संपा० काटरि वेंकटेश्वर राव ।
९. नव्यांद्र साहित्य वीथुलु प्रथम भागमु, द्वितीय भागमु, तृतीय भागमु, कुरुगंटि सीतारामभट्टाचार्युलु ।
१०. नवीन काव्य मंजरि, संकलन, मुट्ट कृष्ण ।
११. नागार्जुनसागरं, सि० नारायण रेड्डि ।
१२. गिरि कुमारुनि प्रेम गीतालु, विश्वनाथ सत्यनारायण ।
१३. पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती, शिवशंकर शास्त्रि ।
१४. प्रकृति पांचजन्यं, कविकोंड वेंकट राव ।
१५. बसवराजु अप्पाराव गीतालु, बसवराजु अप्पाराव ।
१६. मधुकलशमु, रायप्रोलु सुब्बाराव ।
१७. मवदयमु, उप्पाड अप्पाराव ।
१८. महान्ध्र भागवतमु, बम्मेर पोतना ।
१९. महा प्रस्थान, श्री श्री ।
२०. माधुरी महिम, पिल्लल मर्रि, वेंकटहनुमंत राव ।
२१. मुत्लाल सरालु, गुरुजाड अप्पाराव ।
२१. मुसलम्म मरणमु, कट्ट मंचि रामलिंगारेड्डि ।
२३. वन कुमारि, दुव्वरि रामि रेड्डि ।
२४. वन माल, रायप्रोलु सुब्बाराव ।
२५. विमर्शक व्यासावलि, पारनन्दि जगन्नाथ स्वामि ।
२६. वैतालिकुलु, संकलन, मुट्टु कृष्ण ।
२७. शवरि, श्री निवास सोदरुलु ।
२८. शिव तांडवमु, पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु ।
२९. श्री गोविन्द रामायणमु, सीताराम (बालकांडमु) ।
३०, श्री देवुल पल्लि कृष्ण शास्त्रि कृतुलु, तृतीय मुद्रणमु, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रि ।
३१. साहित्य व्यासमुलु, सम्पा० मुनिमाणिक्यं नरसिंहा राव ।

३२. साहित्य सम्पद, प्रथम भागमु, तृतीय संस्करणमु, पिल्जरि्र पिन वीर ।
३३. सौभदुनि प्रणय यात्रा, नायनि सुब्बा राव ।

संस्कृत

१. अमर कोश, वि० वि० रामस्वामि ।
२. काव्य प्रकाश, वामन, संपा० ए० बी० गजेन्द्र गाडकर ।
३. काव्य मीमांसा, राजशेखर, सम्पा० डि० दलाल एण्ड आर० ए० शास्त्रि ।
४. काव्यादर्श, दण्डी, मेहर चन्द लक्ष्मणदास ।
५. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र ।
६. चन्द्रालोक, जयदेव ।
७. ध्वन्यालोक लोचन, अभिनव गुप्त ।
८. नाट्य शास्त्र, सम्पा० यम० रामकृष्ण ।
९. भगवद्‌गीता, गीता प्रेस ।
१०. रस गंगाधर, पडितराज जगन्नाथ ।
११. रामायण, वाल्मीक, सम्पा० विश्वबन्धु शास्त्रि ।
१२. लोचन, अभिनव गुप्त ।
१३. श्रीमद् भागवत, गीताप्रेस ।
१४. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, सम्पादक—डा० सत्यव्रत सिंह ।

ENGLISH REFERENCE BOOKS

1. A History of Modern Criticism : Rene Wellek, Yale Univ. Press, New Havery, 1955.
2. A History of English Literature : Legouis and Cazamain, Oxford Clarendon Press, 1953.
3. A History of English Literature : Compton-Rickett. London—Thomas Nelson, 1946.
4. Aesthetic Feelings : Croce, London Macmillan, 1909.
5. Aesthetic : Croce, Aesthetics tr. from the Italian by Douglas Ainslee. New York, The Noonday Press, 1955.
6. A Discourse on Political Imitations, Works II, By Hunt, Macmillan & Co., London.
7. A History of Sanskrit Literature : A. B. Keith, 6th Ed. Calcutta, Y. M. C. A. Publishing House, 1958.
8 A Midsummer Night's Dream : Shakespeare, Cambridge Univ. Press 1960

9. Art of Poetry : Horace, J. N. Dent, London, 1945.
10. Biographia Literaria : S T. Coleridge, Oxford Univ. Press, London, 1937.
11. Childe Harold IV, Byron, Oxford Univ. Press, London, 1937.
12. Civilization and its Discontents, Freud, The Hogrth Press, London. 1955.
13. Comparative Literature, Vol. I, Ed. by William C. Friday.
14. Complete Works : Shelly, O. U. P., London, 1945.
15. Complete Works : Swim Burne.
16. Creation and Discovery, Eliseovivas.
17. Eleventh Discourse : Literary Works II, William Hazlitt.
18. English Prose Style : H, Reade, Bell & Sons, London, 1956.
19. English Romantic Poets : Modern Essays in Criticism, Ed. by M. H. Abrams. O.U.P , New York, 1960.
20. English Studies : Sir Phillip Magnus.
21. Essays in the History of Ideas : A. G. Lovejoy, Cambridge Harvard Univ. Press, 1957.
22. Essays on Criticism : Mathew Arnold, Macmillan, London, 1943.
23. Essay on the Writings and Genius of Pope, Joseph Warton, 3rd. Ed., London, 1772.
24. Greek Metaphor, W. B. Stanford, Oxford. 1936.
25. Heritage of Symbolism, C. M. Bowra, Macmillan, London, 1954.
26. Hero & Hero-worship : Carlyle, J. M. Dent, London, 1954.
27. Henry Crabb Robbinson, J. M. Baker, Macmillan.
28. History of British India, P. E. Roberts, 3rd. Ed. O. U. P., London, 1952.
29. Illusion & Reality : C. Caudwell, Oxford, The Clarendon Press, 1939.
30. Inspiration and Poetry : C. M. Bowra, Macmillan, London, 1955.
31. Introduction to the Study of Literature : Hudson, 2nd Ed., London, 1942.

32. Letters of Keats : by Keats, O. U. P., London, 1948.
33. Lectures on Poetry : By Keble, Macmillan & Co.,
34. Lecture on Poetry : J. S. Mill, Chatto & Windus, 1950.
35. Lectures on the Science of the Religion : Max Muller, II Ed. Long Man & Green, London, 1868.
36. Life of Milton : Dr. Johnson. J. M. Dent, 1956.
37. Mirror and the Lamp (Romantic Theory and Critical Tradition) : By M. H. Abrams, O. U. P., 1960.
38. Literary Criticism, Wordsworth, Cornel Univ. Press, 1953.
39. Literary Criticism in Sanskrit and English, D. S. Sarma, Kuppuswamy Sastri, Res. Institute, Madras, 1954.
40. Literary Essays of Ezra Pound : Ed. T. S. Eliot, O. U. P.
41. Literature and Criticism. H. COOMBS, Chatto & Windus, London, 1956.
42. Literature and Western Man, J. B. Priestly, Heinemann, London, 1960.
43. Marxism and Poetry : George Thomson, People's Pubg. House, Ltd., N. Delhi,
44. Moral Values in Ancient World, John Fervuson, London, Metheun, 1958.
45. Nature and the Poet, W. Wordsworth, OUP., London, 1928.
46. On the Poetry of Keats : E. G. Petteat, Cambridge Univ. Press, 1957.
47. Oxford Lectures on Poetry; A. C. Bradley, O. U. P. London
48. Personality, Rabindranath Takur, Lectures delivered in America, Macmillan, London, 1945.
49. Poems of John Keats : Keats : Keats, Thomas Nelson & Sons, Ltd., London
50. Poetics : Aristotle, Clarendon Press, Oxford, 1948
51. Poetry and Prose: William Blake, J. M. Dent, London, 1945.
52. Preface to Lyrical Ballads, W. Wordsworth, Littledale,
53. Problems in Aesthetics: Morris Weitz, New York, Macmillan, 1959.
54. Publication of Modern Language Association of America, Ed. by James W. Bright, 1896.

55. Recollections : Lord Morley, London, Macmillan, 1936.
56. Romamtic Imagination, C. M. Bowra, Harvard Univ. Press, Cambridge, 1958.
57. Romanticism and Romantic School in Germany, Robert M. Wernear, O. U. P.
58. Shakespeare Criticism: Ed. Bradley, Macmillan. London 1956 ;
59. Shakespeare's Complete Works : Shakespeare, Odhams Press, London.
60 Some Problems of Sanskrit Poetics: S. K. De. Calcutta, 1959;
61. Style : Walter Raleigh : Edward Arnold, London, 1923.
62. Telugu Literature: Dr. P. T. Raju, The International Book House Ltd., Fort, Bombay.
63. The Cultural Heritage of India, I, II, III Vols. Ed. Sri Ramakrishna Centenary Committee, Belpur Math, Calcutta.
64. The Decline and Fall of the Romantic Ideal: F. L. Lucas. Cambridge Univ. Press, 1924 ;
65. The Freedom of Poetry; Derce Stanford, 1947.
66 The Life and Letters of John Keats: Richard Harton Fogle, N. York, 1951.
67. The Making of Literature: Scot James, Macmillan.
68. The Name and Nature of Poetry : A Edward Housman, N. York, Macmillan, 1944.
69. The Philosophy of Hegal, W.T. Stace, N. York, Dover Publications, 1955.
70. The Problem of Style: J. Middleton Murry, London, O. U. P., 1956.
71. The Romantic Assertion: R. A. Foakes, New Haven, Yale Univ. Press, 1958.
72. The Romantic Poets: Graham Hough, London, Hutchinsons' Univ. Press, 1953.
73. The Romantic Quest Hoxie Neale Fairchild, Philadelphia Albert Saifer, 1231.
74. The Symbolist Movement in Literature, Arthur Symans.
75. The Theory of Poetry, Abercromdie, O. U. P., London.

LITERARY MAGAZINES

1. The Indian Express, Madras.
2. Triveni, March, 1931, Masllipatnam.
3. S. V. University Oriental Journal : Vol. III, S. V. U. Tirupati.

पत्र-पत्रिकायें

हिन्दी

१. आज, (साप्ताहिक विशेषांक) कबीर चौरा, बनारस। २. आजकल, दिसम्बर, १९५८, पब्लिकेशन्स डिविजन, सूचना विभाग, नयी-दिल्ली। ३. आजकल, एप्रिल, १९५९। ४. आजकल, नवम्बर, १९५९। ५. आजकल, फरवरी, १९६०। ६. आजकल, अक्टूबर, १९६०। ७. आजकल, सितम्बर, १९६१। ८. आलोचना अंक, २३। ९. त्रिपथगा, चित्रकला अंक, नवम्बर, १९६२। यू० पी० सरकार, प्रकाशन विभाग, लखनऊ। १०. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १४, अंक ३१, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।

तेलुगु

१. आंध्र प्रदेश, (मासिक), आन्ध्र प्रदेश सरकार, हैदराबाद। २. आंध्र प्रभ (दिन पत्रिका)। ३. आन्ध्र प्रभ (वार पत्रिका=साप्ताहिक)। ४. कृष्णा पत्रिका, वि० ११—२० जम्बग रोड, हैदराबाद। ५. भारति अगस्त, १९३४, आंध्र पत्रिका मुद्रणशाल, तबुचेट्टि वीथि, मद्रास। ६. भारति, अक्तूबर, १९३४। ७. भारति, दिसम्बर, १९३४। ८. भारति, सितम्बर, १९३५। ९ भारति, मार्च, एप्रिल, अक्टूबर, १९३६। १०. भारति, नवम्बर, दिसम्बर, १९३७। ११. भारति, जनवरी, फरवरी, मार्च, १९३८। १२. भारति मार्च, एप्रिल, अक्टूबर, नवम्बर, १९४५। १३. भारति, मई, जून, जुलाई, १९४६। १४. भारति, मई, जून, जुलाई, १९४७। १५. भारति, एप्रिल, मई, जून, १९५०। १६. भारति, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर, १९५२। १७. भारति, फरवरी, मार्च, एप्रिल, १९५८। १८. भारति, सितम्बर, १९६०। १९. भारति, नवम्बर, १९६२। २०. भारति, मई, जून, जुलाई, १९६३। २१, भारति, जनवरी, फरवरी, मार्च, एप्रिल, मई, १९६४। २२. विश्व श्री विश्वनाथ साहित्य संचिक, जनवरी १९५४। २४. विशालान्ध्र (दिन पत्रिका), विशालान्ध्र पचुरण शाल, विजयवाडा। २५. प्रजामित्र, जुलाई, १०, १९३२।